ORIGIN AND PROCESS OF CULTURAL DEVELOPMENT IN THE MIDDLE GANGA PLAIN

मध्य गांगेय मैदान में संस्कृतियों का उद्‌भव एवं विकास प्रक्रिया

डी0 फिल0 उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध
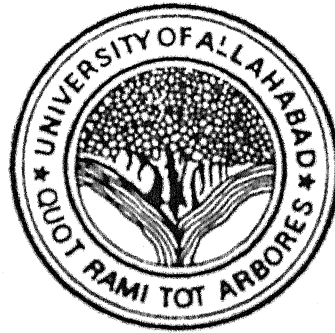
पर्यवेक्षक
प्रो0 वी0 डी0 मिश्र
प्राचीन इतिहास, संस्कृति
एवं पुरातत्व विभाग,

शोधकर्ता
आभा पाल
प्राचीन इतिहास, संस्कृति
एवं पुरातत्व विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद,

2002

प्राक्कथन

भारत में मानव सभ्यता के विकास में गंगाघाटी का विशिष्ट स्थान रहा है। आदि काल से अपनी विस्तृत अजस्रधारा में अनेक संस्कृतियों के विकास और पतन की कहानी को समेटे हुए यह आज भी भारत की जीवनदायिनी शक्ति के रूप में लोकविश्रुत है । विन्ध्य क्षेत्र की पर्वत कन्दराओं से मानव ने जब पहली बार गंगा के मध्यवर्ती मैदान में कदम रखा तो उसे सहजरूप से पहाड़ों की दुरूह जिन्दगी से अवश्य ही राहत मिली होगी फलतः मानव ने गंगा के विस्तृत समतल मैदान को अपना स्थायी आवास बना लिया ।

यदि कालक्रम के सन्दर्भ में देखें तो मानव का गंगा के मध्यवर्त्ती मैदान में आब्रजन सर्वप्रथम अनुपुरापाषाण काल में हुआ । इसी समय से मानव विन्ध्य क्षेत्र की शुष्क जलवायु से संत्रस्त होकर क्षुधापूर्ति की तलाश में गंगा–यमुना नदी को पारकर समतल मैदान में कदम रखा । यद्यपि मानव का यह आब्रजन प्रारम्भ में अस्थाई एवं ऋृतुनिष्ठ था लेकिन मैदान की अनुकूल जलवायु से वह इतना प्रभावित था कि हथियारों के लिए प्रयुक्त होने वाले पत्थरों की तलाश में चाहे बार–बार विन्ध्य क्षेत्र में वापस जाना हो या पुस्तैनी स्थल से मोह का संकट हो, इन सबसे क्रमशः मुक्त होकर मानव ने मध्य गंगा मैदान को ही अपना स्थायी आवास बना लिया । गंगा के सम्पूर्ण अपवाह क्षेत्र को भू–विज्ञान की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया गया हैः 1. ऊपरी गंगा का मैदान, 2. मध्य गंगा का मैदान, एवं 3. निचली गंगा का मैदान। इनमें आवासीय अनुकूलताओं की दृष्टि से गंगा का मध्यवर्ती मैदान सर्वाधिक उपयुक्त है, परिणामतः मानव सभ्यता के प्रमाण यहाँ पर प्रारम्भ से अद्यावधि अविच्छिन्न रुप से प्राप्त होते हैं । चाहे स्थायी आवास बनाने का मानव का प्रथम प्रयास हो या नगरीकरण का विकास हो सभी दृष्टियों से यह क्षेत्र मानव सभ्यता के विकास की स्पष्ट कहानी कहता नजर आता है। पुरातात्विक दृष्टि से इसकी महत्ता का प्रमाण इस बात से भी मिलता है कि आजादी से पूर्व और अब तक इस क्षेत्र का पुरातत्वविदों ने गहन सर्वेक्षण के साथ ही अनेक स्थलों

का वृहद पैमाने पर उत्खनन किया है, जिससे मानव सभ्यता के अनेक अनसुलझे प्रश्नों को समझने में सहायता मिली है ।

प्रस्तुत विषय विशेष को शोध का विषय बनाने के मूल में मेरी यही अवधारणा रही है कि मध्य गंगा घाटी में मानव सभ्यता के विकास की कहानी को एक सुव्यवस्थित क्रम में प्रस्तुत किया जाये । क्योंकि मध्यगंगा के इस 1,44,209 वर्ग किमी के विस्तृत परिक्षेत्र में अनेक विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों के पुरातत्वविदों ने अपने स्तर पर सर्वेक्षण, उत्खनन एवं प्राप्त सामग्रियों का अध्ययन प्रस्तुत किया है, लेकिन अब तक सभी साक्ष्यों को एक साथ रखकर सम्पूर्ण परिक्षेत्र के मानव सभ्यता के उद्भव और विकास के अनुक्रम को प्रस्तुत करने की ओर प्रायः कम ही ध्यान गया है । मेरा प्रयास है कि मध्यगंगाघाटी में मानव सभ्यता के उद्भव और विकास की कहानी को एक सुव्यवस्थित अनुक्रम में रख कर प्रस्तुत करें । प्रथम सहस्राब्दी ई0 पू0 के मध्य में गंगा के मैदान में आर्थिक सम्पन्नता के फलस्वरूप जिस द्वितीय नगरीकरण का आविर्भाव, गौतम बुद्ध तथा महावीर के क्रमशः बौद्ध और जैन नामक जिन धर्मों को स्थापित किया और सोलह महाजनपदों तथा उसके बाद चार राजतन्त्रात्मक राज्यों तथा अंततः मगधं साम्राज्य का जो उत्कर्ष हुआ वह सब आकस्मिक नहीं था । उसकी पृष्ठभूमि का स्वरूप क्या था ? इस प्रश्न के समुचित उत्तर प्राप्ति हेतु भी मैंने इस दृष्टि से शोध विषय का अनुशीलन किया ।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तुत शोध प्रबंध को मानव सभ्यता के विकास के अनुरूप क्रमशः पूर्वपाषाण काल, मध्यपाषाण काल, नवपाषाण काल, ताम्रपाषाण काल, एवं लौह काल के कालानुक्रम के परिप्रेक्ष्य में मध्य गंगाघाटी में सभ्यता के उद्भव और विकास को क्रमशः देखने का प्रयास किया गया है । उल्लेखनीय है कि मध्यगंगा घाटी में मानव का सर्वप्रथम पदार्पण मध्यपाषाण के पूर्व और उच्चपूर्वपाषाण काल के अंतिम चरण जिसे पुरातत्वविदों ने अनुपुरापाषाण काल नाम दिया है, में हुआ । तब से लेकर मानव सभ्यता का वर्णन प्रारंभिक ऐतिहासिक काल तक अर्थात नगरीकरण की प्रक्रिया के प्रारम्भ होने तक करने का प्रयास प्रस्तुतीकरण को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित छः अध्यायों में विभाजित किया है:

विश्लेषण एवं विवेचन के क्रम में मैंने अपने शोध प्रबंध को अध्ययन और शोध प्रबंध के **प्रथम अध्याय** में गंगा नदी के महत्व के ही साथ उसकी भौतिक दृष्टि से उपयोगिता का विवेचन ऊपरी, मध्य और निम्नगंगाघाटी के उपसंदर्भो में किया है। सम्पूर्ण अपवाह क्षेत्र की भौगोलिक विशिष्टताओं तथा प्राकृतिक संसाधनों का विवरण तथा सांस्कृतिक अनुक्रम इस अध्याय के अन्तर्गत दिया गया है । **द्वितीय अध्याय** में मध्य गंगाघाटी में मानव के पदार्पण की कहानी एवं प्रथम संस्कृति– मध्यपाषाण संस्कृति को अनुपुरापाषाण काल के साथ ही बढ़ते हुए क्रम में देखने का प्रयास किया है । इस अध्याय में मध्य गंगाघाटी के मध्य पाषाण कालीन स्थलों से प्राप्त पुरासामग्रियों एवं उनके अब तक के विश्लेषणों को सम्यक दृष्टि से सम्पूर्ण पक्षों के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । **तृतीय अध्याय** में मध्य गंगाघाटी की प्रथम स्थायी और कृषक संस्कृति अर्थात नवपाषाण काल का व्यापक सन्दर्भो में विवेचन करने का प्रयास किया गया है । ध्यातव्य है कि मध्य गंगाघाटी से इस संस्कृति के अपेक्षाकृत कम स्थल एवं सामग्रियाँ प्रतिवेदित हुई हैं। इस तथ्य के विविध पहलुओं पर भी इसी अध्याय में विचार करने का प्रयास किया गया है । **चतुर्थ अध्याय** में ताम्रपाषाण युगीन संस्कृति के विविध पक्षों पर दृष्टिपात करते हुए विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । इस संस्कृति के अनेक स्थानों के उत्खननों से प्राप्त सामग्रियों का जहाँ पर विवेचन करते समय विशेष ध्यान रखा गया है । वहीं पर अनेक स्थलों से सर्वेक्षण से प्राप्त सामग्रियों को भी उनके साथ संदर्भित करते हुए विश्लेषण किया गया है । **पाँचवें अध्याय** में उत्तर भारत की महत्वपूर्ण पात्र–परम्परा उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड परम्परा (एन0बी0पी0 डब्लू0) संस्कृति के पूर्व की पात्र परम्परा संस्कृति (प्री0 एन0बी0पी0 डब्लू0) को लोहे के साथ विकास की विभिन्न अवस्थाओं में देखने और विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है । स्मरणीय है कि महत्वपूर्ण पात्र–परम्परा एन0बी0पी0 डब्लू0 के पूर्व भारत में प्री0 एन0बी0पी0 डब्लू0 संस्कृति से मिलते–जुलते काले, लाल और काली–एवं–लाल लेपित (Black-and-Red-Slipped) मृदभाण्ड अनेक स्थलों से प्राप्त होते हैं जो आगामी नगरीय संस्कृति की पूर्वपिठिका स्वरूप हैं । इस संस्कृति को नगरीकरण की पूर्वपीठिका के सन्दर्भ में

देखने और विश्लेषण करने का प्रयास प्रस्तुत अध्याय में किया गया है । इसी अध्याय में उत्तरी काली पात्र परम्परा संस्कृति के विविध पहलुओं को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है । साथ ही नगरीकरण की प्रक्रिया एवं उसके समग्र पक्षों पर भी इस संस्कृति से जुड़े अनेक स्थल अब तक प्रकाश में आए हैं। इन सभी स्थलों से प्रतिवेदित सामग्रियों को अपने विवेचन के आधार में मैंने सम्मिलित करने की कोशिश की है । अंत में, शोध प्रबन्ध के **छठें अध्याय** में उपर्युक्त समस्त विवेचनों का सार प्रस्तुत किया है ।

प्रस्तुत शोध विषय पर भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली ने मुझे कनिष्ठ शोध अध्येतावृत्ति प्रदान की, एतदर्थ मैं वहाँ के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिसके फलस्वरूप यह कार्य सुगमता से सम्पन्न हो सका । मैने इस कार्य के लिए देश के अनेक पुस्तकालयों एवं शोध संस्थानों से पुस्तकीय मदद ली जिसमें मुख्य तौर पर भारत सरकार का केन्द्रीय पुरातत्व पुस्तकालय नई दिल्ली, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग, डेक्कन कालेज पुणे, इलाहाबाद म्यूजियम का संग्राहालय एवं पुस्तकालय, बी० एच० यू० के केन्द्रीय एवं विभागीय पुस्तकालय तथा अपने विभाग के पुस्तकालय एवं फोटोग्राफी तथा ड्राइंग सेक्सन से मैने विभिन्न प्रकार का समय समय पर सहयोग लिया । मै इन सभी संस्थानों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ ।

सुविख्यात पुरातत्वविद एवं इतिहासकार प्रो० वी० डी० मिश्र मेरे शोध पर्यवेक्षक हैं, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना आसान नहीं है । यह दुर्लभ संयोग है कि मेरे पूज्य पिताजी को भी उनका शिष्य होने का गौरव प्राप्त है । उनका मेरा भी गुरू होना तथा उससे भी अधिक बढ़कर शोध पर्यवेक्षक होना मेरे लिए अत्यन्त सौभाग्य की बात है । उनका, विद्धतापूर्ण विमर्श एवं आर्शीवाद मेरे जीवन की पूँजी रहेगी । प्रस्तुत शोध प्रबंध को पूर्ण करने में मैंने उनके मार्ग दर्शन एवं सानिध्य से पुरातत्व की छोटी से बड़ी जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त किया । उनका मुझ पर सदैव पुत्रीवत् स्नेह रहा है। मैं यह कामना करती हूँ कि उनका इसी प्रकार आर्शीर्वाद और स्नेह सदैव बना रहे ।

ख्यातिप्राप्त पुरातत्वविद् प्रो0 राधाकान्त वर्मा, जो मेरे पूज्य पिताजी के भी गुरू रहे हैं । उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अत्यन्त दुरूह कार्य है । उनकी विषयपरक दृष्टि, अमूल्य सुझावों एवं समस्या के सहज समाधान के लिए मैं अगाध श्रृद्धा एवं कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ । यही नहीं डॉ0 नीरा वर्मा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना भी मेरा सहजधर्म है ।

इस कार्य में विभाग के वर्तमान एवं अवकाश प्राप्त समस्त गुरूजनों का मेरे प्रति आदर एवं स्नेह रहा, सबके प्रति मैं श्रृद्धावनत हूँ । परम श्रद्धेय प्रो0 जी0 सी0 पाण्डेय, प्रो0 जे0 एस0 नेगी, प्रो0 बी0 एन0 एस0 यादव, प्रो0 यू0 एन0 राय, प्रो0 एस0 एन0 राय, डॉ0 संध्या मुकर्जी, प्रो0 एस0 सी0 भट्टाचार्य, प्रो0 डी0 मण्डल, डॉ0 बी0 बी0 मिश्रा प्रो0 आर0 के0 द्विवेदी, प्रो0 गीता देवी के प्रति आभार व्यक्त करना मेरा पुनीत कर्तव्य है।

प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के सम्प्रति विभागाध्यक्ष प्रो0 ओम प्रकाश के अमूल्य सुझावों एवं उत्साहवर्धक मार्गदर्शन के लिए मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। विभाग के अन्य गुरूजनों प्रो0 आर0 पी0 त्रिपाठी, प्रो0 जी0 के0 राय, प्रो0 जे0 एन0 पाण्डेय, प्रो0 रंजना बाजपेई, डा0 एच0 एन0 दूबे, श्री ओमप्रकाश श्रीवास्तव, डॉ0 उमेश चन्द्र चट्टोपाध्याय, डॉ0 वनमाला मधोल्कर, डा0 ए0 पी0 ओझा, डॉ0 पुष्पा तिवारी, डॉ0 अनामिका राय, डा0 सी0 डी0 पाण्डेय, डॉ0 डी0 पी0 दुबे, डॉ0 डी0 के0 शुक्ला, डॉ0 हर्ष कुमार, डॉ0 शशिकान्त राय, डॉ0 प्रकाश सिन्हा, डॉ0 सुधा कुमार, डॉ0 सुनीति पाण्डेय, डॉ0 विमल चन्द्र शुक्ला के प्रति मैं उनकी प्रेरणा एवं शोधपरक सुझावों के लिए आभारी हूँ ।

डॉ श्रीराम पाल, डॉ0 मानिक चन्द्र गुप्ता, डॉ0 सुशील त्रिवेदी, डॉ0 अनिल कुमार दुबे, डॉ0 प्रहलाद बरनवाल, डॉ0 राम नरेश पाल, श्री शैलेन्द्र त्रिपाठी ने विविध रूपों में मेरा मार्ग दर्शन किया और अमूल्य सुझाव दिया, मै उनके प्रति धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ ।

अनेक विश्वविद्यालयों एवं पुरातत्व संस्थाओं के विद्वानों एवं अधिकारियों का जो अमूल्य सहयोग प्राप्त है उसके लिए मैं कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ । इनमें प्रो0

वी0 सी0 श्रीवास्तव (पूर्व विभागाध्यक्ष एवं सम्प्रति निदेशक, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला), प्रो0 पुरुषोत्तम सिंह, प्रो0 विदुला जायसवाल, प्रो0 विभा त्रिपाठी (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी), प्रो0 दयानाथ त्रिपाठी (पूर्व विभागाध्यक्ष, दीन दयाल उपाध्याय, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर), प्रो0 रमा नाथ मिश्र (फेलो, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला), डॉ0 राकेश तिवारी (निदेशक, राज्य पुरातत्व विभाग, लखनऊ, उत्तर प्रदेश), डॉ0 डी0 पी0 तिवारी, (लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ), प्रो0 यू0 पी0 अरोरा, प्रो अतुल कुमार सिन्हा (महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली), प्रो0 आर0 पी0 पाण्डेय (जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर), प्रो0 वी0 एन0 मिश्रा, डॉ0 पी0 पी0 जोगलेकर (डेक्कन कालेज, पुणे), प्रो0 के0 एम0 श्रीमाली, डॉ0 इन्द्राणी चट्टोपध्याय (दिल्ली विश्वविद्यालय), डॉ0 एस0 पी0 गुप्ता, डॉ0 के0 एन0 दीक्षित (पुरातत्व संस्थान, नई दिल्ली), श्री जे0 पी0 जोशी, श्री एम0 सी0 जोशी, डॉ0 आर0 एस0 विष्ट, डॉ0 अरुन्धती बनर्जी, श्री चन्द्र भाल मिश्र (भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, विभाग नई दिल्ली), डॉ0 अजय सिन्हा, डॉ0 अजित कुमार प्रसाद (राज्य पुरातत्व विभाग, बिहार एवं झारखण्ड) प्रभृति विद्वानों ने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप मुझे शोध कार्य के लिए उत्साहवर्धक सुझाव दियें हैं, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा परम कर्तव्य है।

गुरूजनों के अतिरिक्त विभाग के तकनीकी सदस्यों सर्वश्री एच0 एन0 कर, एल0 के0 तिवारी, वी0 एन0 राय, राजेन्द्र प्रसाद, वी0 के0 खत्री, कमलेश कुमार, अरविन्द मालवीय, शरद सुमन, राजेश कुमार प्रभृति के प्रति भी मैं आदरभाव व्यक्त करती हूँ, जिनका इस शोध के पूर्ण होने में अमूल्य योगदान रहा है । श्री सतीश चन्द्र केशरवानी ने जिस निष्ठा व लगन के साथ इस शोध प्रबन्ध को टंकित किया है, उसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं ।

वस्तुतः, पुरातत्व में मेरी रुचि बचपन से ही रही क्योंकि मेरे पिता प्रो0 जे0 एन0 पाल इस विषय के प्रति समर्पित प्रसिद्ध पुरातत्वविद् हैं। उनकी प्रेरणा से ही प्रस्तुत कार्य सम्भव हो सका । अन्त में मैं माता श्रीमती सुमन पाल, भाई सुनीत

पाल, एवं प्रिय बहन स्वाभा पाल, जिनके वात्सल्यभाव एवं स्नेह के बिना यह कार्य पूर्ण होना असंभव था, उनके प्रति मैं ह्रदय से अभार व्यक्त करती हूँ एवं अपनी अगाध श्रृद्धा व्यक्त कर रही हूँ । अभिन्न मित्रों में प्रज्ञा मिश्रा, अंजलि श्रीवास्तव, निधि श्रीवास्तव, नमिता श्रीवास्तव, श्री जितेन्द्र कुमार नौलखा, प्रिय जैस्मिन पाल, महेन्द्र पाल, विवेक अग्रहरि, आनन्द गुप्ता, पीयूष गुप्ता, प्रीति गुप्ता, रूद्र प्रताप पाल, श्रीमती सावित्री गुप्ता, आदि सभी के प्रति ह्रदय से आभार व्यक्त करती हूँ। इनकी सदीच्छा एवं शुभकामनाओं के अभाव में प्रस्तुत शोध पूर्ण करना दुष्कर कार्य था ।

आभा पाल

दिसम्बर 15, 2002

आभा पाल

विषयसूची

प्राक्कथन	i-vii
रेखाचित्रों की सूची	ix-x
छायाचित्रों की सूची	xi-xiii
तालिकाओं की सूची	xiv
प्रथम अध्यायः मध्य गांगेय मैदान की स्थिति, भौगोलिक परिदृश्य, जलवायु, वनस्पति और जीव जगत्, जल–स्रोत, सांस्कृतिक अनुक्रम	1-19
द्वितीय अध्यायः मानव अस्तित्व के प्राचीनतम प्रमाणः अनुपुरापाषाण काल और मध्यपाषाणकाल की संस्कृतियों का उद्भव एवं विकास	20-81
तृतीय अध्यायः नवपाषाणयुगीन संस्कृतिः पशुपालन एवं कृषि तकनीक का उद्भव एवं विकास	82-118
चतुर्थ अध्यायः ताम्रपाषाणयुगीन संस्कृति	119-160
पंचम अध्यायः लौहयुगीन प्रारम्भिक और एन0बी0पी0डब्लू0 संस्कृति	161-200
षठम् अध्याय. उपसंहार	201-208
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	209-237

रेखाचित्रों की सूची

रेखाचित्र 1: मध्य गंगा मैदान का प्राकृतिक मानचित्र 6

रेखाचित्र 2: मध्य गंगा मैदान की नदी प्रणाली 10

रेखाचित्र 3: मध्य गंगा मैदान में धनुषाकार झीलें 19

रेखाचित्र 4: गंगा के भू–तात्विक जमाव का अनुभाग 20

रेखाचित्र 6: मध्य गंगा घाटी के अनुपुरापाषाणिक उपकरण 25

रेखाचित्र 5: गंगा के मैदान में अनुपुरापाषाण और मध्यपाषाणकालीन पुरास्थल 23

रेखाचित्र 7: मध्यपाषाण काल के उत्खनित पुरास्थल 27

रेखाचित्र 8: सरायनाहर रायः का स्थल मानचित्र 29

रेखाचित्र 9: सराय नाहर रायः लघुपाषाण उपकरण 33

रेखाचित्र 10: महदहाः उत्खनित स्थल का मानचित्र 37

रेखाचित्र 11: महदहाः मध्यपाषाणकालीन नरकंकाल 40

रेखाचित्र 12: दमदमाः स्थल मानचित्र 50

रेखाचित्र 13: दमदमाः कब्र का मानचित्र युग्म शवाधान 59

रेखाचित्र 14 दमदमाः कब्र का मानचित्र विपरीत दिशा में युग्म शवाधान 60

रेखाचित्र 15 दमदमाः कब्र का मानचित्र विस्तीर्ण शवाधान 61

रेखाचित्र 16 दमदमाः कब्र का मानचित्र मुड़े हाथ पैर वाला नर कंकाल 63

रेखाचित्र 17: दमदमाः लघुपाषाण उपकरण 65

रेखाचित्र 18: दमदमाः लघुपाषाण उपकरण 66

रेखाचित्र 19: मध्य गंगाघाटी के प्रमुख नवपाषाणिक उत्खनित स्थल 84

रेखाचित्र 20: सेनुवारः नवपाषाणिक पालिशदार कुल्हाड़ियाँ
(बी0पी0 सिंह 1988–89 के अनुसार) 100

रेखाचित्र 21: सेनुवारः नवपाषाणिक मृदभाण्ड, बर्निश्ड ग्रे एण्ड रेड वेयर 102
(बी0पी0 सिंह 1988–89 के अनुसार)

रेखाचित्र 22: इमलीडीह खुर्दः रस्सी छाप युक्त मृदभाण्ड़, प्रथमकाल 104
(पी0 सिंह 1992–93 के अनुसार)

रेखाचित्र 23: इमलीडीह खुर्दः रस्सी छाप युक्त अलंकृत मृदभाण्ड, प्रथम काल 105
(पी0 सिंह 1992–93 के अनुसार)

रेखाचित्र 24: इमलीडीह खुर्दः पकाने के उपरान्त उत्कीर्ण और चित्रित मृदभाण्ड, 106
प्रथम काल (पी0 सिंह 1992–93 के अनुसार)

रेखाचित्र 25: महगड़ाः हस्तनिर्मित रस्सी छाप युक्त मृदभाण्ड 114
(शर्मा और अन्य 1980 के अनुसार)

रेखाचित्र 26: महगड़ाः हस्तनिर्मित खुरदुरे सतह वाले मृदभाण्ड 115
(शर्मा और अन्य 1980 के अनुसार)

रेखाचित्र 27: मध्यगंगा घाटी के प्रमुख उत्खनित ताम्रपाषाणिक पुरास्थल 120

रेखाचित्र 28: नरहनः कृष्ण–लोहित परम्परा के पात्र 138
(पी0 सिंह के अनुसार)

रेखाचित्र 29: नरहनः लाल और चित्रित काले पात्र खण्ड़ 139
(पी0 सिंह के अनुसार)

रेखाचित्र 30: नरहनः सफेद चित्रित तथा कृष्ण–लोहित पात्र प्रकार 140
(पी0 सिंह के अनुसार)

रेखाचित्र 31: मध्य गंगाघाटी के प्रमुख ऐतिहासिक उत्खनित स्थल 168

छायाचित्रों की सूची

छायाचित्र 1. सराय नाहर रायः चार कंकालों से युक्त शवाधान (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से) 30

छायाचित्र 2. सराय नाहर रायः गर्त चूल्हा (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से) 30

छायाचित्र 3. सराय नाहर रायः चार स्तम्र्भ गर्तों से युक्त झोपड़ी का फर्श (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से) 34

छायाचित्र 4. सराय नाहर रायः दो बार प्रयोग के प्रमाण से युक्त गर्त–चूल्हा (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से) 34

छायाचित्र 5. महदहाः अनुभाग में आवसीय जमाव के स्तर (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से) 38

छायाचित्र 6. महदहाः स्तरीकरण और अंश छादन के अनुसार चार चरणों के शवाधान और गर्त्त चूल्हे (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से) 39

छायाचित्र 7. महदहाः बच्चे काष्ठशवाधान (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से) 41

छायाचित्र 8. महदहाः युग्म शवाधान, कुण्डल युक्त पुरुष कंकाल (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से) 41

छायाचित्र 9. महदहाः मृगश्रृंग और हड्डी के बने आभूषण (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से) 43

छायाचित्र 10. महदहाः मृगश्रृंग द्वारा आभूषण निर्माण प्रक्रिया का प्रमाण (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से) 43

छायाचित्र 11. महदहाः मृगश्रृंग से निर्मित मुद्रिकाओं की माला से युक्त पुरुष कंकाल (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से) 44

छायाचित्र 12. महदहाः अण्डाकार गर्त्त चूल्हा (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से) 48

छायाचित्र 13.	महदहाः हड्डियों के बने उपकरण (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)	48
छायाचित्र 14.	दमदमाः समीपवर्ती क्षेत्र में ढाक के जंगल (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)	51
छायाचित्र 15.	दमदमाः उत्खनन में मध्यपाषाणिक धरातल पर फैली पुरासामग्रियाँ (विहंगम दृश्य) (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)	51
छायाचित्र 16.	दमदमाः लेप से युक्त तथा बिना लेप वाले चूल्हे (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)	53
छायाचित्र 17.	दमदमाः जले हुये प्लास्टर युक्त फर्श (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)	53
छायाचित्र 18.	दमदमाः अनुभाग में विभिन्न चरणों के जले फर्श के प्रमाण (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)	58
छायाचित्र 19.	दमदमाः विपरीत दिशा में रखकर दफनाये गये पुरुष और नारी का युग्म शवाधान (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)	58
छायाचित्र 20.	दमदमाः शवाधानों का विहंगम दृश्य (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)	62
छायाचित्र 21.	दमदमाः विस्तीर्ण शवाधान, ऊपर के चित्र में पीठ के बल और नीचे के चित्र में पेट के बल रखकर दफनाये गये कंकाल (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)	62
छायाचित्र 22.	दमदमाः हाथ पैर मोड़कर दफनाया गया कंकाल (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)	64
छायाचित्र 23.	दमदमा : उत्खनन में पशुओं की हड्डियाँ (हाथी की पसलियाँ) (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)	64
छायाचित्र 24.	चिरांदः नवपाषाणिक लघुपाषाण उपकरण	87
छायाचित्र 25.	चिरांदः अस्थि निर्मित उपकरण	88

छायाचित्र 26.	कोलडिहवाः पलिशदार गोलाकार कुल्हाडियाँ	113
छायाचित्र 27.	टोकवाः हस्तनिर्मित खुरदुरे पात्र खण्ड	113
छायाचित्र 28.	टोकवाः हस्तनिर्मित रस्सी का छाप से युक्त मुदभाण्ड	116
छायाचित्र 29.	टोकवाः नवपाषाणिक लघुपाषाण उपकरण	116
छायाचित्र 30.	झूँसीः समुद्रकूप के टीले का विहंगम दृश्य	124
छायाचित्र 31.	झूँसीः ताम्रपाषाणिक धरातल के उत्खनन का दृश्य	124
छायाचित्र 32.	झूँसीः ताम्रपाषाणिक घड़ा	125
छायाचित्र 33.	झूँसीः ताम्रपाषाणिक छोटे आकार का घड़ा	126
छायाचित्र 34.	झूँसीः ताम्रपाषाणिक होंठदार कटोरा	127
छायाचित्र 35.	झूँसीः ताम्रपाषाणिक गिलास	128
छायाचित्र 36.	झूँसीः ताम्रपाषाणिक चित्रित पात्रखण्ड	129
छायाचित्र 37.	झूँसीः अस्थि निर्मित बाणाग्र	129
छायाचित्र 38.	झूँसीः मिट्टी के घटाकृति मनके	130

तालिकाओं की सूची

तालिका 1. सराय नाहर राय के मध्य पाषाणिक मानव अवशेष 31

तालिका 2. महदहा से प्राप्त मध्य पाषाणिक मानव के अवशेष 46

तालिका 3. दमदमा से प्राप्त मध्य पाषाणिक मानव के अवशेष 54

तालिका 4. दमदमा में लघुपाषाण के निर्माण में प्रयुक्त पाषाण प्रकार 67

तालिका 5. गांगेय मैदान और विन्ध्य क्षेत्र से प्राप्त मध्यपाषाणिक कार्बन तिथियाँ 72

तालिका 6. गांगेय मैदान और विन्ध्य क्षेत्र से प्राप्त नवपाषाणिक कार्बन तिथियाँ 95

तालिका 7. ताम्रपाषाणिक स्थलों से प्राप्त रेडियो कार्बन तिथियाँ 156

प्रथम अध्याय

मध्य गांगेय मैदान की स्थिति, भौगोलिक परिदृश्य, जलवायु, वनस्पति और जीव जगत्, जल–स्रोत, सांस्कृतिक अनुक्रम

गंगा नदी भारत की अद्भुत सांस्कृतिक धरोहर ही नहीं अपितु सदियों से भारतीय जनमानस की प्रेरणा का स्रोत रहीं है। अपने अपवाह क्षेत्र में महान संस्कृतियों का उतार चढाव और मानव की उन्नति–अवनति की गाथा समेटे हुए इस पवित्र सरिता की महत्ता का वर्णन आदि काल से न केवल पौराणिक, अध्यात्मिक साहित्य में मिलता है अपितु लौकिक साहित्य में भी इसकी विशिष्टता एवं महत्ता की अनेकानेक कथाएं और अन्तर्कथाएं प्राप्त होती हैं । समय–समय पर भारत में आने वाले विदेशी यात्रियों ने भी अपने यात्रा संस्मरणों और पुस्तकों आदि में तत्कालीन भारतीय जनमानस में व्याप्त इनकी महत्ता का विस्तृत वर्णन किया है।

यह प्राचीनतम काल से भारतीय संस्कृति की एकता एवं पवित्रता की प्रतीक मानी गई है । लोक कथाओं तथा परम्पराओं में इसे शक्ति देने वाली "गंगा माता" कहा गया है । गंगा प्रारम्भ से ही भारतीयों का आकर्षण रहीं है । चिरकाल से भारत की सांस्कृतिक एकता का यह बंधन इतना अटूट तथा शक्तिशाली है कि कोई भी शक्ति इसे नष्ट नहीं कर सकी । जन मानस में ऐसा विश्वास है कि गंगा के दर्शन मात्र से ही मुक्ति मिल जाती है । गंगा की दैवीय उत्पत्ति से सम्बन्धित अनेक कथाएं एवं किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं ।

प्राचीन भारतीय साहित्य में गंगा की परिकल्पना देवी के रूप में, श्वेत वस्त्र पहने हाथ में कमल लिये हुए तथा मकर पर बैठे हुए, की गई है । ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में शिव को गंगा की प्रशंसा में गीत गाते हुए वर्णित किया गया है । गंगा पापों से प्रायश्चित्त कराने का माध्यम है । जन्मजन्मान्तर से पापियों द्वारा किये गये पाप के ढेर को भी गंगा को स्पर्श करती हुई वायु नष्ट कर देती है । जिस प्रकार

अग्नि ईधन समाप्त करती है उसी प्रकार गंगा दुष्टों के पापों को आत्मसात कर लेती है । गंगा के तट पर मृत्यु प्राप्त करने वाले मनुष्यों के सभी पाप दूर हो जाते हैं । महाभारत (स्वर्गारोहण पर्व 18/23) के अनुसार युधिष्ठिर गंगा के पवित्र जल में स्नान करके अपने मानव शरीर को त्याग कर अमरत्व को प्राप्त हुए थे ।

गंगा के स्वर्गावतरण के विषय में अनेक कथाएं प्रचलित हैं । जनश्रुति है कि गंगा को रघुवंशी भगीरथ अपने पूर्वजों– राजा सगर के साठ हजार पुत्रों की मुक्ति हेतु पृथ्वी पर लाये थे (दुबे, 1942: 40–45)। अयोध्या के राजा सगर की दो रानियाँ थी । एक रानी से अंशुमन तथा दूसरी से साठ हजार अन्य पुत्र हुए । राजा सगर ने अश्वमेघ यज्ञ करने का निश्चिय किया तथा अपने 60,000 पुत्रों के नेतृत्व में काले घोड़े को छोड़ दिया । इस यज्ञ के द्वारा राजा सगर इन्द्र का स्थान प्राप्त करना चाहते थे । इन्द्र ने अपने पद की रक्षा हेतु एक युक्ति की। जैसे ही यज्ञ का घोड़ा सगर पुत्रों की आँखों से ओझल हुआ, इन्द्र ने उसे पाताल लोक में महामुनि कपिल के आश्रम में बाँध दिया । सभी स्थलों पर खोजने के उपरान्त वह कपिल मुनि के आश्रम में प्राप्त हुआ । ध्यानमग्न कपिल मुनि को सगर पुत्रों ने चोर समझकर अपमानित किया, जिससे क्रोधित होकर कपिल मुनि ने शाप द्वारा सभी सगर पुत्रों को भस्म कर दिया । नारद मुनि द्वारा यह समाचार राजा सगर को दिया गया तथा यह भी बताया गया कि केवल परम पावनी गंगा ही मृत्युलोक में आकर शापित सगर पुत्रों को मुक्ति दिला सकती हैं । पृथ्वी पर गंगावतरण भी सहज नहीं था । कालान्तर में रघुवंशी राजा भगीरथ की कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने गंगा को मृत्युलोक में भेजना स्वीकार कर लिया, (शर्त थी), यदि शंकर गंगा को अपनी जटाओं पर रोकना स्वीकार कर लें । शंकर के गंगा को धारण करने के लिए तैयार होने पर गंगावतरण हुआ किन्तु शिव की विशाल जटाओं में गंगा बंधी रही तथा भगीरथ को एक बार पुनः गंगा को मुक्त कराने हेतु तपस्या करनी पड़ी। भगीरथ के तप से प्रसन्न होकर शिव ने अपनी जटाओं से गंगा को मुक्त करा दिया । इसी से गंगा भगीरथ के नाम से जानी जाने लगी । इसी प्रकार की और भी किम्वदन्तियाँ गंगा के नाम से प्रचलित हैं । गंगा के स्पर्शमात्र से सगर पुत्रों को मोक्ष की प्राप्ति हुई ।

विद्वानों का विचार है कि गंगा की उत्पत्ति तिब्बत में मानसरोवर के निकट कैलाश पर्वत से हुई है किन्तु उस समय तक समुचित सर्वेक्षण नहीं हुए थे । अब इस बात में सन्देह नहीं है कि गंगा की उत्पत्ति गढ़वाल क्षेत्र से हुई है । भागीरथी गंगा की प्रमुख जलधारा है । गंगा का मूल स्रोत हिमाच्छादित गंगोत्री के निकट गोमुख नामक स्थान है (30^0 56'–27^0 64' 18'') जो समुद्र से 3831 मीटर ऊँचा है। यह इस क्षेत्र के बड़े हिमनदियों में से एक है । भागीरथी 6600 मीटर तथा 6900 मीटर उँचे शिखर वाले हिम से आच्छादित चौखम्भा से बहती है । यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि यद्यपि भागीरथी गंगोत्री हिमनद से होकर बहती है परन्तु यह गोमुख में आकर सूर्य के दर्शन करती हैं । इस भूमिगत नदी का आविर्भाव हिमनद के हिमविवर के पानी के पिघलने और पृथ्वी के नीचे–नीचे बहने से हुआ । हिमनद से निकलने वाली विभिन्न छोटी नदियाँ भागीरथी में आकर मिलती है । गंगोत्री के ठीक नीचे भागीरथी में दक्षिण से केदार गंगा आकर मिलती है ।

गंगोत्री के निकट समुद्र की सतह से लगभग 2985 मीटर ऊपर भागीरथी बहती है । गंगोत्री से लगभग 1.6 किमी नीचे भागीरथी में रूद्रगंगा नदी मिलती है जिसका स्रोत भी हिमनद है । आगे चलकर भागीरथी में अनेक नदियाँ आकर मिलती हैं यथा– गंगा या जाह्नवी, गमगम नाला, तिलगा नाला, कलदीगढ़, सलालगढ़, वनारीगढ़, भीलनगंगा आदि । देवप्रयाग तक इस नदी का नाम भागीरथी है । देवप्रयाग में आकर यह त्रिशूल के पश्चिमी ढाल पर स्थित हिमनद से उत्पन्न अलकनन्दा नदी से मिलती है । भागीरथी नदी में मिलने के पूर्व रूद्रप्रयाग नामक स्थान पर अलकनन्दा नदी मन्दाकिनी नदी से मिलती है ।

मन्दाकिनी नदी प्रसिद्ध केदारनाथ धाम के निकट ग्लेशियर से उत्पन्न होती है । भागीरथी तथा अलकनन्दा नदियाँ देवप्रयाग में आपस में मिलकर गंगा नाम धारण करती है । जल निस्तारण की दृष्टि से गंगा नदी विन्ध्य के उत्तरवर्ती तथा शिवालिक की पहाड़ियों के दक्षिणवर्ती नदियों में से सबसे महत्वपूर्ण एवं विस्तृत नदी है । गंगा नदी की लम्बाई 2,506 किमी है । इसे संसार की 39 वीं लम्बी नदी माना गया है ।

गंगा का मैदान उत्तर में हिमालय और दक्षिण में विन्ध्य पर्वत श्रृंखला के मध्य में स्थित है । गंगा के मैदान को तीन प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है:–

(1) ऊपरी गांगेय मैदान या गंगा–यमुना–दोआब जो मोटे तौर पर पूर्व में इलाहाबाद तक फैला हुआ है ।

(2) मध्य गांगेय मैदान जो मोटे तौर पर पूर्वी उत्तर–प्रदेश तथा बिहार का भू भाग है और राजमहल पहाड़ियों तक विस्तृत है ।

(3) निम्न गांगेय मैदान का सीमांकन पश्चिम बंगाल और डेल्टा तक किया गया है।

साधारण रूप से गंगा के समानान्तर बहने वाली यमुना नदी ऊपरी गंगाघाटी की दक्षिणवर्ती सीमा का निर्धारण करती है । यद्यपि यमुना तथा उसकी सहायक बनास, सिन्धु, बेतवा, केन, आदि नदियों के द्वारा राजस्थान और मध्य प्रदेश के एक विस्तृत भूभाग का जल निस्तारण गंगा के द्वारा ही होता है, किन्तु ऊपरी गंगा घाटी में प्रायः यमुना का उत्तरवर्ती क्षेत्र ही लिया जाता है ।

पश्चिम में यमुना नदी तथा पूर्व में 100 मीटर समोच्च रेखा के मध्य स्थित ऊपरी गंगा घाटी उत्तर प्रदेश के लगभग 1,49,129 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के अन्तर्गत स्थित है । उत्तर में यह क्षेत्र 300 मीटर की समोच्च रेखा के घेरे में है, जिसमें शारदा के पश्चिम में स्थित हिमालय के कुमायूँ गढ़वाल तक का क्षेत्र आता है। ऊपरी गंगाघाटी की पूर्व दिशा का विस्तार नेपाल की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा तक है तथा दक्षिण में यमुना नदी– बुन्देलखण्ड और उच्च गंगा घाटी के मध्य सीमा का कार्य करती है । प्रशासकीय दृष्टि से ऊपरी गंगा घाटी में देहरादून जिले को छोड़कर सम्पूर्ण कुमायूँ मेरठ, आगरा, रूहेलखण्ड और लखनऊ सम्भाग तथा आंशिक रूप से इलाहाबाद और फैजाबाद सम्भाग सम्मिलित किये जाते हैं ।

ऊपरी गंगा घाटी की मुख्य नदी गंगा है जिसकी दो प्रधान नदियाँ घाघरा तथा गोमती आगे चलकर मध्य गंगा घाटी में गंगा में विलीन हो जाती हैं । प्रायः सभी नदियाँ उत्तर–पश्चिम, दक्षिण–पूर्व धारा में ही बहती है । हिमालय से उत्पन्न नदियों में गंगा तथा उसकी सहायक नदियाँ यमुना, रामगंगा तथा घाघरा आदि

प्रमुख हैं । ऋतु सम्बन्धी अत्यधिक उतार–चढ़ाव होने पर भी इन नदियों में वर्ष भर आवश्यकतानुसार पानी रहता है । सरयूपार तथा अवध के मैदानी भाग घाघरा तथा गोमती द्वारा सींचे जाते हैं जबकि रामगंगा रूहेलखण्ड को सींचती है । दक्षिण से आने वाली चम्बल नदी यमुना से मिलने के पूर्व कई किमी तक यमुना के समानान्तर बहती है ।

उत्तर से दक्षिण लगभग 330 किलोमीटर और पूर्व से पश्चिम लगभग 600 किलोमीटर के 160,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले मध्य गंगा मैदान के अन्तर्गत पूर्वी उत्तर प्रदेश और लगभग सम्पूर्ण बिहार प्रान्त सम्मिलित है (रेखाचित्र 1)। इसके अन्तर्गत उत्तर प्रदेश का पूर्वी एक तिहाई और उत्तरी आधा बिहार सम्मिलित है (स्पेट और लीरमान्थ 1960: 564)। उत्तर में हिमालय तथा दक्षिण में विन्ध्य पठार से घिरी मध्य गांगेय मैदान के पूर्व और पश्चिम कोई प्राकृतिक सीमा रेखा नहीं है, फिर भी बिहार और बंगाल प्रान्तों की सीमा रेखा इसके पश्चिमी छोर का निर्धारण करती है और इलाहाबाद से फैजाबाद जाने वाली रेलवे लाइन को इसकी पश्चिमी सीमा रेखा माना गया है। उत्तरी बंगाल में नदी समूह, संचार और जीवन का स्वरूप दक्षिण बंगाल से इतना भिन्न है क़ि स्पेट के अनुसार बिहार के पूर्वी जिले पूर्णिया और समीपस्थ बंगाल के क्षेत्र को अलग भौगोलिक इकाई माना जाता है। इस प्रकार मध्य गांगेय मैदान के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद की हंडिया और फूलपुर तहसीलें, मिर्जापुर जिले का कुछ उत्तरी भाग, सन्त रविदास नगर, वाराणसी और चन्दौली जनपद, प्रतापगढ़ की पट्टी तहसील, जौनपुर, सुल्तानपुर की सुल्तानपुर और कादीपुर तहसीलें, फैजाबाद की तहसील टाण्डा और अकबरपुर जनपद, गोण्डा की बलरामपुर और उतरौला तहसीलें, बस्ती, गोरखपुर, देवरिया, बलिया, गाजीपुर तथा आजमगढ़ जिले एवं बिहार में तिरहुत, भागलपुर (किशनगंज तहसील को छोड़कर) पटना सम्भाग सम्मिलित हैं । समुद्र तल से इस क्षेत्र की औसत ऊँचाई 170 मीटर है । यह देश का सबसे उपजाऊ तथा घना बसा क्षेत्र है। इस क्षेत्र की वनस्पतियाँ उष्णकटिबन्धीय शुष्क पर्णपाती हैं । लगातार बढ़ती हुई आबादी का दबाव और उसके परिणाम स्वरूप मानव का विगत 4000 वर्षों से

रेखाचित्र 1: मध्य गंगा मैदान का प्राकृतिक मानचित्र

विशेषतया इस शताब्दी में कटाई–जुताई–बुवाई के परिणाम स्वरूप प्राकृतिक वन–सम्पदा लगभग समाप्त सी हो गयी है ।

आजकल कुछ विशेष प्रकार के पौधों को छोड़कर हर तरह की वनस्पतियाँ उगायी जाती हैं जो कि यत्र–तत्र बिखरी हुई हैं । लगभग 50 वर्ष पहले भी इस क्षेत्र में वनस्पतियों के बड़े–बड़े क्षेत्र थे । जंगली जन्तु भी बहुतायत में थे, मुख्य रूप से काला हिरन, चीतल, नील गाय, लकड़बग्घा, भालू, सियार, लोमड़ी, शाही इत्यादि उल्लेखनीय हैं। काला हिरन के झुन्ड जो कि कई सैकड़े में होते थे, गाँव के समीप देखे जा सकते थे । वनस्पति क्षेत्रों का कृषि क्षेत्रों परिवर्तन हुआ फिर भी प्रमुख वनस्पतियों में ढाक, कैथा, बेल, पीपल, बरगद, गूलर, जामुन, आम, महुआ, शीशम, नीम, धतूर, मदार, सिहौर, रूस आदि का उल्लेख किया जा सकता है (पाल, 1987: 120)। वृक्षों में सबसे अधिक आम के बगीचे मिलते हैं जो फल और लकड़ी दोनो दृष्टियों से लोगों को बहुत प्रिय है। फलों में आम एक स्वादिष्ट और स्वास्थ्य वर्धक फल माना जाता है । ऑवला, बेल, कटहल के वृक्ष भी बगीचों में पाये जाते हैं । वर्तमान में बागों के किनारे तथा खेतों के मेड़ पर बहुंत से युकिलिप्टस के वृक्ष भी लगा दिये गये हैं । बेर, अमरूद के बगीचे भी कहीं–कहीं पाये जाते हैं । नीम, बबूल, चिलबिल, लसोढ़ा पूरे क्षेत्र में पाये जाते है। बाँस भी प्रायः गाँवों के पास देखने को मिलता है । खाद्य सामग्री के अन्तर्गत फसलों में गेहूँ, जौ, चना, मटर गन्ना, तीसी, पोस्ता, सरसों, मसूर, अरहर, तम्बाकू, धान, बाजरा, सन, मूँग, उर्द, कोदों, सांवा, मूँगफली, शकरकन्द, आदि उल्लेखनीय है ।

मध्यगंगा के मैदान की जलवायु ऊपरी गंगा के अपेक्षाकृत शुष्क और निम्न गंगा के मैदान के नम जलवायु के बीच की है । ग्रीष्म ॠतु में इस क्षेत्र में प्रचण्ड गर्मी तथा शीत ॠतु में अत्यधिक ठंडक पड़ती है । लगभग 90 प्रतिशत वर्षा मानसून से होती है । औसत वार्षिक वर्षा 100 सेमी से भी अधिक होती है । मध्य गंगा के मैदान में पूर्व की अपेक्षा पश्चिम में औसत वर्षा कम होती है इसी तरह से उत्तर की तुलना में दक्षिण में वर्षा का औसत कम होता है । दिसम्बर–जनवरी के महीनों में निम्नतम और अधिकतम तापमान का औसत लगभग 50^0 और 85^0 तथा

मई में औसत तापमान बढ़कर 100^0 तक हो जाता है । यद्यपि गंगा उत्तरांचल के उत्तर–काशी जिले के 5611 मीटर उँचे गंगोत्री ग्लेशियर से भागीरथी के नाम से निकलती है । बिहार तक आते आते इसमे यमुना, गोमती, घाघरा, धौली, पिण्डार, अलकनन्दा, मन्दाकिनी, रामगंगा आदि नदियाँ मिल जाती हैं । अन्ततः यह बंगाल की खाड़ी में गिर जाती है ।

निम्न गंगा घाटी में लगभग 80,968 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र आता है । इस घाटी के अन्तर्गत उत्तर में हिमालय के दार्जिलिंग स्थान से दक्षिण में बंगाल की खाड़ी तक तथा पश्चिम में छोटा नागपुर के उच्च भूमिस्थल से लेकर पूर्व में बंगलादेश तथा असम की सीमा का क्षेत्र आता है ।

निचली गंगा घाटी में बिहार प्रान्त के पूर्णिया जिले की किशनगंज तहसील, पूर्ण बंगाल प्रान्त (पुरूलिया जिला तथा दार्जिलिंग के पहाड़ी भाग को छोड़कर) तथा बंग्लादेश का अधिकतम भाग आता है (सिंह 1971: 252) ।

गंगा का निचला मैदान वास्तव में गंगा नदी का डेल्टाई क्षेत्र है । इस मैदान की पूर्वी सीमा भारत व बांग्लादेश के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सीमा हैं । दक्षिण पश्चिम में 150 मीटर समोच्य रेखा इसकी सीमा बनाती है । इस सम्पूर्ण मैदानी भाग में गंगा नदी प्रमुख है जो कि इस भाग में पश्चिम से प्रवेश करके दक्षिण पूर्व दिशा में प्रवाहित होती है । गंगा से निकलकर समुद्र में गिरने वाली कई शाखाऐं इस निचले मैदानी भाग के अपवाह तन्त्र में अपना स्थान रखती हैं । निचली गंगा घाटी में गंगा की पश्चिमी शाखा भागीरथी, जिसे आगे चलकर हुगली कहते हैं, अत्यधिक महत्वपूर्ण है । यह समतल तथा अत्यन्त उपजाऊ मैदान है । अतः इस प्रदेश में धान, जूट, चाय, गन्ना तथा तम्बाकू आदि फसलें पैदा की जाती है (मेमोरिया, 1995: 1050–1055) ।

मध्य गंगाघाटी का परिवेश

गंगा के मध्यवर्ती मैदान के उत्तर में स्थित संलग्न हिमालय के दक्षिणी ढ़ालों पर वर्षा अधिक होती है । गंगा के दक्षिण में स्थित संकरा मैदानी भाग उत्तरी मैदानी भाग की अपेक्षा सागर तल से कुछ अधिक ऊँचा है तथा यहाँ

प्रायद्वीपीय पठार से नदियों द्वारा बिछाये गये काँप मिट्टी के अवसादों का जमाव काफी गहराई तक हुआ है ।

गंगा की सहायक नदियों में घाघरा तथा उसकी सहायक कुआनों, राप्ती, छोटी गण्डक, बूढ़ी गण्डक, कोशी, वरूणा, गोमती तथा उसकी सहायक सई एवं सोन नदियाँ उल्लेखनीय हैं (रेखाचित्र 2)। इस क्षेत्र में बहुत सी धनुषाकार झीलें भी हैं जिनसे छोटी–छोटी नदियाँ निकलती हैं ।

गंगा की सहायक नदियों में सबसे प्रमुख नदी घाघरा है जो हिमालय पर्वत से निकलती है । यह फैजाबाद जिले के उत्तरी सीमा पर प्रवाहित होती है । पौराणिक परम्परा के अनुसार इस पवित्र नदी को मानसरोवर झील से जहाँ ब्रह्मा ने विष्णु द्वारा बहाये गये आनन्द के आँसुओं को एकत्रित किया था, मुनि वशिष्ठ द्वारा जनता की प्रार्थना पर अयोध्या लाया गया । इसलिए सरयू को कभी–कभी वशिष्ठ की कन्या और वशिष्ठ गंगा भी कहा जाता है । किंवदन्ती है कि अयोध्या में गुप्तार घाट पर भगवान श्री रामचन्द्र हमेशा के लिए गुप्त हुए थे । यह नदी नेपाल की तराई से निकलकर बहराइच जनपद मे प्रवाहित होती है । अल्मोड़ा में इसे सरयू भी कहते हैं । बहराइच में 90 किलोमीटर तक प्रवाहित होने के बाद कौडियाल से मिल जाती है । इसके प्राचीन प्रवाह मार्ग को देखने से लगता है कि प्राचीन काल में कौडियाल से भिन्न धारा में प्रवाहित होती हुई यह घाघरा नदी में मिलती थी । इसके प्राचीन प्रवाह मार्ग को छोटी सरयू के नाम से जाना जाता है जो बहराइच से निकलकर गोण्डा जनपद में घाघरा में मिलती है । सरयू–घाघरा संगम के बाद यह नदी घाघरा के ही नाम से जानी जाती है । अयोध्या में भी इसे सरयू नदी कहते हैं । घाघरा की अन्य सहायक नदियों में भिथुआ, पिकिया टोड़ी, मड़हा, बिसुई, टोंस, मझुई, गोमती इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है (वर्मा, 2000: 4–5)

गोमती नदी जिला पीलीभीत के गोमती ताल से निकली है और अवध के खीरी, सीतापुर, लखनऊ, बाराबंकी और सुल्तानपुर जिले से होती हुई
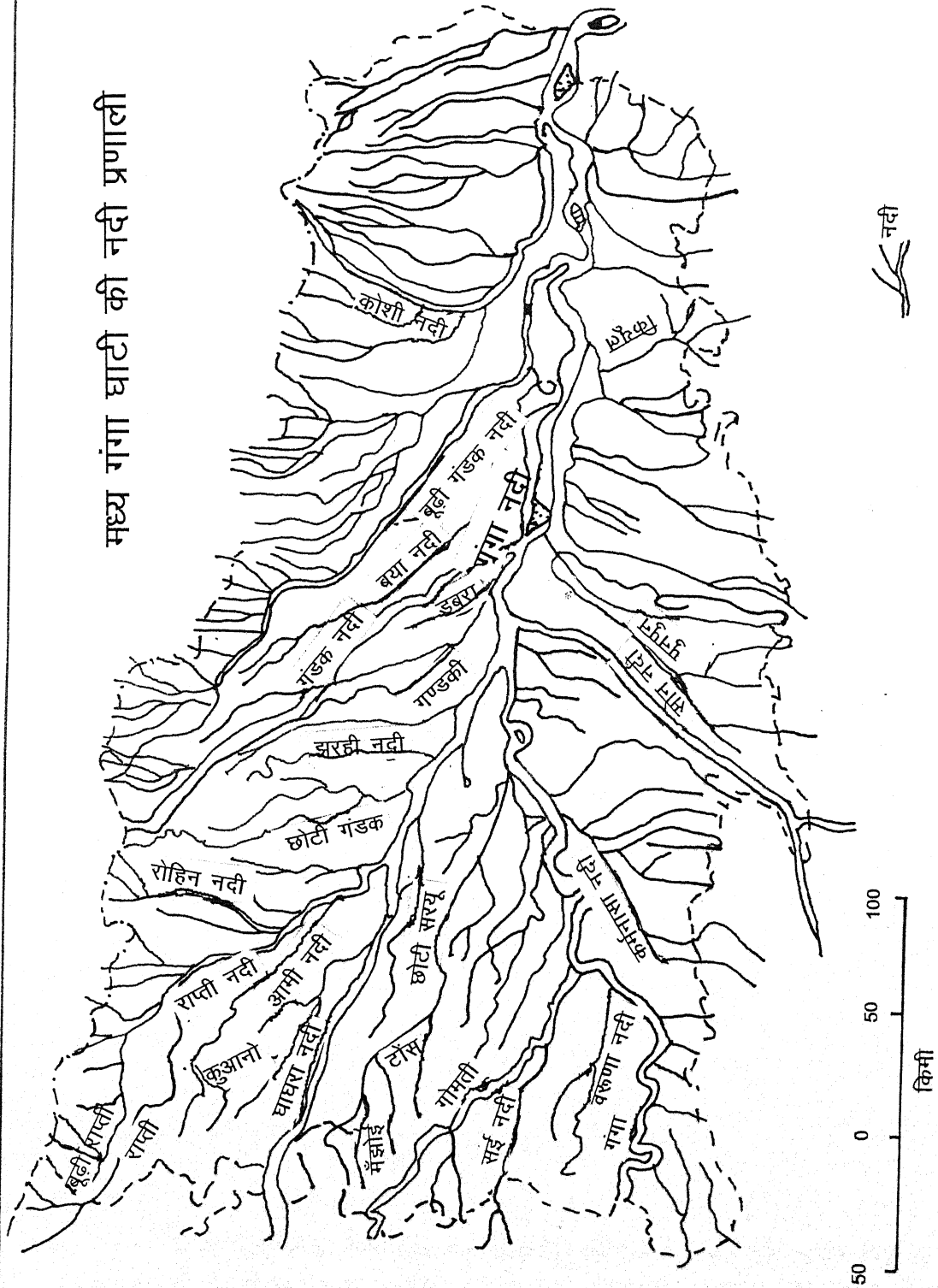
रेखाचित्र 2: मध्य गंगा मैदान की नदी प्रणाली

तहसील शाहगंज के परगना चाँदा में प्रवेश करती है । यह गाजीपुर में सैदपुर के निकट गंगा में गिर जाती है । वर्षा के दिनों में इसमें बाढ़ आ जाती है। इसकी सहायक नदियाँ पीली और सई हैं । इसके तटवर्ती अनेक स्थानों से महत्वपूर्ण पुरातात्विक अवशेष मिले हैं । इनसे इस भूभाग में विभिन्न युगों में बसने वाले लोगों की सभ्यता एवं संस्कृति पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है (दूबे एवं कुमार 1988:7)।

गण्डक नदी भी गंगा की प्रमुख नदियों में एक है । यह नदी अपनी सात सहायक नदियों के साथ मध्य हिमालय में नेपाल की उत्तरी सीमा और तिब्बत में विस्तृत हिमालय की अन्नपूर्णा पहाड़ियों के समीप मानग मोह एवं कुतांग के समीप से निकलती है । नेपाल में इसे सप्तगण्डकी के नाम से पुकारते हैं । यह लगभग 120 किमी दूर तक उत्तर प्रदेश व बिहार की सीमा बनाती है । इसकी प्रवाह दिशा घाघरा की भाँति ही दक्षिण पूर्व दिशा में है । यह नदी पटना से पूर्व में हाजीपुर एवं सोनपुर के मध्य बहती हुई मुजफ्फरपुर एवं सारन जिलों की सीमा बनाते हुए गंगा में प्रवेश कर जाती है ।

बूढ़ी गण्डक सोमेश्वर श्रेणियों के पश्चिमी भाग से निकलकर बिहार के उत्तरी–पश्चिमी जिले पश्चिमी चम्पारण में प्रवेश करती है । यह नदी चम्पारण, मुजफ्फरपुर, दरभंगा और उत्तरी मुंगेर जिलों में प्रवाहित होती हुई गंगा में समा जाती है । इसकी मुख्य सहायक नदियाँ हैं– पंडई, मनियारी, कापन, मसान करहहा, डरई, तैलाबे, तियर, प्रसाद आदि । बूढ़ी गण्डक चम्परण जिले में गण्डक नदी के बिल्कुल समानान्तर प्रवाहित होती है । इन दोनों नदियों का भू–वैज्ञानिक स्वरूप एक सा रहा है ।

कोशी नदी का निर्माण वस्तुतः पूर्वी नेपाल में स्थित सप्तकौशिकी क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली सात जलधाराओं से बनने वाली तीन (तांबर, अरूण और सुतकौशी) के संगम से हुई है । त्रिवेणी के बाद से ही इस संयुक्त धारा को कोशी कहा जाता है । कोशी अपना प्रवाह मार्ग परिवर्तित करते रहने के कारण बिहार की शोक नदी के नाम से मशहूर रही है । इसका पौराणिक नाम कौशिकी है । यह बिहार में गंगा की सबसे लम्बी सहायक नदी है । इस नदी ने दो सौ वर्षों में

अपना मार्ग लगभग एक सौ किमी पश्चिम की तरफ बदल लिया है । यह भयंकर बाढ़ों के लिए बदनाम रही है । इसकी प्रमुख सहायक नदी कमला नदी है । पूर्णिया जिले में गोगरी कस्बे के समीप गंगा में मिलने के पूर्व यह अपनी डेल्टा बनाती है ।

सोन नदी का उद्गम गोण्डवाना क्षेत्र में स्थित मैकाल पर्वत के अमरकंटक नामक पठारी भाग से हुआ है । यह नदी छोटा नागपुर के पठार की ओर से गंगा में मिलने वाली सबसे बड़ी नदी है । बिहार में इसका एक तिहाई भाग ही प्रवाहित होता है । यह नदी पलामू–रोहतास, औरंगाबाद, भोजपुर, पटना जिलों की सीमा बनाते हुए पटना से पहले दानापुर से 16 किमी दूर गंगा में मिल जाती है । इसकी मुख्य सहायक कोयल नदी है । सोन को प्राचीन काल में हिरण्यवाह, सौआ, मागधी आदि नामों से पुकारा गया है ।

बरुणा नदी इलाहाबाद के मदाहन झील से निकलकर 96 किमी0 तक मिर्जापुर और जौनपुर की सीमा स्थापित करती हुई बनारस नगर के पास गंगा से मिल जाती है।

सई नदी, गोमती की प्रमुख सहायक नदी है । यह नदी हरदोई जिले की झील से निकलकर लखनऊ को उन्नाव से विभाजित करती हुई रायबरेली प्रतापगढ़ से होती हुई जौनपुर परगना गड़वारा में प्रवेश करती है । यह राजेपुर के पास गोमती मे गिरती है ।

वस्तुतः गंगा तथा उसकी सहायक नदियों द्वारा गंगा के मैदान का निर्माण हुआ है । जैसे–जैसे पूर्व की ओर बढ़ते हैं, नदियों में वर्षा ऋृतु में बाढ़ अधिक दिखायी पड़ती है । पूर्व में कोसी नदी विशेष रूप से भयावह हो जाती है, जो 24 घंटे के अन्दर 10 मीटर तक बढ़ जाती है । अन्य नदियों – घाघरा, बड़ी गण्डक, बूढ़ी गण्डक, कामला में बाढ़ का प्रकोप अपेक्षाकृत कम है । इन नदियों का पाट चौड़ा है । इस क्षेत्र में धनुषाकार झीलों की एक लम्बी श्रृंखला है । बूढ़ी गण्डक के प्राचीन प्रवाह मार्ग में इस तरह की एक श्रृखला 363 वर्ग किमी के क्षेत्र में विस्तृत है । इस प्रकार पश्चिमी उत्तर प्रदेश की तुलना में बिहार का क्षेत्र अधिक

नम है । यही कारण है कि उत्तरी बिहार पूरे भारत में ताजे पानी की मछलियों का सबसे बड़ा भण्डार है । गंगा के दक्षिण में इस मैदान में जलोढ़ मिट्टी की मोटाई कम है । सम्पूर्ण क्षेत्र को भांगर और खादर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है । भांगर प्राचीन मैदान है, खादर नदियों के नयी जलोढ़ मिट्टी से निर्मित होता है, जो बरसात के बाद रबी की खेती के लिए उपयुक्त माना जाता है । खादर मिट्टी में हल्की बलुई दोमट मिट्टी होती है, जिसका अधिकांश क्षेत्र बड़ी गण्डक और गंगा के उत्तर और पूर्व में 32 किमी तक के क्षेत्र में पट्टी के रूप में मिलता है जो मुख्यतः मटियार मिट्टी है, जिसमें कहीं कहीं चूने से युक्त मिट्टी और दोमट मिट्टी मिलती है ।

इस क्षेत्र की प्रमुख झीलों में देवहट झील, मउझील, गड़हा झील, हंसवर झील, डोमन झील, (सभी फैजाबाद जनपद) जमुताई, अरे–बरे, चिताब, करनौली, सरायभोगी, दोहावर, जमुआ, खौसीपुर, पैसारा, लवामन, गुजरा, (जौनपुर जनपद) गोखुर आदि का उल्लेख किया जा सकता है ।

भारत के औद्योगिक नक्शे पर चीनी को छोड़कर गंगा का मध्यवर्ती मैदान कुछ भाग उद्योगों के होने पर भी शून्य है । इस विशाल मैदानी भाग में खनिजों के अभाव के कारण कृषि से उपलब्ध संसाधनों पर ही आधारित उद्योग प्रधान हैं । चीनी के प्रमुख उद्योग होने से अधिकांश कारखाने उत्तरी मैदानी भाग में पूर्व से लेकर चम्पारन, सारन, देवरिया, गोरखपुर होते हुए गंगा एवं घाघरा के उत्तर स्थित मैदानी भाग में उपलब्ध हैं । कुछ ही कारखाने घाघरा व गंगा के दक्षिण में हैं । उत्तर प्रदेश में यह कारखाने सरयू के दक्षिण पटना, गया, इलाहाबाद, बलिया, आजमगढ़, जौनपुर, फैजाबाद, सुल्तानपुर, वाराणसी जनपदों में एक या दो की संख्या में स्थित हैं (मिश्र, 1985: 413–414)। उत्तरी मैदानी भाग में उद्योग सीमित है । बरौनी में तेल तथा पैट्रोकेमिकल्स; रेलवे उद्योग जमालपुर, गोरखपुर; जूट उद्योग कटिहार, समस्तीपुर तथा सहजनवा (गोरखपुर) में स्थित है । यद्यपि सूती वस्त्र उद्योग के बड़े कारखाने नही हैं परन्तु पावरलूम तथा हैण्डलूम उद्योग के मध्यम एवं लघु वर्ग के उद्योगों के रूप में सूती वस्त्र उद्योग पटना (पुलवरिया शरीफ), मधुवनी, बिहार शरीफ, बक्सर, गया, मुबारकपुर, मऊ, वाराणसी, जलालपुर

टाण्डा तथा खलीलाबाद में स्थापित है । भागलपुर अपने टसर के वस्त्रों के लिए तथा वाराणसी बनारसी रेशम की साड़ी के लिए देश में विख्यात है। कालीन उद्योग के मुख्य केन्द्र मिर्जापुर एवं भदोही हैं जो देश एवं विदेशी बाजारों को कालीन का निर्यात करते है। इस मैदानी भाग के मध्यवर्ती दक्षिणी पश्चिमी भाग में डालमियानगर एक प्रमुख औद्योगिक केन्द्र है, जहाँ कागज, सीमेन्ट, चीनी, रसायन कार्ड–बोर्ड, प्लाईवुड, वनस्पति तेल तथा अन्य कई उद्योग हैं । इसके अतिरिक्त वाराणसी में सिल्क, रेल के डीजल इंजन, साहूपुरी का वृहद रसायन उद्योग, रामनगर का शीशा उद्योग, साइकिल एवं घंटी उद्योग तथा दाल उद्योग प्रमुख हैं । पटना, भागलपुर, गया आदि में इण्डस्ट्रीयल स्टेट की स्थापना कर अनेक मध्यम तथा लघु उद्योगों को स्थापित करके विकसित करने का प्रयास किया गया है । भारत में सिगरेट का सबसे बड़ा कारखाना मुंगेर में है।

मध्य गंगा घाटी की परिवर्तित स्थिति तथा सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था ने जो कि सहस्त्रों वर्ष की सभ्यता के पश्चात् व्यवस्थित हुई है, इस क्षेत्र को सम्पूर्ण भौगोलिक संयुक्ति प्रदान की है । विकास के क्षेत्र में भी अन्तर्क्षेत्रीय विभिन्नता देखने को मिलती है । इस क्षेत्र के उत्तरी व दक्षिणी किनारे क्षेत्रीय मुख्य धाराओं के साथ विकास, विस्तार तथा सम्मिलन की ओर अग्रसर है । मध्यगंगा घाटी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विकास की दृष्टि से सम्पूर्ण गंगा घाटी में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है । इस क्षेत्र में अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा पुरातात्विक सर्वेक्षण भी अधिक हुआ है । इस क्षेत्र में बहुत से स्थलों से पुरातात्विक अवशेष स्तरित तथा अस्तरित स्थलों से प्रकाश में आये हैं ।

सांस्कृतिक अनुक्रम

पुरातात्विक अन्वेषणों के आलोक में हम मध्य गंगाघाटी के सांस्कृतिक अनुक्रम को स्पष्ट रूप से रेखांकित कर सकते हैं । कुछ दशक पूर्व मध्य गंगा घाटी में मानव इतिहास के ज्ञान का सूत्र ऐतिहासिक काल से पहले नहीं पहुँच पाता था । मध्य गंगा घाटी में प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा की गयी खोजों ने इसे भारत के प्रागैतिहासिक मानचित्र पर रख दिया है (शर्मा एवं अन्य 1980a)।

प्रारम्भिक नूतन काल में इस क्षेत्र में दक्षिण से मध्य पाषाणिक मानव के आगमन के प्रमाण मिलते हैं । इस क्षेत्र की प्रथम पाषाण संस्कृति मध्य पाषाण काल से सम्बन्धित है, जिसे स्तरीकरण, उपकरण प्रकार और तकनीक के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित किया गया है:–

(1) अनुपुरा पाषाणकाल

(2) अज्यामितीय मध्य पाषाणकाल

(3) ज्यामीतीय मध्य पाषाणकाल

इन संस्कृतियों के 200 से भी अधिक स्थल प्रकाश में आये हैं, जिनमें से तीन स्थलों सरायनाहर राय, महदहा और दमदमा का उत्खनन पुरातात्विक अन्वेषणों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । नव–पाषाण संस्कृत के भी कई स्थल प्रकाश में आयें हैं । कुछ स्थलों का उत्खनन भी हुआ है जो नव–पाषाण संस्कृति के पुनर्निर्माण में सहायक है । नवपाषाण काल के उत्खनित स्थलों में सोहगौरा, इमलीडीह, लहुरादेवा और झूँसी तथा बिहार के चिरांद, चेचर कुतुबपुर, और सेनुआर स्थलों का उल्लेख किया जा सकता है । गौतम बुद्ध का कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से मध्य गंगा घाटी ही था; उनके पहले का इस क्षेत्र का इतिहास अन्धकार के आवरण से आवृत्त था । पुरातत्वविदों द्वारा रामायण में वर्णित स्थलों के पुरातात्विक अन्वेषण से भी इस क्षेत्र में पुरातत्व, इतिहास और संस्कृति पर उल्लेखनीय प्रकाश पड़ा है । इन स्थलों का उत्खनन भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण और इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्स स्टडी, शिमला द्वारा प्रो0 बी0 बी0 लाल के निर्देशन में 'रामायण संस्कृति की खोज' के सन्दर्भ में किया गया। अयोध्या में पहले काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा भी उत्खनन किया गया था। इन स्थलों पर मिलने वाली सबसे पहली संस्कृति उत्तरी कृष्ण ओपदार पात्र परम्परा (एन0 बी0 पी0) के ठीक पहले की संस्कृति है जिसे 800 ई0 पू0 से 600 ई0 पू0 का समय प्रदान किया जा सकता है। श्रृंगवेरपुर की प्रथम संस्कृति–गैरिक मृद्भाण्ड संस्कृति (1050 से 1000 ई0 पू0), द्वितीय संस्कृति– ताम्रपाषाणिक संस्कृति (950 से 700 ई0 पू0) और तृतीय

संस्कृति– उत्तरी कृष्ण ओपदार पात्र परम्परा की संस्कृति 750 से 250 ई0 पू0 है । इसी प्रकार का अनुक्रम झूँसी के उत्खनन से भी प्राप्त हुआ है ।

इस प्रकार अब तक इस क्षेत्र में किये गये पुरातात्विक अध्ययनों से जो सांस्कृतिक क्रम प्रकाश में आया है उसे निम्न संस्कृतियों के अन्तर्गत रखा जा सकता है :–

(1) अनुपुरापाषाण काल

(2) मध्य पाषाण काल

(3) नव पाषाण काल

(4) ताम्र पाषाण काल

(5) प्रारम्भिक लौह और प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल

अधिकांश स्थलों पर नवपाषाण काल के बाद ताम्र पाषाण और प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल के जमाव भी मिले हैं । ताम्र पाषाण काल के उत्खनित स्थलों में उत्तर प्रदेश के श्रृगंवेरपुर, झूँसी, राजघाट, प्रहलादपुर, मसोनडीह, सोहगौरा, धुरियापार, सिसवाना, भूनाडीह, वैना, नरहन, इमलीडीह और खैराडीह, बिहार के सोनपुर, चिरांद, ओरियप, चेचर, चम्पा, मानेर, मांझी और सेनुवार उल्लेखनीय हैं ।

द्वितीय अध्याय

मानव अस्तित्व के प्राचीनतम प्रमाणः अनुपुरापाषाण काल और मध्यपाषाण काल की संस्कृतियों का उद्‌भव एवं विकास

गंगा के मैदान ने भारत के प्रारम्भिक इतिहास और संस्कृति के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यहाँ पहाड़ न होने के कारण पाषाण युगीन संस्कृतिय के अस्तित्व की संभावना को पुरातत्वविदों ने लगभग नकार दिया था । इस क्षेत्र मे हुए पुरातात्विक अनुसंधानों ने इस असम्भवना के विपरीत यह प्रमाणित कर दिय कि यहाँ का इतिहास परवर्ती प्रातिनूतन कालीन पाषाणयुगीन संस्कृतियों से प्रारम्भ होता है ।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा इस क्षेत्र में किये गये पुरातात्विक अन्वेषणो ने मध्य गंगा घाटी के प्रागैतिहासिक और प्रराम्भिक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को नय क्षितिज प्रदान किया और गंगा के मैदान का इतिहास प्रागैतिहासिक काल से ह विश्व इतिहास के मानचित्र पर रेखाकिंत हो सका ।
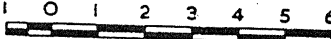
मध्य गंगा घाटी के दक्षिणी भूभाग में विन्ध्य क्षेत्र से मानव के अस्तित्व के प्राचीनतम् प्रमाण 4–5 लाख वर्ष पूर्व के हैं । इस क्षेत्र की नदी उपत्यकाओं के अनुभागों से पाषाणयुगीन संस्कृतियों के क्रमिक विकास के उल्लेखनीय प्रमाण मिले हैं (शर्मा 1973a: 106–108)। तत्कालीन पशुओं के अश्मीभूत अवशेष और मानव निर्मित पाषाण उपकरण नदी अनुभागों और वेदिकाओं से प्राप्त होते हैं । विन्ध्य क्षेत्र में स्थित उद्योग स्थलों से मिलने वाले उपकरणों तथा उपकरण निर्माण प्रक्रिय में निकले फलकों आदि से भी तत्कालीन मानव की कहानी के पुनर्निर्माण मे सहायता मिलती है। उच्चपूर्व पाषाण काल में विन्ध्य क्षेत्र की जलवायु में परिवर्तन होने लगा था, इसके प्रमाण यहाँ के नदी अनुभागों के जमावों से प्राप्त हुए हैं बदले हुए परिवेश के कारण ही संभवतः उपकरण निर्माण प्रविधि में परिवर्तन करवे

जलवायु में हुए इस क्रान्तिकारी परिवर्तन का प्रभाव गंगा घाटी पर भी पड़ा। फलस्वरूप गंगा को अपने प्राचीन प्रवाह मार्ग को छोड़कर दक्षिण की तरफ खिसकना पड़ा और विन्ध्य क्षेत्र के पाषाण युगीन मानव को शुष्क जलवायु की विभीषिका से बचने के लिए जीविका की तलाश में गंगा के मैदान में उतरना पड़ा (शर्मा 1975: 5–6)। संभवतः जिस समय इस क्षेत्र में भांगर के ऊपरी स्तर का निर्माण हो रहा था उसी समय गंगा घाटी में मानव का पदार्पण हुआ (पाण्डेय 1983: 296)। जनसंख्या वृद्धि तथा बदली हुई जलवायु से निजात पाने के लिए मध्य पाषाणिक मानव ने गंगा के प्राचीन प्रवाह मार्ग में निर्मित धनुषाकार झीलों के किनारे आवासों का निर्माण किया, जहाँ उसे पानी और भोजन दोनों आसानी से उपलब्ध हो सके।

गंगा के प्राचीन प्रवाह मार्ग में निर्मित अधिकांश झीलें अभी भी अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं (रेखाचित्र 3)। कुछ झीलें प्राकृतिक कारणों से भर गयी है और कुछ को यहाँ के निवासियों ने खेतों में परिवर्तित कर लिया है। मध्य गंगा घाटी के वर्तमान धरातल के निर्माण में इन झीलों का अत्यधिक योगदान है क्योंकि इस क्षेत्र की अधिकांश नदियाँ इन्हीं झीलों से निकलती हैं (शर्मा 1973: 129–30)। इन झीलों के किनारे का पुराना धरातल ऊसरीला होने के कारण खेती के लिए अधिक उपयुक्त नहीं है, यही कारण है कि इन झीलों के तट पर स्थित पुरातात्विक स्थल अभी तक सुरक्षित रह सके ।

गंगा घाटी में कई स्थलों पर गंगा के पुराने कछार के अनुभागों में चार जमाव मिलते हैं (शर्मा, 1975: 5–6)। सबसे नीचे का जमाव कंकरीली पीली मिट्टी का है। इसके ऊपर काली मिट्टी का जमाव है । तीसरा जमाव पोतनी मिट्टी का जमाव है और सबसे ऊपर बलुई मिट्टी का लगभग 2 मीटर मोटा जमाव है (रेखाचित्र 4)। गंगाघाटी के इस ऊपरी जमाव में ऊपर से नीचे तक लघुपाषाण उपकरण प्राप्त होते है । इस आधार पर हम कह सकते हैं कि इन उपकरणों का निर्माता मध्य पाषाण कालीन मानव इस क्षेत्र में उस समय आया जब इस ऊपरी बलुई मिट्टी का जमाव प्रारम्भ हुआ था और उसका कार्य काल इस जमाव के अन्त तक चलता रहा।
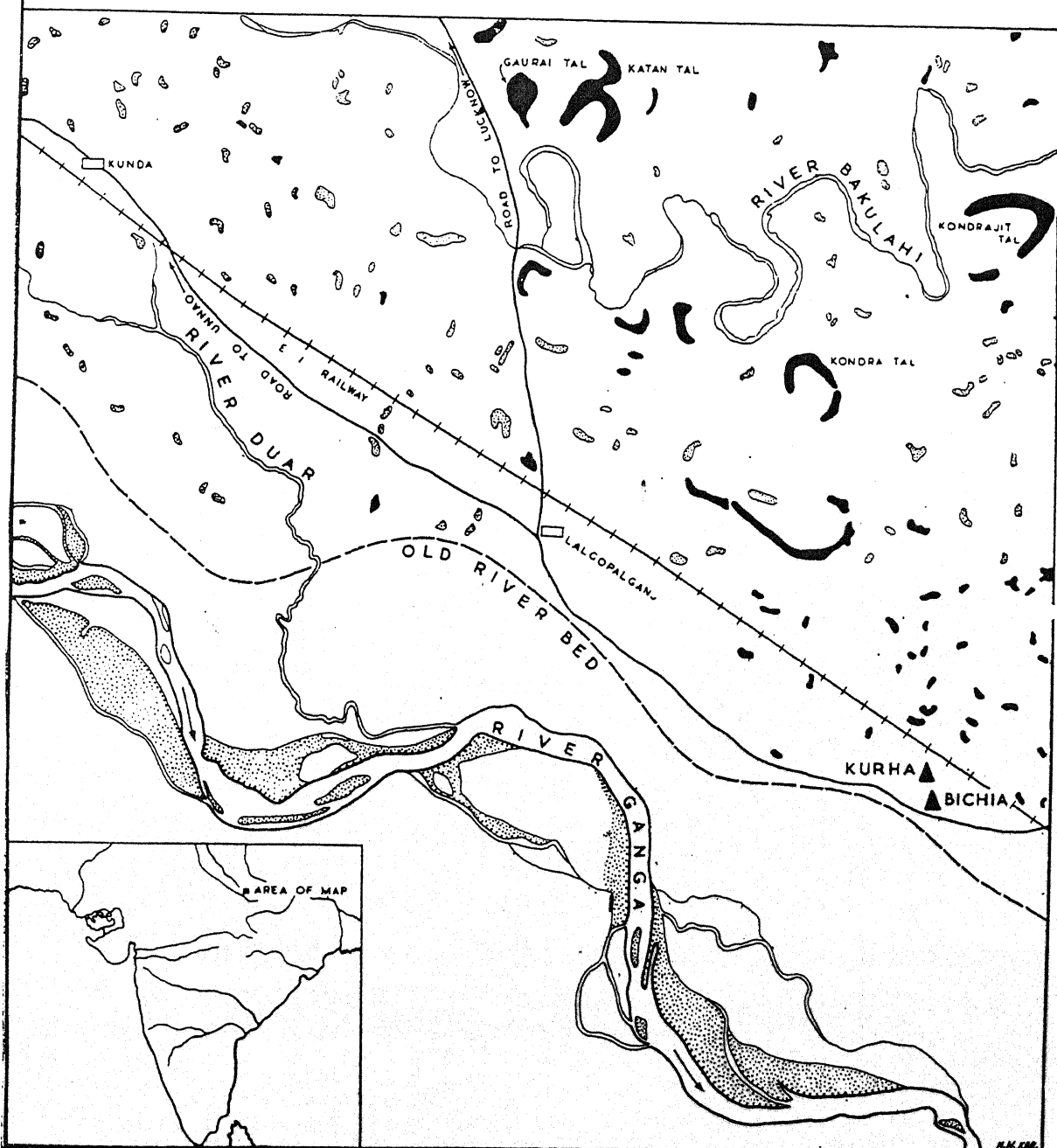
रेखाचित्र 3: मध्य गंगा मैदान में धनुषाकार झीलें

SCHEMATIC SECTION OF THE OLDER TERRACE–GANGA

HUMUS

SANDY SOIL

MICROLITHIC TOOLS

PLASTIC CLAY

END OF PLEISTOCENE ?

BLACKISH CLAY=HUMUS LAYER OF THE BELAN(HUMID PHASE)

CONCRETION = GRAVEL III OF THE BELAN
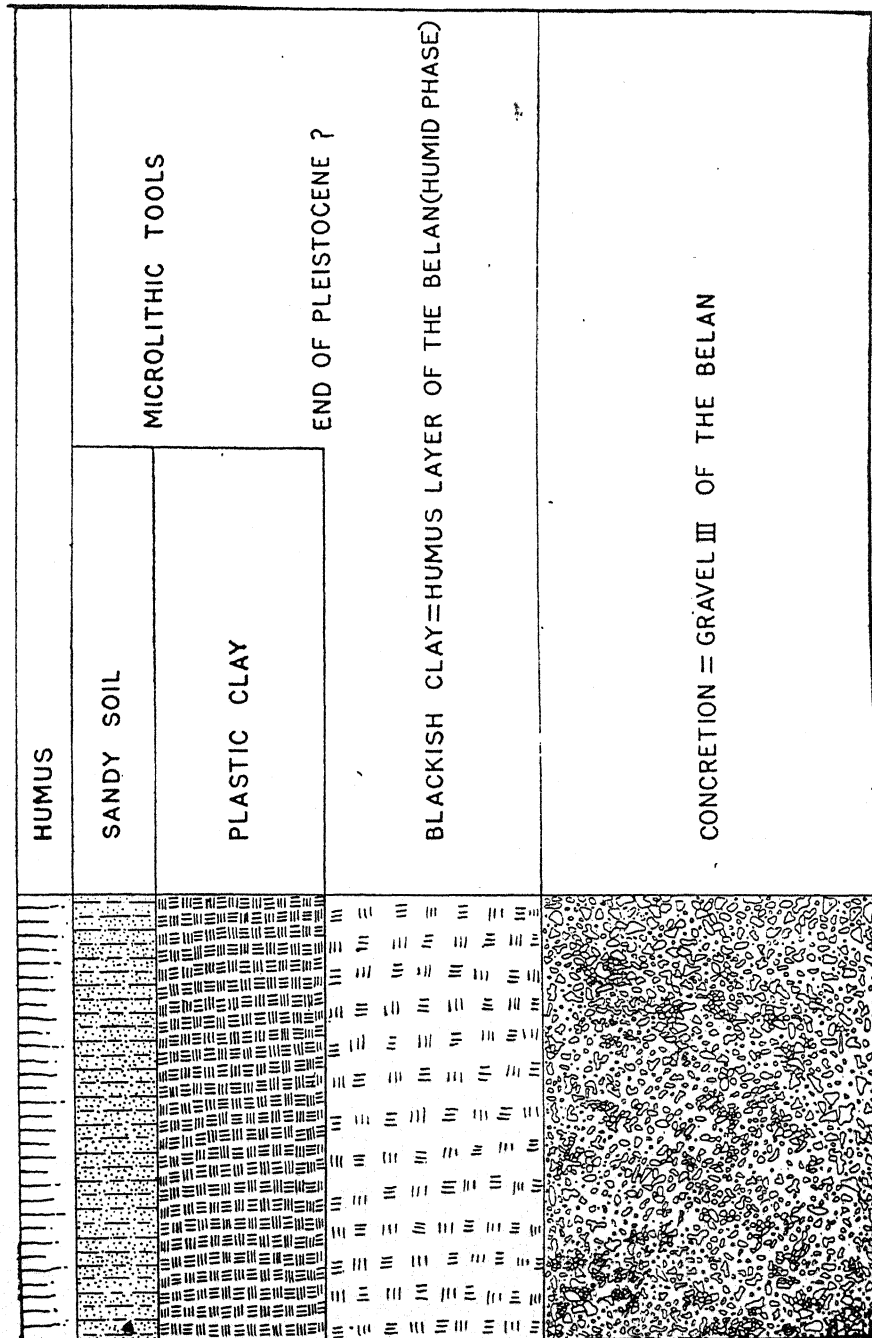
रेखाचित्र 4: गंगा के भू–तात्विक जमाव का अनुभाग

नवीन शोधों के आलोक में मध्य पाषाण काल के भी पहले के सांस्कृतिक अवशेष गंगा के मैदान से प्राप्त हुए हैं, इन उपकरणों को उच्च पूर्व पाषाण काल तथा मध्य पाषाण काल के संक्रमण काल का माना जाता है । ये उपकरण जिस धरातल से प्राप्त होते है, उसके अवलोकन से यह कहा जा सकता है कि इनका भूतात्विक धरातल गंगा के कछार का तीसरा जमाव– पोतनी मिट्टी का ऊपरी धरातल है (पाल 1980: 2–3)। इसी धरातल पर सर्वप्रथम पाषाण कालीन मानव मध्य गंगा घाटी में आया ।

मध्य गंगा घाटी में अद्यतन हुए पुरातात्विक अन्वेषणों के माध्यम से निम्नलिखित संस्कृतियाँ प्रकाश में आयी जिनका विवरण इस प्रकार है:

परवर्ती उच्चपुरापाषाण (अनुपुरापाषाण) कालीन संस्कृति

गंगा घाटी की इस प्राचीनतम संस्कृति (शर्मा, 1975: 9) के प्रमाण अभी तक पाँच स्थलों से प्राप्त हुए हैं :(अक्षांश 25^0 23′ 45′ उ0, देशान्तर 82^0 53′ 45″ पूर्व), इलाहाबाद में अहिरी (अक्षांश 25^0 59′ 23″ उ0, देशान्तर 82^0 2′ 35″ पूर्व), मन्दाह (अक्षांश 25^0 59′0″ उ0 देशान्तर 82^0 2′ 35″ पूर्व) तथा साल्हीपुर (अक्षांश 26^0 0′ 10″ उ0 देशान्तर 82^0.4′ 30″ पूर्व) ये स्थल (शर्मा 1978: 24), धनुषाकार झीलों अथवा इन झीलों से निकलने वाली सरिताओं के तट पर स्थित हैं ।

उच्चपूर्वपाषाण काल तथा मध्यपाषाण काल के संक्रमण कालीन संस्कृतिक स्थलों से अत्यधिक मात्रा में पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं । इन स्थलों पर पूर्ण निर्मित उपकरणों के साथ ही निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं में उपकरणो प्राप्त होते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि इन उपकरणों क्रोड, फलक आदि का निर्माण इनके प्राप्ति स्थलों पर किया गया है । गंगा घाटी में पाषाणों का स्रोत नहीं है । विन्ध्य क्षेत्र से पाषाण कालीन मानव पत्थर के पिण्ड लेकर गंगा घाटी में आता था। यहीं पर उपकरणों का निर्माण करता था और शिकार करता था । जलवायु और परिवेश में परिर्वतन तथा तत्कालीन आबादी में वृद्धि इस आगमन का कारण रहा होगा। अभी तक इस संस्कृति के किसी स्थल का उत्खनन नहीं हुआ हैं लेकिन इन स्थलों की सतह से जो उपकरण एकत्र किये गये हैं वे सभी चर्ट पत्थर पर

निर्मित हैं और उन पर अत्यधिक रासायनिक काई लगी हुई है । उपकरण प्रकारों में समानान्तरबाहु वाले ब्लेड, भुथड़े ब्लेड, तक्षणी, नोंक, खुरचनी, अर्द्धचन्द्र आदि उल्लेखनीय हैं (रेखाचित्र 5)।

विन्ध्य क्षेत्र में बेलन नदी के तट पर स्थित एक स्थल चोपनी माण्डो (शर्मा एवं मिश्र 1980) का उत्खनन किया गया है । इस स्थल की प्रथम संस्कृति उच्चपूर्वपाषाण और मध्यपाषाणकाल के संक्रमण काल की संस्कृति है। पाषाण कालीन मानव ने सर्वप्रथम इसी काल में गोलाकार झोपडियाँ बनाकर आवास प्रारम्भ किया । गंगा घाटी की इस प्राचीनतम संस्कृति ने पाषाण कालीन मानव के ऋतुनिष्ठ प्रवजन का भारत में प्राचीनतम प्रमाण प्रस्तुत किया है, जबकि विन्ध्य क्षेत्र की सूखे की विभीषिका से बचने के लिए मनुष्य जीविका की तलाश में नदी घाटियों को पार करता हुआ उत्तर की तरफ आया । संभवतः उसका इस क्षेत्र में आगमन नितान्त अल्पकालिक होता था । अनुकूल मौसम में वह पुनः अपने मूल क्षेत्र में लौट जाता था । इस काल के उपकरणों का जो अध्ययन किया गया है उससे इस बात के प्रमाण मिले हैं कि इस संस्कृति के गंगा घाटी के उपकरण विन्ध्य क्षेत्र के उपकरणों की अपेक्षा छोटे हैं । उपकरणों की यह आकारगत न्यूनता गंगा घाटी में पत्थर पिण्डों की अनुपलब्धता के कारण थी; मानव ने इनकी महत्ता को ध्यान में रखकर तब तक उपकरण निर्माण किया जब तक ये अत्यन्त छोटे नहीं हो गये ।

विन्ध्य क्षेत्र में उच्च पूर्व पाषाण काल के उपकरण सीमेन्टेड ग्रेवेल तृतीय से मिलते हैं । इस जमाव से दो कार्बन तिथियाँ 23840±830, 760 ई0 पू0 और 17765±340 ई0पू0 (जुलाई 1973, फिजिकल रिसर्च लैब्रोरेटरी, अहमदाबाद) प्राप्त हुई हैं । इस आधार पर विन्ध्य क्षेत्र की उच्च पूर्व पाषाण तथा मध्य पाषाण काल के संक्रमण कालीन संस्कृति को 17000 ई0पू0 के बाद का माना गया है । गंगा घाटी की इस संस्कृति को भी यही समय प्रदान किया जा सकता है ।

MESOLITHIC SITES IN THE GANGETIC PLAIN
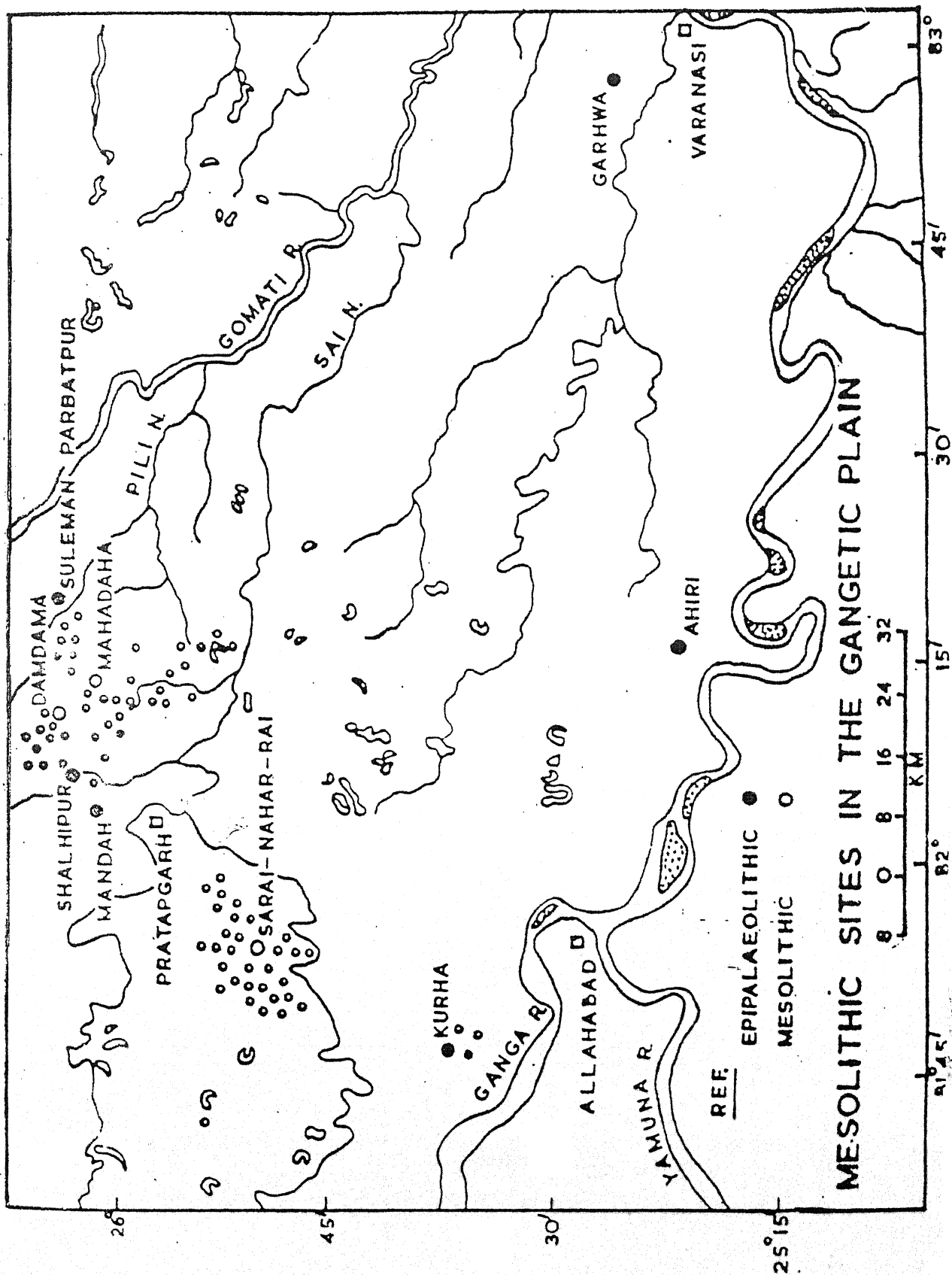
मध्यपाषाण कालीन संस्कृति

सांस्कृतिक अनुक्रम में उपर्युक्त संस्कृति के बाद जिस पाषाण कालीन संस्कृति के प्रमाण मिले हैं उसे मध्य पाषाण कालीन संस्कृति के नाम से जाना जाता है । इस काल के जीव और वनस्पति जगत के अध्ययन से यह तथ्य उद्घटित हुआ है कि अब घास के मैदानों की अधिकता हो गयी थी । मनुष्य को शिकार करने के लिए और खाने योग्य जंगली घासों को काटने के लिए नये प्रकार के उपकरण की आवश्यकता हुई । ये उपकरण आकार में अत्यन्त छोटे हैं अतः इन्हें लघु पाषाण उपकरण कहा जाता है । इसके पूर्व की संस्कृति के उपकरण प्रायः चर्ट पत्थर पर बने थे । अब अगेट, कार्नेलियन, क्वार्ट्ज आदि पत्थरों का प्रयोग उपकरण निर्माण में होने लगा था । यद्यपि इन उपकरणों के निर्माण की तकनीक वही है जो उच्च्य पूर्व पाषाण तथा मध्य पाषाण काल के संक्रमण काल की है, लेकिन उपकरण प्रकारों में अब अधिक विविधता दृष्टिगोचर होती है ।

इस संस्कृति के उपकरण सबसे अधिक क्षेत्र में सबसे अधिक स्थलों से प्राप्त हुए है (रेखाचित्र 6)। गंगा के उत्तर वाराणसी, इलाहाबाद, सुल्तानपुर, जौनपुर और प्रतापगढ़ से इस संस्कृति के लगभग 193 स्थल प्रकाश में आयें हैं (ये सब पुरातात्विक स्थल प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रो० जी० आर० शर्मा के निर्देशन में किये गये सर्वेक्षण के परिणाम स्वरूप प्रकाश में आये हैं) । इस संस्कृति के विकास की अवस्था में कुछ नये उपकरणों का अविष्कार हो जाता है । ये उपकरण त्रिभुज एवं समलम्ब चतुर्भुज के आकार के हैं । अपने ज्यामितीय आकार के कारण मध्य पाषाणिक संस्कृति के इस चरण के उपकरणों को ज्यामितीय लघु पाषाण उपकरण कहते हैं । इस प्रकार मध्य पाषाणिक संस्कृति दो चरणों में विभक्त हो गयी है :

(1) अज्यामितिक लघु पाषाण उपकरण से युक्त मध्य पाषाणिक संस्कृति

(2) ज्यामितिक लघु पाषाण उपकरण से युक्त मध्य पाषाणिक संस्कृति

गंगा घाटी में सबसे अधिक 172 स्थल अज्यामितिक लघु पाषाण उपकरणों वाले हैं । इसके प्रमुख स्थलों में इलाहाबाद के कुढ़ा (अक्षांश 25° 35′ 4″ उ०, देशान्तर 81° 43′ 17″ पूर्व), भीखमपुर (अक्षांश 25° 31′ 58″ उ०, देशान्तर 81° 44′
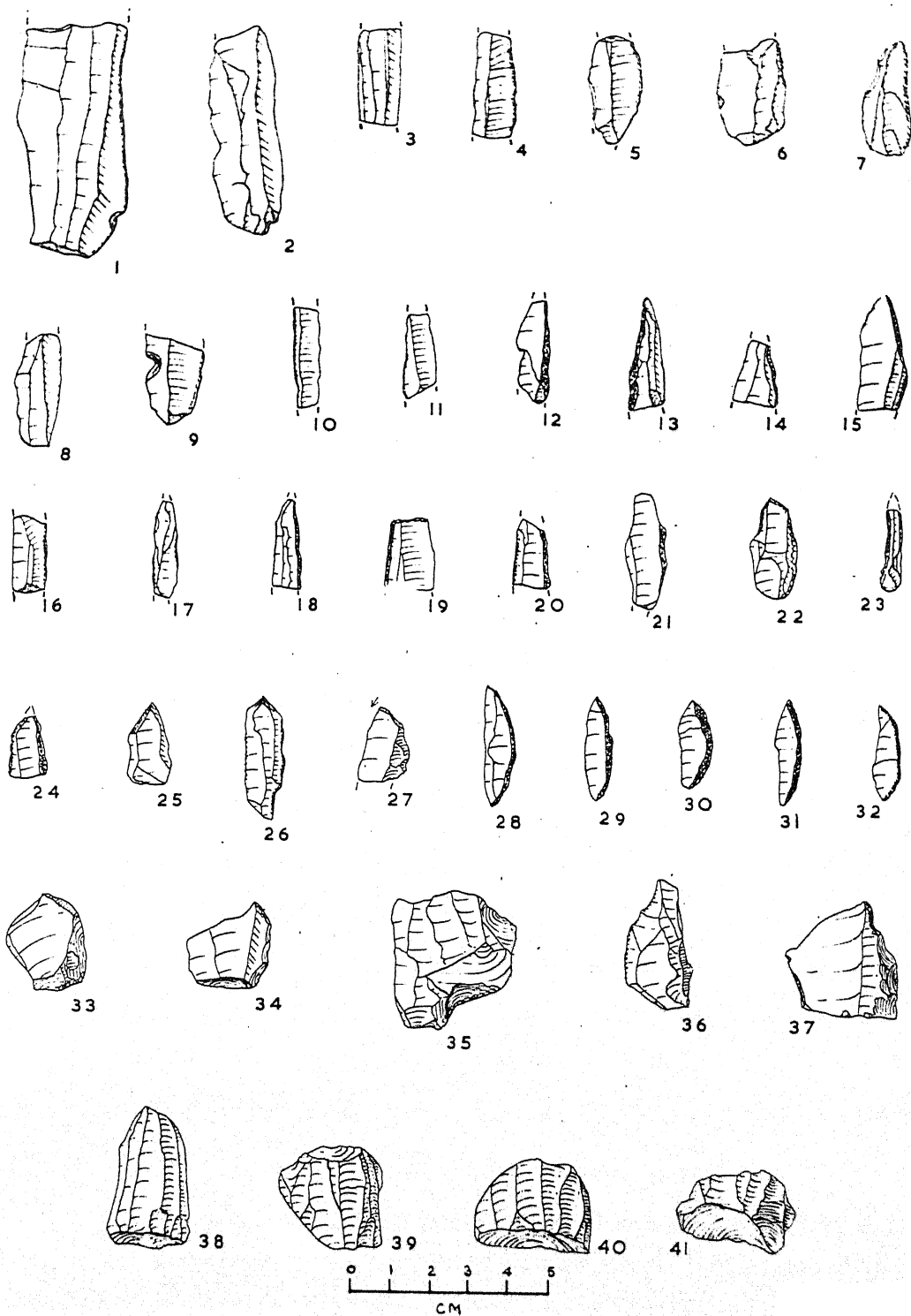
रेखाचित्र 6: मध्य गंगा घाटी के अनुपुरापाषाणिक उपकरण

41'' पूर्व) और मरूडीह (अक्षांश 25° 31' 58'' उ0, देशान्तर 81° 49' 3'' पूर्व), प्रतापगढ़ के हड़ही भिटुली (अक्षांश 25° 50' 38'' उ0, देशान्तर 81° 48' 25'' पूर्व), कन्धई मधुपुर (अक्षांश 25° 59' 50'' उ0, देशान्तर 82° 4' 0'' पूर्व), आदि स्थलों का उल्लेख किया जा सकता है ।

ज्यामितिक उपकरण वाले लगभग 21 स्थल प्रकाश में आये हैं । उनमें उल्लेखनीय स्थल है इलाहाबाद का बिछिया (अक्षांश 25° 34' 13'' उ0, देशान्तर 81° 43' 25'' पूर्व), प्रतापगढ़ का भेवनी (अक्षांश 25° 59' 50'' उ0, देशान्तर 82° 9' 25'' पूर्व), धर्मनपुर (अक्षांश 26° 1' 0'' उ0, देशान्तर 82° 8' 25'' पूर्व), उतरास (अक्षांश 25° 58' 30'' उ0, देशान्तर 82° 8' 30'' पूर्व), आदि। ज्यामितीय लघु पाषाण उपकरणों वाले तीन स्थलों का उत्खनन भी किया गया है । ये उत्खनित स्थल हैं– प्रतापगढ़ जनपद के सदर तहसील में स्थित सराय नाहर राय तथा पट्टी तहसील में स्थित महदहा और दमदमा (रेखाचित्र 7)।

सरायनाहर राय

प्रतापगढ़ जनपद मुख्यालय से 15 किलोमीटर दक्षिण–पश्चिम एक धनुषाकार झील के किनारे सराय नाहर राय (अक्षांश 25° 48' 30'' उ0, देशान्तर 81° 50'' पूर्व) स्थित है । यह झील अब सूख चुकी है । इस पुरास्थल की खोज 1969 ई0 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग ने किया था । सन् 1970 में उत्तर प्रदेश के पुरातत्व विभाग ने भारतीय नृतत्व सर्वेक्षण विभाग के पी0 सी0 दत्ता के सहयोग से एक मानव कंकाल का उत्खनन कराया । उसके बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग ने उत्तर प्रदेश शासन के पुरातत्व विभाग के सहयोग से सन् 1971–72 और 1972–73 में अपेक्षाकृत विस्तृत पैमाने पर स्वर्गीय प्रो0 जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन में उत्खनन (शर्मा 1973: 134–146) कार्य कराया, जिसका संचालन प्रो0 आर0 के0 वर्मा, प्रो0 वी0 डी0 मिश्र और प्रो0 डी0 मण्डल ने किया ।
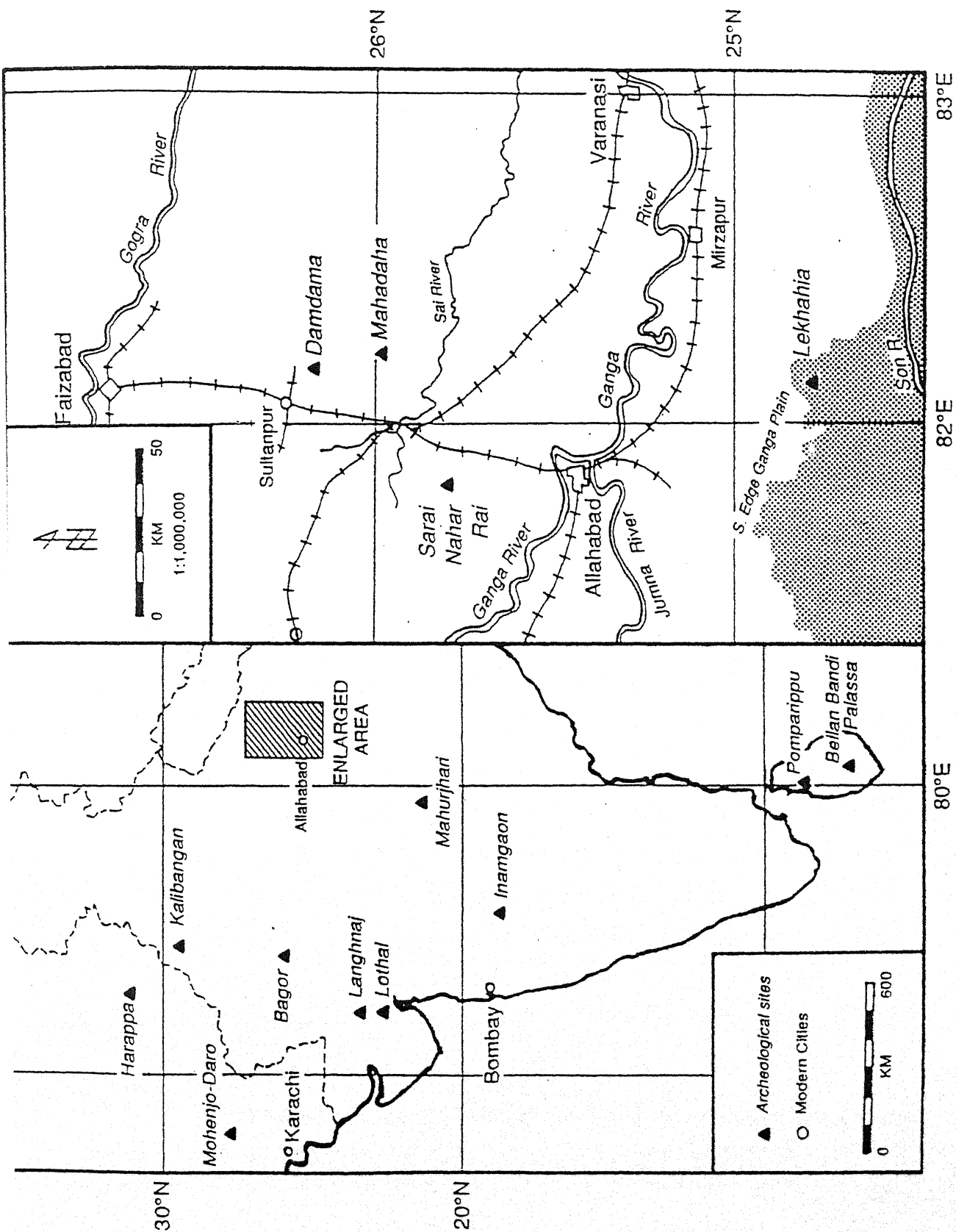
रेखाचित्र 7: मध्यपाषाण काल के उत्खनित पुरास्थल

इस पुरास्थल पर लगभग 1800 वर्ग मीटर के क्षेत्र में लघु पाषाण उपकरण और जानवरों की हड्डियाँ बिखरी हुई मिलीं (रेखाचित्र 8)। पानी के बहाव के कारण ऊपरी सतह कट जाने से मानव कंकाल भी झांकते हुए मिले । यहाँ से कुल 11 मानव समाधियों (तालिका 1) तथा 8 गर्त चूल्हों का उत्खनन इलाहाबाद विश्वविद्यालय की ओर से किया गया । इस तरह कुल उत्खनित 12 समाधियों से 15 मानव कंकाल प्रकाश में आये (केनेडी और अन्य 1986: 1–55)। एक समाधि में चार कंकाल एक साथ दफनाये गये थे । इन कंकालों का प्रथम अध्ययन पी0 सी0 दत्ता ने किया है, (दत्ता 1973, 1984; दत्ता और पाल, 1972; दत्ता और अन्य 1971, 1972 । इसके बाद इनका विस्तृत भौतिक नृतत्वशास्त्रीय विश्लेषण केनेडी ने किया है (केनेडी 1996, 2000; केनेडी और अन्य 1986, 1986a; केनेडी और एलगार्ट 1998)।

इस पुरास्थल की समाधियाँ (कब्रें) आवास क्षेत्र के अन्दर स्थित थीं । कब्रें छिछली तथा अण्डाकार हैं । शव को समाधि में रखने के पहले कब्र में 3–4 सेमी मोटी भुरभुरी मिट्टी बिछायी जाती थी । तत्पश्चात् मुर्दों की पश्चिम–पूर्व दिशा में (सिर पश्चिम तथा पैर पूर्व दिशा में करके) चित लिटाकर विर्स्तीण रूप से दफनाया जाता था । उत्खनित 12 समाधियों में से 11 में एक–एक मानव कंकाल दफनाये हुए मिले तथा एक समाधि में चार मानव कंकाल एक साथ दफनाये हुए मिले हैं (छायाचित्र 1) एक हाथ शरीर के समानान्तर और दूसरा हाथ पेट पर रखकर दफनाने की परम्परा थी । मृत्योपरान्त किसी दूसरे जीवन में भी लोग आस्था रखते थे । इसीलिए कब्रों में लघु पाषाण उपकरण, जानवरों की हड्डियाँ तथा घोंघे आदि मृतकों को भेंट के रूप में रखे हुए प्राप्त हुए हैं । कब्रों को ढकते समय चूल्हों की राख भी प्रयुक्त होती थी । जिस कब्र में चार शव एक ही साथ दफनाये हुए मिले हैं, उसमें पहले एक पुरूष और नारी के कंकाल रखे हुए हैं तथा उसके ऊपर पुनः एक पुरूष और नारी के कंकाल रखे हुए मिले हैं । उल्लेखनीय है कि मध्य पाषाण काल की इस कब्र में नारियाँ पुरूषों के बायें रखी गयी हैं ।
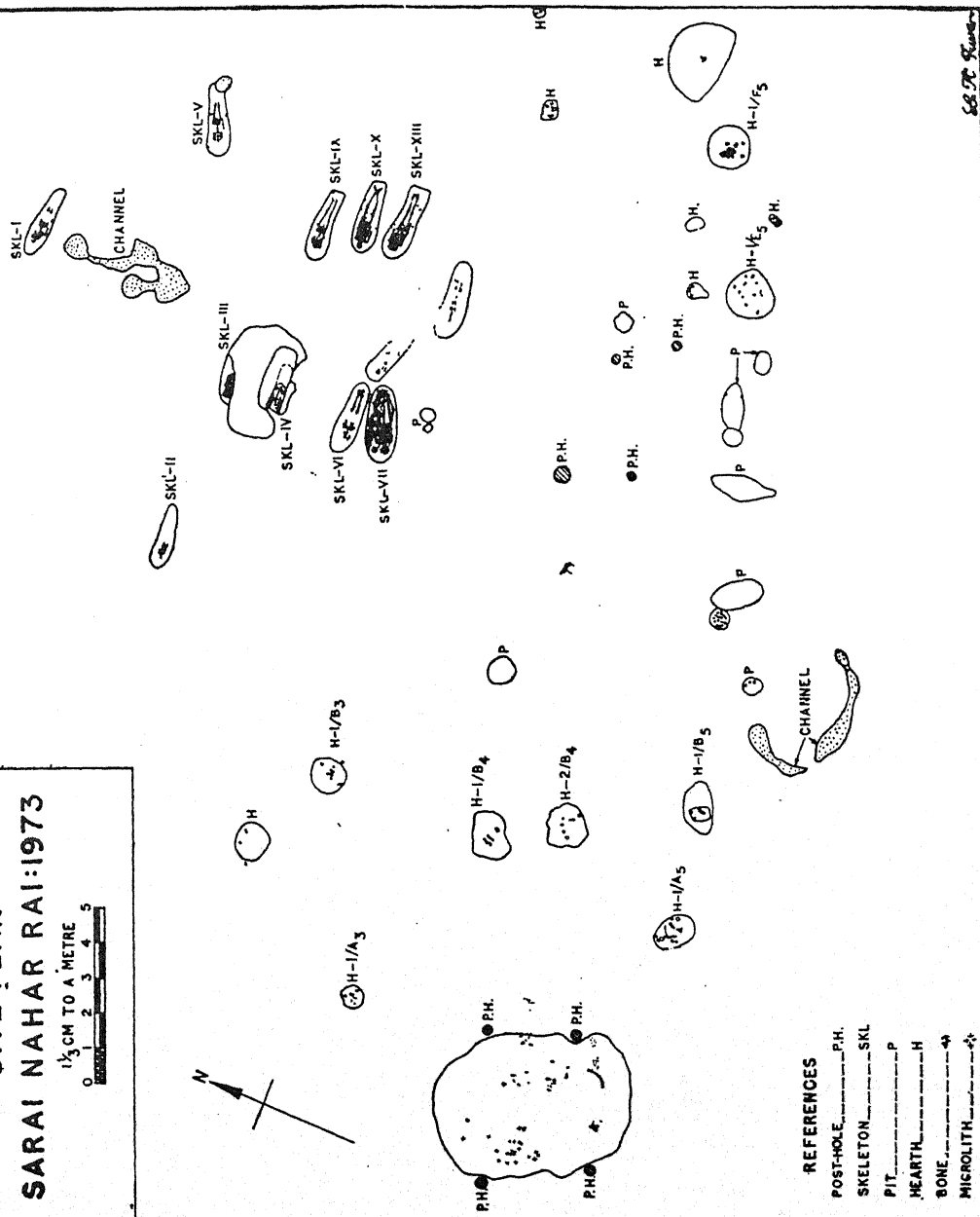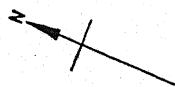
रेखाचित्र 8: सरायनाहर रायः का स्थल मानचित्र
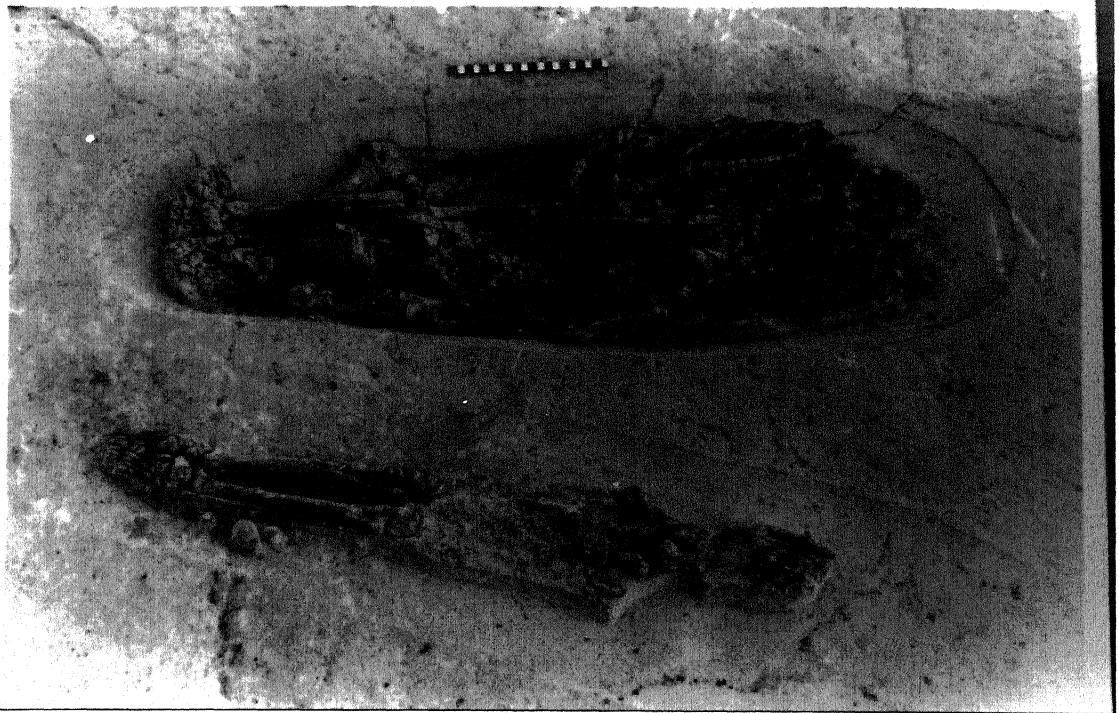
छायाचित्र : 1 सराय नाहर रायः चार कंकालों से युक्त शवाधान
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)

छायाचित्र : 2 सराय नाहर रायः गर्त चूल्हा
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)

तालिका 1: सराय नाहर राय के मध्य पाषाणिक मानव अवशेष

वर्ष और शवाधान सं0	लिंग	आयु	दिक्–स्थापन	सन्दर्भ
1972-I	पुरूष	युवा 16-18 वर्ष	पश्चिम–पूर्व	केनेडी और अन्य 1986: 12
1973-II	पुरूष	युवा 20-24 वर्ष	पश्चिम–पूर्व	केनेडी और अन्य 1986:12-14 लोवेल 1992: 142
1972-III	पुरूष	युवा 17-18 वर्ष	पश्चिम–पूर्व	केनेडी और अन्य 1986: 14-16
1973-III	पुरूष	युवा 17-20 वर्ष	पश्चिम–पूर्व	केनेडी और अन्य 1986: 23-25
1973-IV	पुरूष	युवा 22-24 वर्ष	पश्चिम–पूर्व	केनेडी और अन्य 1986: 16-18
1970-IV	पुरूष	युवा 24-28 वर्ष	पश्चिम–पूर्व	केनेडी और अन्य 1986: 28-3
1972-V	स्त्री	युवा	पश्चिम–पूर्व	केनेडी और अन्य 1986: 25-26
1972-IX	पुरूष (संदिग्ध)	युवा 28-30 वर्ष	पश्चिम–पूर्व	केनेडी और अन्य 1986: 18-20
1972-X	पुरूष	युवा 22-28 वर्ष	पश्चिम–पूर्व	केनेडी और अन्य 1986: 20-22
1972-IIII	पुरूष	युवा 14-18 वर्ष	पश्चिम–पूर्व	केनेडी और अन्य 1986: 26-28

इस पुरास्थल से प्राप्त 15 मानव कंकालों में से 11 मानव कंकालों के लिंग की पहचान की जा चुकी है जिसमें 7 पुरूष और 4 स्त्रियों के कंकाल हैं । 4 कंकालों के विषय में कोई जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी है । हड्डियों के अस्थिकरण, कपाल की संधि रेखाओं के विलयन तथा स्थायी दाँतों के आधार पर इनकी औसत आयु 17 से 31 वर्ष के मध्य आँकी गयी है । स्त्रियों की मृत्यु 15 से 35 वर्ष की आयु में हुई । सराय नाहर राय के स्त्री–पुरूष दोनों ही अपेक्षाकृत लम्बे कद के थे (शर्मा 1978) । पुरूषों की औसत लम्बाई 173.93 सेमी से 192.08 सेमी तथा स्त्रियों की लम्बाई का औसत 174.89 सेमी से 189.68 सेमी था।

सराय नाहर राय में कुल 8 गर्त चूल्हों का उत्खनन किया गया है (पाण्डेय 1983: 298–300)। ये गोलाकार (छायाचित्र 2) अथवा अण्डाकार तथा कुछ

अनियमित आकार के हैं । गर्त चूल्हों का मुँह चौड़ा तथा पेंदी संकरी है जिसकी ऊपरी माप 1.49 मीटर से 72 सेमी है तथा पेंदी 1.02 मीटर से 45 सेमी चौड़ी है । इनकी गहराई 25 सेमी से लेकर 10 सेमी के बीच है । गर्त चूल्हों से गाय, भैंस, विभिन्न प्रकार के हिरण आदि की जली अधजली हड्डियाँ मिली हैं। इनके अतिरिक्त कछुआ की खोपड़ी के टुकड़े तथा हाथी की एक पसली भी प्राप्त हुई है । सरायनाहर से भेड़–बकरी की हड्डियों की पहचान प्रो0 आलूर ने की थी । लेकिन डा0 थामस और डा0 पी0पी0 जोगलेकर के अनुसार ये हड्डियाँ हिरणों की हैं । इन्हें किसी पालतू पशु के अवशेष नहीं मिले हैं । गर्त चूल्हों का उपयोग संभवतः पशुओं का माँस भूनने के लिए होता था । इन चूल्हों में केवल राख मिली है, कोयले के टुकड़े नहीं मिले हैं । इसके आधार पर यह अनुमान किया गया है कि संभवतः घास–फूस आदि का उपयोग ही ईंधन के रूप में किया गया था । आवास क्षेत्र से 5 X 4 मीटर आकार का एक फर्श मिला है जिसके चारों कोनों पर एक–एक स्तम्भ गर्त मिले हैं (छायाचित्र 3) । प्रो0 जी0 आर0 शर्मा ने इसको सामुदायिक झोपड़ी की संज्ञा दी है, क्योंकि इसके फर्श से लघु पाषाण उपकरण, पशुओं की हड्डियाँ तथा कई छोटे–छोटे चूल्हे भी मिले हैं । यहाँ से एक ही चूल्हे को दो बार खोदकर उपयोग में लाने का प्रमाण भी मिलता है (छायाचित्र 4)।

इस पुरास्थल से लघु पाषाण उपकरण निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं में प्राप्त हुए हैं । उपकरण निर्माण के लिए चैल्सिडनी, अगेट, जैस्पर और कार्नेलियन पत्थरों का प्रयोग किया गया है । यहाँ से जो उपकरण प्राप्त हुए थे उनमें कई तरह के ब्लेड, समानान्तर बाहु और भूथड़े ब्लेड़, फलक, अर्द्धचन्द्र, विषम बाहु और समद्विबाहु त्रिभुज, खुरचनी, नोंक तथा तक्षणी आदि का उल्लेख किया जा सकता है (रेखाचित्र सं0 9)। जानवरों की हड्डियों पर बने हुए उपकरण यहाँ से अधिक नहीं मिले हैं । लेकिन कुछ पशुओं के सींगों से जमीन को खोदने का काम लिया जाता था । इसलिए उनकी नोंक अत्यन्त चिकनी हो गयी है। एक 13.2 सेमी लम्बे तथा 3 सेमी चौड़े हड्डी के बने हुए ब्लेड का भी उल्लेख किया जा सकता है, जिस पर फलकीकरण से तेज धार बनायी गयी है ।

रेखाचित्र 9: सराय नाहर राय: लघुपाषाण उपकरण
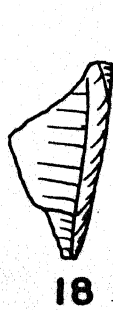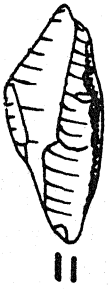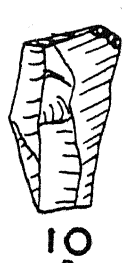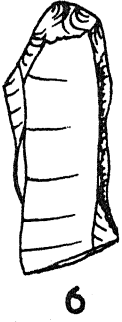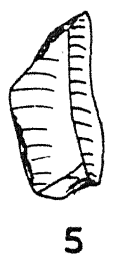
छायाचित्र : 3 सराय नाहर रायः चार स्तम्भगर्तो से युक्त झोपड़ी का फर्श (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)
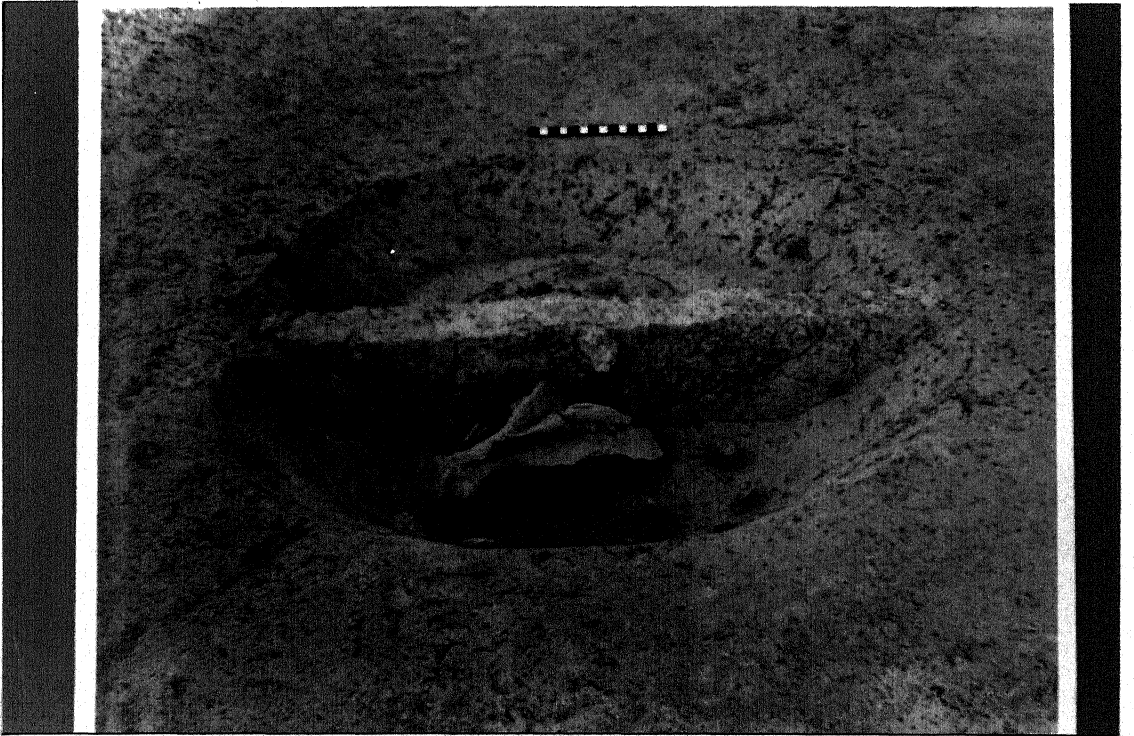
छायाचित्र : 4 सराय नाहर रायः दो बार प्रयोग के प्रमाण से युक्त गर्त चूल्हा (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)

यह पुरास्थल ज्यामितीय उपकरणों के आधार पर पुरातात्विक दृष्टि से मध्यपाषाण काल के परवर्ती चरण से सम्बन्धित है । यहाँ से दो रेडियो कार्बन तिथियाँ प्राप्त हुई हैं । प्रथम तिथि टी0 एफ0 1104, 10345±110 (8395±110 ई0 पू0) है, यह बिना जली हुई मानव अस्थि पर आधारित है । दूसरी तिथि टी0 एफ0 1356 एवं 1359, 2940±125 (990±125 ई0 पू0) है, जो जली हुई हड्डियों के नमूनों से निकाली गयी है ।

महदहा

महदहा (अक्षांश 25^{0}58′2″ उ0, देशान्तर 82^{0}11′ 30″ पू0) मध्य गंगा घाटी का दूसरा मध्य पाषाणिक स्थल है, जिसका उत्खनन किया गया है (*इण्डियन आर्क्यालाजीः ए रिव्यू 1977–78* एवं *इण्डियन आर्क्यालाजीः ए रिव्यू 1978–79*)। यह स्थल प्रतापगढ़ जिले की पट्टी तहसील में तहसील मुख्यालय से लगभग 5 किमी उत्तर दिशा में वर्तमान महदहा गाँव के पूर्व स्थित है ।

1953 में शारदा सहायक नहर परियोजना के निर्माण के दौरान इस पुरास्थल का काफी भाग नष्ट हो गया था । सन् 1978 में नहर को चौड़ा करने के दौरान इस पुरास्थल की जानकारी इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग को अपने भूतपूर्व छात्र तथा पट्टी के तत्कालीन परगना अधिकारी श्री लाल बिहारी पाण्डेय के सौजन्य से प्राप्त हुई थी (पाण्डेय 1985)। उसी वर्ष प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रो0 जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन में इस स्थल पर उत्खनन कार्य प्रारम्भ किया गया जिसका संचालन प्रो0 आर0 के0 वर्मा, प्रो0 वी0 डी0 मिश्र, प्रो0 डी0 मण्डल एवं डॉ0 जे0 एन0 पाल ने किया ।

यह मध्य पाषाणिक स्थल 8,000 वर्गमीटर के क्षेत्र में एक धनुषाकार झील के पश्चिमी तट पर स्थित है (शर्मा 1980)। इस स्थल से होकर गुजरने वाली नहर के पश्चिम आवास तथा कब्रगाह के प्रमाण मिले हैं और पूर्व में मध्य पाषाण कालीन जानवरों की बहुत सी कटी हुई हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं । संभवतः यही वह क्षेत्र था

जहाँ पर मध्य पाषाणिक मानव जानवरों को काटता था और हड्डियों के आभूषण तथा उपकरण बनाता था (रेखाचित्र 10) ।

महदहा के आवास तथा शवाधान क्षेत्र में मध्य पाषाणिक मानव के सांस्कृतिक अवशेष 60 सेमी मोटे जमाव में दबे पड़े हैं (पाल 1994: 91–101)। इस जमाव को स्तरीकरण के सिद्धान्त पर चार स्तरों में विभाजित किया गया है (छायाचित्र 5) । खुले हुए क्षेत्र में पाषाणिक संस्कृति का इतना मोटा जमाव अत्यन्त उल्लेखनीय है । इससे इस स्थल पर मध्य पाषणिक मानव के एक लम्बे समय तक रहने का बोध होता है ।

यहाँ के कब्रगाह से कुल 30 शवाधानों का उत्खनन किया गया है, जो स्तरीकरण तथा एक कब्र के दूसरी कब्र के ऊपर होने के आधार पर चार विभिन्न चरणों से सम्बन्धित किये गये हैं (छायाचित्र 6)। सरायनाहर राय की तरह महदहा की समाधियाँ भी छिछली और अण्डाकार हैं, जिनमें मृतकों को सांगोपांग लिटाकर रखा गया है । यद्यपि महदहा में भी अधिकतर मृतकों को पश्चिम–पूर्व दिशा में लिटाकर दफनाया गया है (पाल 1985: 28–37), लेकिन इस स्थल पर मध्य पाषाणिक मानव अपने मृतकों को कभी–कभी सिर पूर्व तथा पैर पश्चिम दिशा में करके भी दफनाता था । संभव है यहाँ दो प्रजातियों के लोग साथ–साथ रहते रहे हों । समाधियों में मृतकों के दोनों हाथ शरीर के समानान्तर रखे हुए मिले हैं जबकि सरायनाहरराय में मृतकों का एक हाथ शरीर के समानान्तर और दूसरा पेट पर रखा हुआ है । महदहा में कुछ मृतकों का एक हाथ कटि के नीचे तथा दूसरा जांघों के बीच में रखा हुआ है (रेखाचित्र 11)। महदहा से दो बच्चों के शवाधान भी प्राप्त हुए हैं जिसमें एक 6 वर्ष का बालक (छायाचित्र 7) और दूसरा 4 वर्ष की बालिका का है । यहाँ से दो समाधियों में युग्म शवाधान के प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं। एक समाधि में नारी बायें और पुरूष दायें रखकर दफनायें गये हैं तथा दूसरी में पुरूष नीचे और नारी ठीक ऊपर है । पुरूष अपने कान में कुण्डल धारण किये हुए हैं और गले में हार (छायाचित्र 8)। एक दूसरी समाधि में पुरूष कपाल के साथ हार उपलब्ध हुआ है। संभवतः नारी को अपने को आभूषण से सजाने की आवश्यकता नहीं थी, पुरूष ही आभूषण प्रेमी थे । प्रागैतिहासिक भारत में आभूषणों
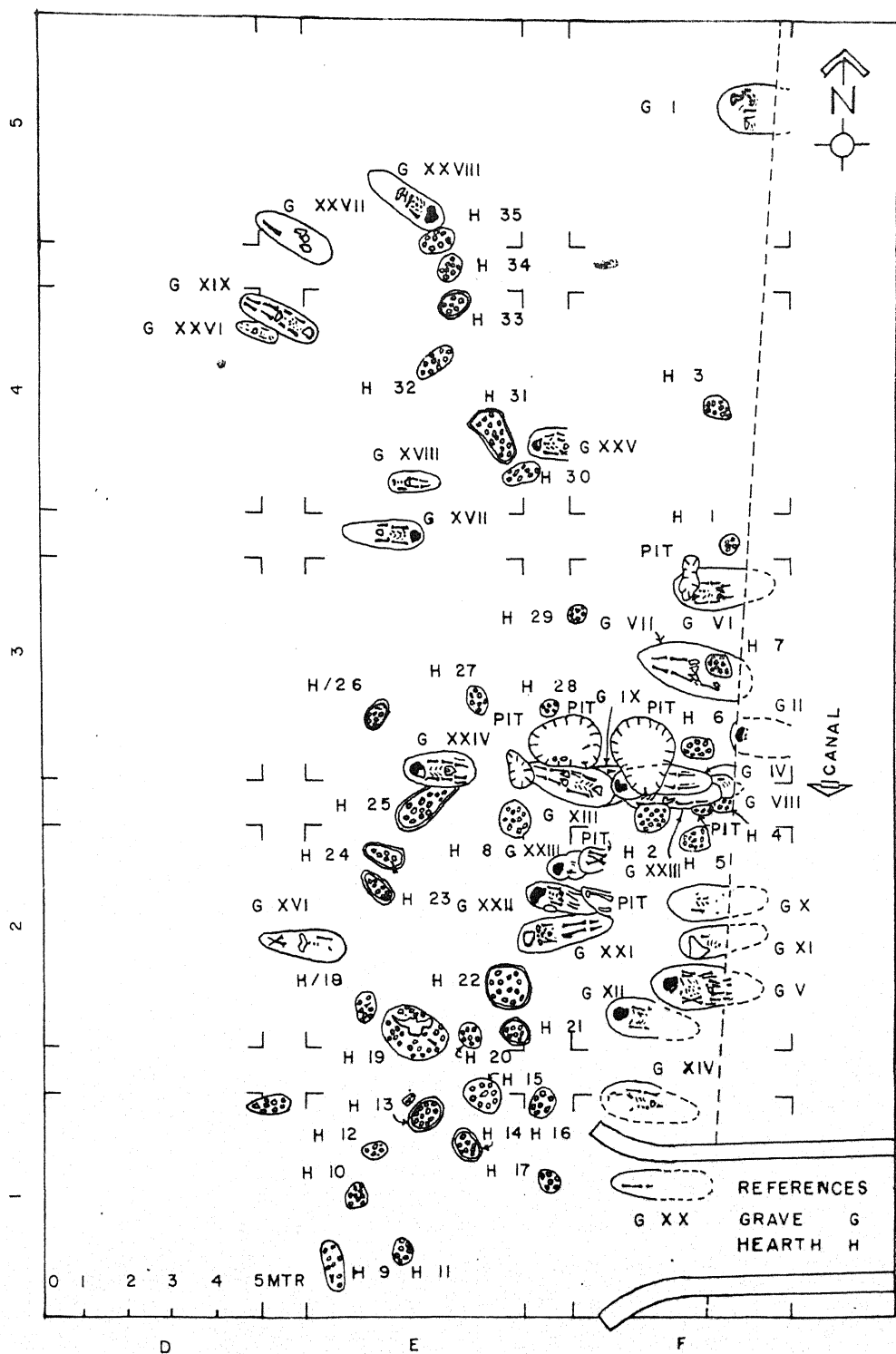
रेखाचित्र 10: महदहा: उत्खनित स्थल का मानचित्र
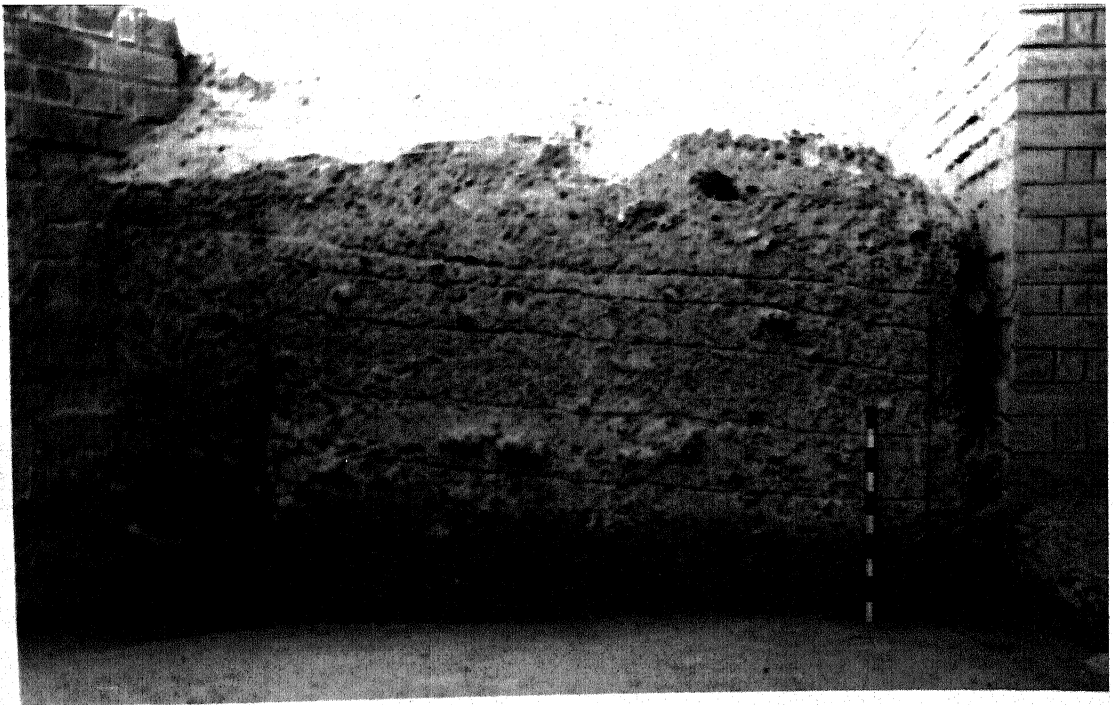
छायाचित्र 5: महदहा: अनुभाग में आवासीय जमाव के स्तर
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)
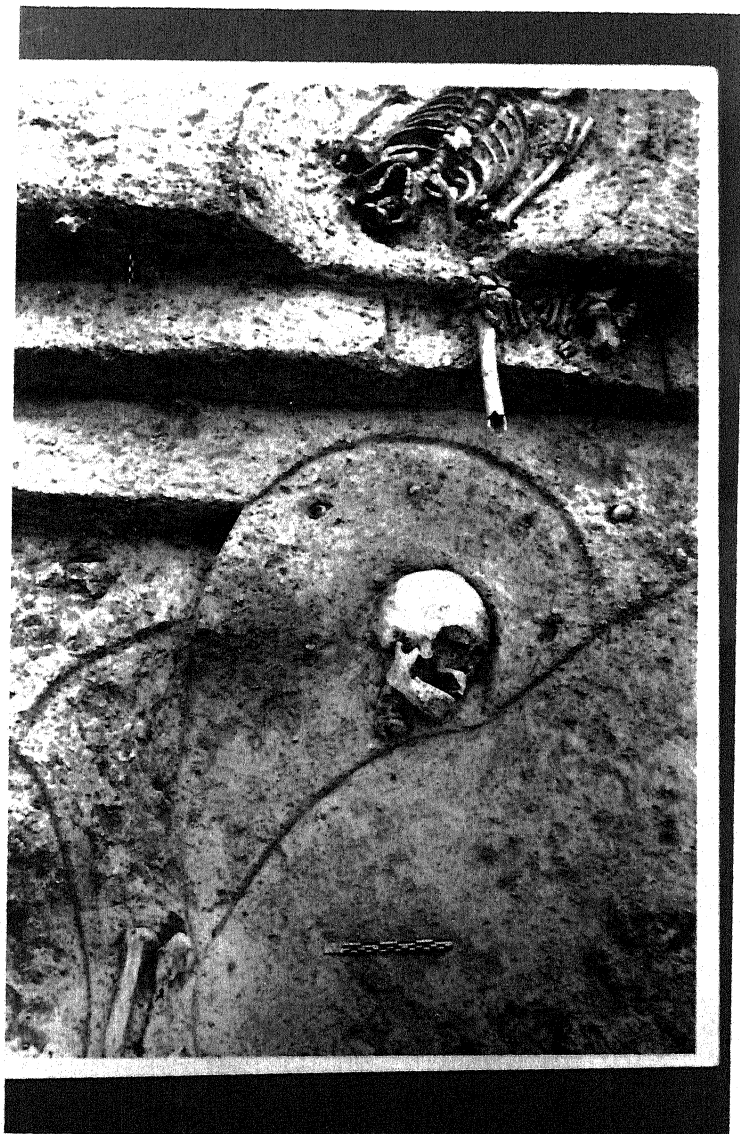
छायाचित्र 6: महदहा: स्तरीकरण और अंश छादन के अनुसार चार चरणों के शवाधान और गर्त्त चूल्हे (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)
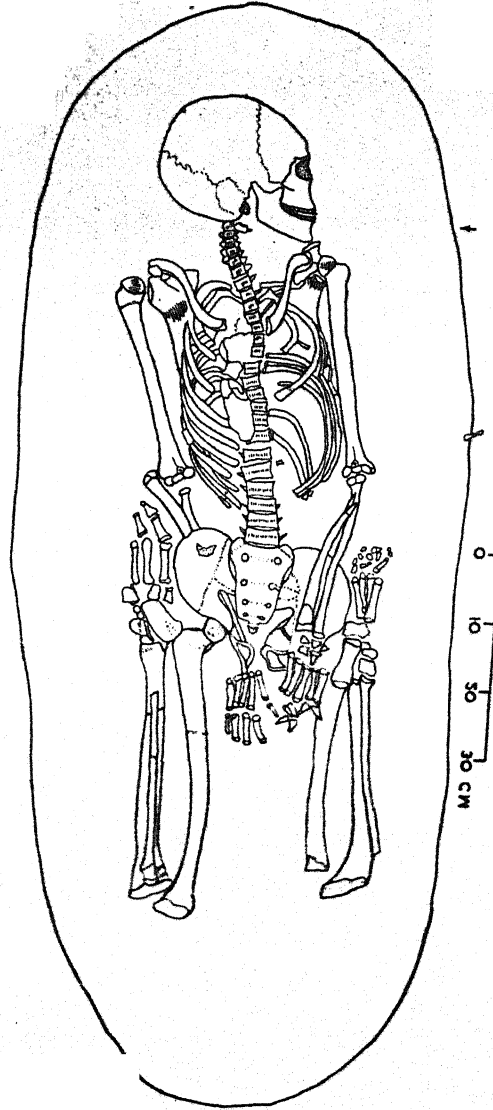
रेखाचित्र 11: महदहा: मध्यपाषाणकालीन नरकंकाल
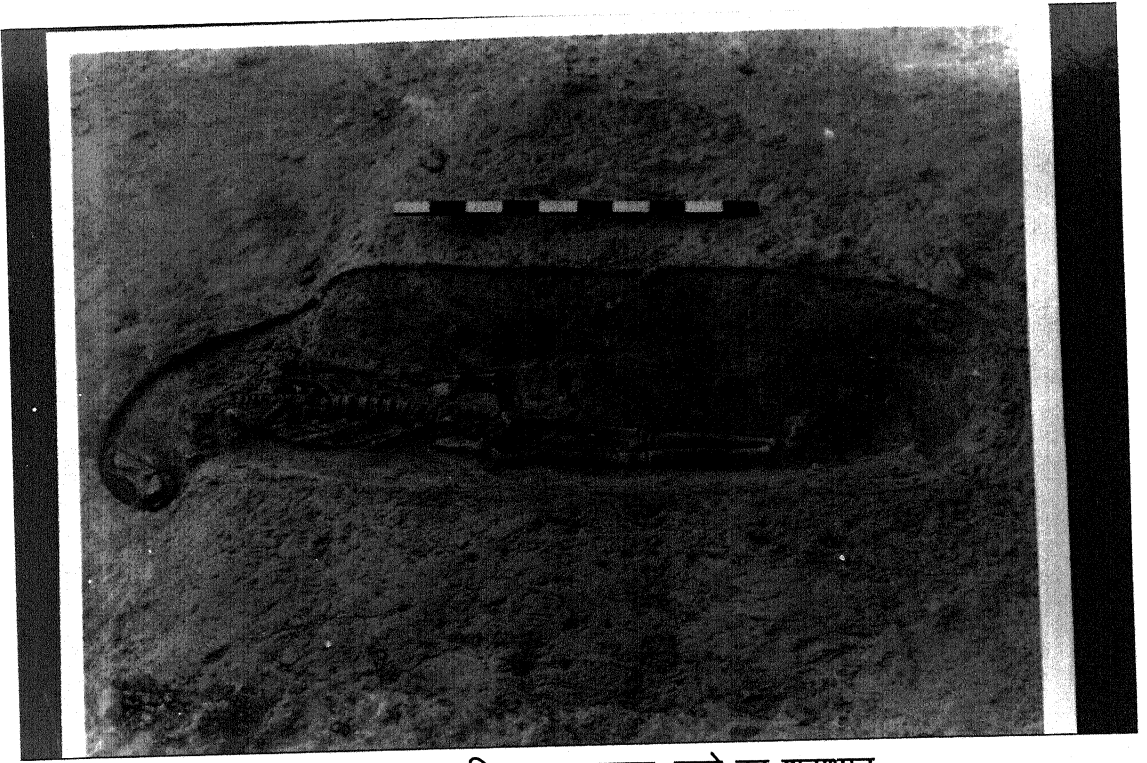
छायाचित्र : 7 महदहाः बच्चे का शवाधान
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)

छायाचित्र : 8 महदहाः युग्म शवाधान, कुण्डल युक्त पुरुष कंकाल
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)

छायाचित्र : 9 महदहाः मृगश्रृंग और हड्डी के बने आभूषण
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)

छायाचित्र : 10 महदहाः मृगश्रृंग द्वारा आभूषण निर्माण प्रक्रिया का प्रमाण
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)
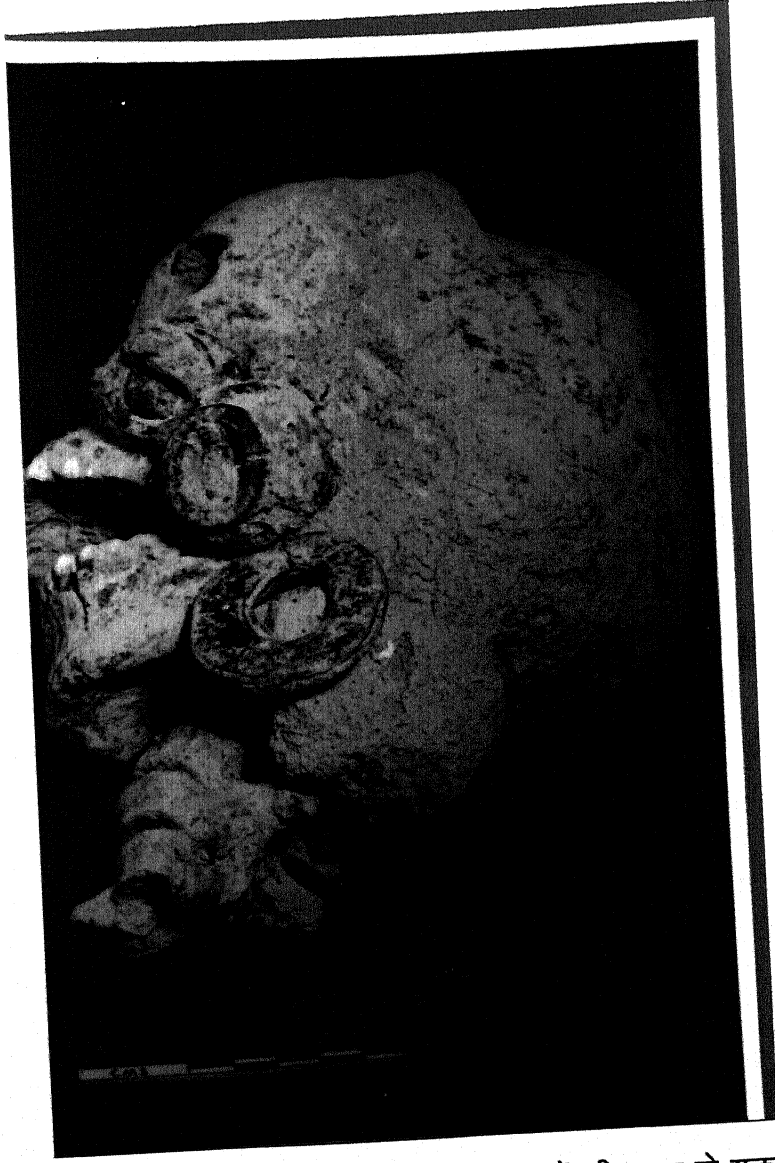
छायाचित्र 11: महदहा: मृगश्रृंग से निर्मित मुद्रिकाओं की माला से युक्त पुरुष कंकाल (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)

तृतीय उपकालः इस उपकाल से 10 समाधियाँ मिली है जिनमें से प्रत्येक में एक–एक मानव कंकाल दफनाये हुए मिले हैं । इनमें से 6 कंकालों के लिंग की पहचान हो सकी है, जिनमें 4 स्त्री और 2 पुरूष के हैं । 4 कंकालों के लिंग की पहचान सम्भव नहीं हो सकी । सात कंकालों का दिक स्थापन पश्चिम–पूर्व दिशा में था, दो में भिन्नता थी, एक कंकाल पूर्व–पश्चिम तथा दूसरा तिरछा पूर्व–दक्षिण से पश्चिम–उत्तर की तरफ सिर करके दफनाया गया था । दो समाधियों से अंत्येष्टि सामग्री मिली हैं । एक महिला कंकाल के साथ हिरण की सींग की बनी हुई दो गुरियाँ तथा मृगश्रृंग का एक बाण मिला है तथा दूसरी महिला के साथ कछुआ की खोपड़ी का एक टुकड़ा रखा हुआ मिला है ।

चतुर्थ उपकालः इस उपकाल से सबसे अधिक 13 समाधियाँ मिली हैं जिनमें से प्रत्येक में एक–एक मानव कंकाल दफनाया हुआ मिला है (तालिका 2) । एक मुड़े हुए कंकाल को छोड़कर शेष सभी 12 कंकाल विस्र्तीण शवाधान है। 13 कंकालों में से 11 के लिंग की पहचान की जा सकी है जिनमें से 7 महिला तथा 4 पुरूष के कंकाल हैं। दो कंकालों के लिंग की पहचान नहीं की जा सकी। 13 में से 10 कंकाल वयस्क लोगों के थे । एक वृद्ध व्यक्ति का तथा 2 कंकाल बच्चों के थे (लुकास और पाल 1992: 45–55)। 13 कंकालों में से 6 कंकालों के सिर पश्चिम की ओर तथा 5 का सिर पूर्व दिशा में करके दफनाया गया था । दो कंकालों का दिक स्थापन किसी सीधी दिशा में नही या बल्कि तिरछे था। दो महिलाओं तथा एक पुरूष के साथ अन्त्येष्टि सामग्री रखी हुई मिली है । इन कंकालों का विस्तृत नृतत्वशास्त्रीय अध्ययन कोरनेल विश्वविद्यालय के के0ए0आर0 केनेडी ने किया है (केनेडी और अन्य 1992)।

महदहा के उत्खनन से 35 गर्त चूल्हे प्रकाश में आये हैं । कतिपय गर्त चूल्हों के भीतरी भाग को गीली मिट्टी से लीपा जाता था । सरायनाहर राय की भाँति यहाँ भी गोल अथवा अण्डाकार चूल्हे मिले हैं (छायाचित्र 12)। संभवतः

तालिका 2: महदहा से प्राप्त मध्य पाषाणिक मानव के अवशेष

उप काल	समाधि सं0	समाधि	दिक्स्थापन	लिंग	आयु	सन्दर्भ
I	I / XIV/ 1978	युग्म शवाधान	पश्चिम–पूर्व	स्त्री पुरुष	युवा	केनेडी और अन्य 1992: 115, पाल 1992b : 34, 36-37, शर्मा और अन्य 1980: 87,90
	II / XIII/ 1978	एकल	पश्चिम–पूर्व	पुरुष	युवा 28-32	केनेडी और अन्य 1992: 114, पाल, 1992b : 34, 37, 39, शर्मा और अन्य 1980: 87,90
	III / XIII/ 1978	एकल	पश्चिम–पूर्व	पुरुष	युवा	केनेडी और अन्य 1992: 113, पाल, 1992b : 34, 37, 39, शर्मा और अन्य 1980: 87,91
II	IV / XI/ 1978	एकल	पश्चिम–पूर्व	पुरुष	युवा 22-26	केनेडी और अन्य 1992: 112, केनेडी और लोवेल 1992: 144, पाल 1992b : 34, 37, 39 शर्मा और अन्य 1980: 87,91
	V / X/ 1978	युग्म शवाधान	पश्चिम–पूर्व	पुरुष	युवा 18-20 वर्ष	केनेडी और अन्य 1992: 39, 108, 110-111, केनेडी और लोवेल 1992b: 34, 37, 39 शर्मा और अन्य 1980: 87,92
III	V / IX/ 1978	एकल	पश्चिम–पूर्व	पुरुष	युवा 19-22	केनेडी और अन्य 1992: 107, पाल 1992b : 34, 37, 43, शर्मा और अन्य 1980: 87,93
	VII / VIII/ 1978	एकल	पश्चिम–पूर्व	पुरुष	युवा	केनेडी और अन्य 1992: 106, केनेडी और लोवेल 1992: 144, पाल 1992b : 34, 43, 46, शर्मा और अन्य 1980: 87, 94
	VIII / VII/ 1978	एकल	पश्चिम–पूर्व		बच्चा	पाल 1992b : 34, 37, 46, शर्मा और अन्य 1980: 87, 94
	IX / VI/1978	एकल	पश्चिम–पूर्व	पुरुष	युवा	केनेडी और अन्य 1992: 105, केनेडी और लोवेल 1992: 144, पाल 1992b : 34, 37, 46, शर्मा और अन्य 1980: 87, 94-95
	XV / V/ 1978	एकल	पश्चिम–पूर्व	पुरुष	युवा	पाल 1992b : 34, 37, 46, शर्मा और अन्य 1980: 87, 94-95
	XI / IV/1978	एकल	पश्चिम–पूर्व	पुरुष	युवा	केनेडी और अन्य 1992: 105, पाल 1992b : 34, 37, 46, शर्मा और अन्य 1980: 87, 95-96
	XII / III/ 1978	एकल	पश्चिम–पूर्व	पुरुष	युवा 24-28	केनेडी और अन्य 1992: 104, केनेडी और लोवेल 1992: 144, पाल 1992b : 34, 37, 46, शर्मा और अन्य 1980: 87, 96
	XV / VIA/ XV 1978	एकल	पश्चिम–पूर्व	–	–	पाल 1992b : 34, 37, 46, शर्मा और अन्य 1980: 87, 98

इन गर्त चूल्हों में माँस पिण्ड को मिट्टी के टुकड़ों से ढककर आग जलायी जाती थी । इसलिए आग में जली हुई हड्डियों के साथ राख और जली मिट्टी के टुकड़े भी प्राप्त होते हैं । महदहा के एक गर्त चूल्हे में भैंस का सींग युक्त पूरा सिर मिला है । माँस को भूनकर खाने के विषय में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करता है । यहाँ से प्राप्त कतिपय गर्तों में लेप की कई पर्तें हैं पर उनमें हड्डी, राख या जली मिट्टी के टुकड़े नहीं मिलते हैं । इनका उपयोग संभवतः संग्रहीत जंगली अनाजों को रखने के लिए किया जाता रहा होगा ।

महदहा से लघु पाषाण उपकरण अपेक्षाकृत कम संख्या में मिले हैं । प्रमुख उपकरणों में ब्लेड़, खुरचनी, बेधक, चान्द्रिक, त्रिभुज, समलम्ब चतुर्भुज उल्लेखनीय है । महदहा से सींग तथा श्रृंग के बने उपकरण और आभूषण सराय नाहर राय की तुलना में अधिक संख्या में मिले हैं । सींग तथा श्रृंग के उपकरणों में बाणाग्र, बेधक, खुरचनी, आरी, रूखानी, चाकू , आदि हैं (छायाचित्र 13) । श्रृंग के आभूषणों में कुण्डल तथा मुद्रिकाएं उल्लेखनीय हैं । महदहा से बलुआ पत्थर पर बने हुए टूटे हुए सिल एवं लोढ़े, गोफन पाषाण तथा हथौड़े आदि भी मिले हैं । सिल–लोढ़ों की प्राप्ति से यह इंगित होता है कि संभवतः जंगली घास के दानों को पीसकर भोज्य सामग्री के रूप में उपयोग किया जाने लगा था । पुरापुष्प परागण के विश्लेषण से हरे घास के मैदान के विषय में संकेत मिला है (पन्त और पन्त 1980)।

महदहा के गर्त चूल्हों तथा गोखुर झील से वन्य पशुओं की हड्डियाँ मिली हैं। यहाँ से उपलब्ध जानवरों की हड्डियों में बैल, जंगली भैंसा, हिरण, बारहसिंघा, सुअर, दरियायी घोड़ा, गैंडा, भेड़–बकरी और घोड़ा विशेष उल्लेखनीय हैं (आलूर 1980: 201–227)।

प्रो0 के0 आर0 आलूर के अनुसार महदहा में चार प्रकार की भेड़ बकरियाँ थीं । अब मनुष्य इन पशुओं से अत्यन्त सन्निकटता स्थापित कर रहा था । असंभव नहीं यदि पशुपालन प्रारम्भ होने के प्रक्रिया के प्राथमिक प्रमाण यहाँ से मिलें । लेकिन प्रो0 आलूर के उपरोक्त मत के विपरीत डॉ0 थामस और डॉ0 पी0 पी0

छायाचित्र : 12 महदहा: अण्डाकार गर्त्त चूल्हा
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)
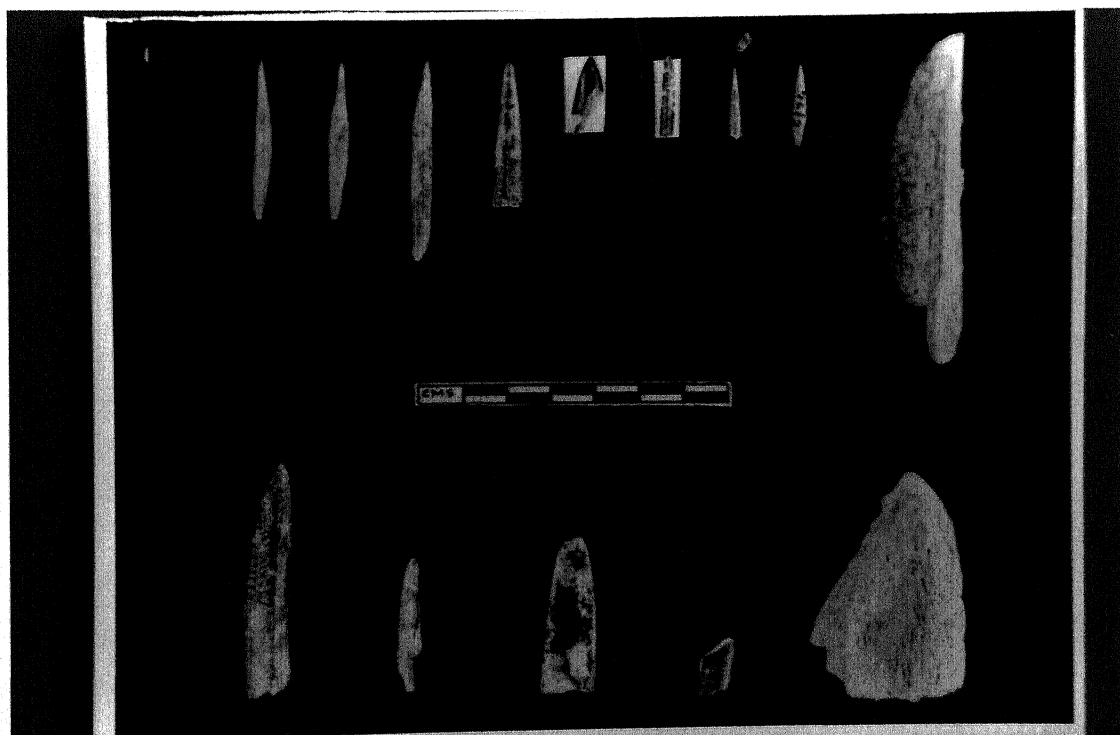
छायाचित्र : 13 महदहा: हड्डियों के बने उपकरण
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)

जोगलेकर के अनुसार जिन हड्डियों को प्रो0 आलूर ने भेड़ बकरी की हड्डी कहा है, वे वास्तव में हिरणों की हड्डियाँ हैं (थामस और अन्य 1995, 1996; जोगलेकर और अन्य 2002)। इन विद्वानों के अनुसार यहाँ से किसी पालतू पशु के अवशेष नही मिले हैं। झील के नवें और आठवें स्तरों से एकत्र किये गये मिट्टी के नमूने पुरापुष्प पराग से युक्त हैं जिनका प्राथमिक विश्लेषण इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विभाग के प्रो0 डी0 डी0 पंत ने किया है । इस विश्लेषण से घास के पुरापुष्प परागों के अस्तित्व का पता चला है ।

महदहा का तिथिक्रम पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर ज्यामितीय चरण में रखा जा सकता है । जली हुई हड्डियों के नमूनों के विश्लेषण के आधार पर बीरबल साहनी इन्स्टीट्यूट आफ पैलियो बाटनी, लखनऊ ने तीन रेडियो कार्बन तिथियाँ निकाली है । ये तिथियाँ असंशोधित तथा वर्तमान पूर्व (Before Present) में है। ये तिथियाँ इस प्रकार हैं: 1. 4010±120, 2. 2880±250 तथा 3. 4840±130 ।

दमदमा

दमदमा (अक्षांश 25^0 58′ 2″ उ0ए देशान्तर 82^0 11′ 30″ पू0) पुरास्थल का मध्य गंगाघाटी के मध्यपाषाण युगीन उत्खनित पुरास्थलों में महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यह अत्यन्त संरक्षित अवस्था का पुरास्थल है और इसका उत्खनन अपेक्षाकृत विस्तार से किया गया है । यह स्थल महदहा से लगभग 5 किमी उत्तर दिशा में जनपद की पट्टी तहसील में बारीकलाँ नामक गाँव के पास स्थित है । सई की सहायक सरिता पीली नदी में मिलने वाले तम्बूरा नाले की दो धाराओं के संगम पर स्थित दमदमा का यह मध्य पाषाणिक स्थल लगभग 8,750 वर्ग मीटर के क्षेत्र में फैला हुआ है (वर्मा और अन्य 1985: 45–65)। इस पुरास्थल की खोज 1978 ई0 में हुई थी । इस स्थल के समीप ही पश्चिम दिशा में ढाक और अन्य वृक्षों के जंगल का अवशेष अभी भी बचा है (छायाचित्र 14), जिससे प्राचीन काल की पारिस्थितिकी का कुछ अनुमान किया जा सकता है । पूर्ण रूप से सुरक्षित होने के कारण पाँच सत्रो सन् 1982–83 से 1986–87 तक दमदमा में उत्खनन किया गया (रेखाचित्र 12)। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं

DAMDAMA

SITE PLAN

LAYER -(3)

N

5 m
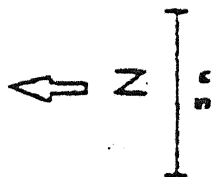
More No Meat Bones

Normal Frequency

More High Meat Bones
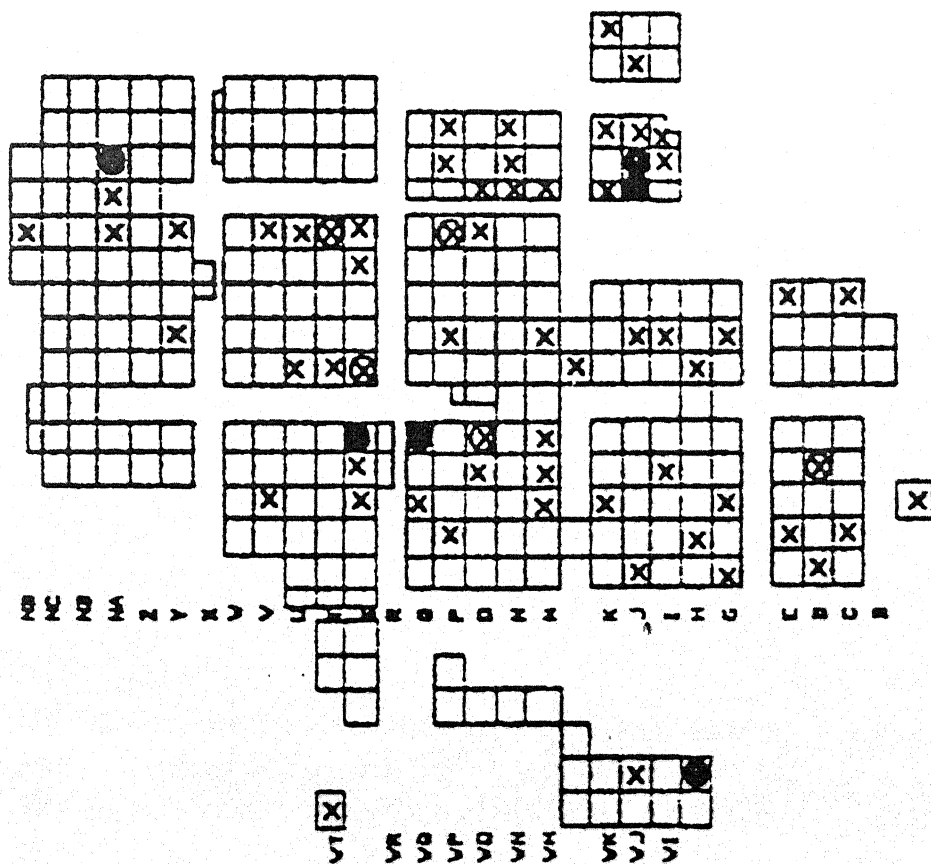
रेखाचित्र 12: दमदमा: स्थल मानचित्र

छायाचित्र : 14 दमदमाः समीवर्ती क्षेत्र में ढाक के जंगल
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)
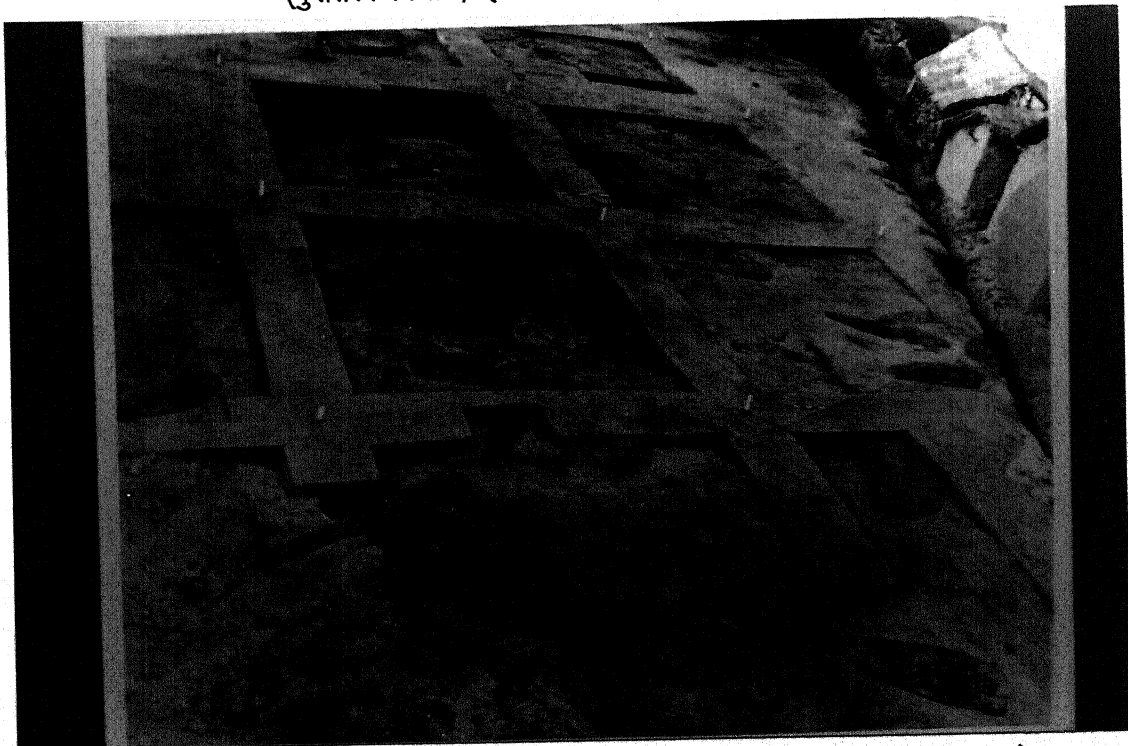
छायाचित्र : 15 दमदमाः उत्खनन में मध्यपाषाणिक धरातल पर फैली पुरासामिग्रयों का विहगंम दृश्य (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)

पुरातत्व विभाग के प्रो0 आर0 के0 वर्मा, प्रो0 वी0 डी0 मिश्र, प्रो0 जे0 एन0 पाण्डेय और प्रो0 जे0 एन0 पाल ने संयुक्त रूप से उत्खनन कार्य का संचालन किया । पाँच वर्ष तक लगातार हुए उत्खनन के फलस्वरूप मध्य गंगा घाटी की मध्य पाषाण काल की संस्कृति पर नया प्रकाश पड़ा है ।

दमदमा में उत्खनन कार्य को सुनियोजित ढंग से सम्पनन्न करने के लिए सम्पूर्ण क्षेत्र को तीन क्षेत्रों– पूर्वी, मध्यवर्ती, तथा पश्चिमी भागों में बाँटा गया है । तीनों क्षेत्रों से मध्य पाषाणिक पुरावशेष सामान्य रूप से मिले हैं किन्तु मानव शवाधान अभी तक पूर्वी क्षेत्र से नहीं मिला है । मानव शवाधान सिर्फ मध्यवर्ती एवं पश्चिमी क्षेत्र से ही प्राप्त हुए हैं (पाल 1988: 115–122) । उत्खनन से उपलब्ध 1. 50 मीटर मोटे सांस्कृतिक जमाव को 10 स्तरों में विभाजित किया गया है । सबसे ऊपरी स्तर मध्य पाषाण काल के बाद का है । शेष सभी 9 स्तर मध्यपाषाण काल से सम्बन्धित हैं । यहाँ पर मध्यपाषाण कालीन सम्पूर्ण जमाव को 9 उपकालों में विभाजित किया गया है । प्रत्येक उपकाल से मध्य पाषाण कालीन मानव के रहन–सहन के उल्लेखनीय साक्ष्य प्राप्त हुए हैं (छायाचित्र 15) । प्रमुख पुरातात्विक प्रमाणों में मिट्टी के कई पर्त वाले लेप से युक्त तथा बिना लेप वाले गर्त चूल्हे (छायाचित्र 16), जली हुई मिट्टी के प्लास्टर युक्त फर्श (छायाचित्र 17, 18), वन्य पशुओं की हड्डियाँ, लघुपाषाण उपकरण, श्रृंग के बने उपकरण एवं आभूषण और मानव शवाधानों आदि का उल्लेख किया जा सकता है। यहाँ से उपलब्ध सभी स्तरों में स्तरीकरण की दृष्टि से अविच्छिन्नता थी। इस स्थल पर सर्वप्रथम बसने के लिए आने वाले मध्य पाषाणिक मानव ने प्राकृतिक पीली गाद मिट्टी (जलोढ़ मिट्टी) के ऊपर आवास बनाया था ।

दमदमा नामक मध्यपाषाणिक पुरास्थल पर अनवरत रूप से पाँच वर्षों तक किये गये उत्खनन के फलस्वरूप पश्चिमी तथा मध्यवर्ती क्षेत्रों से कुल मिलाकर 41 मानव शवाधान मिले हैं जो मध्यपाषाणिक मानव के शवाधान प्रणाली के विषय में उल्लेखनीय जानकारी प्रदान करते हैं। इन कंकालों का अध्ययन ओरेगन विश्वविद्यालय के भौतिक नृतत्व शास्त्रविद् प्रो0 जान0आर0 लुकास कर रहे हैं। पूर्वी क्षेत्र से अभी तक एक भी शवाधान नहीं प्राप्त हो सका है। स्तरीकरण के प्रमाण के

छायाचित्र : 16 दमदमाः लेप से युक्त तथा बिना लेप वाले चूल्हे
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)
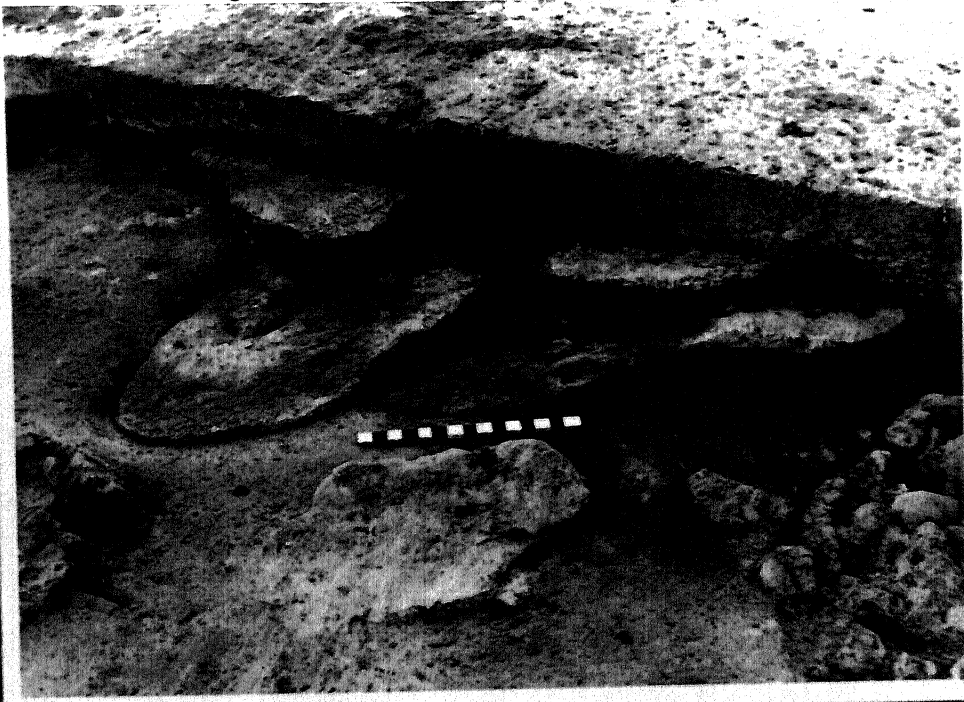
छायाचित्र : 17 दमदमाः जले हुए प्लास्टर युक्त फर्श
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)

आधार पर इन शवाधानों को 9 उपकालों में विभाजित किया गया है, इन शवाधानों का विवरण तालिका 3 में दिया गया है ।

तालिका 3: दमदमा से प्राप्त मध्य पाषाणिक मानव के अवशेष

उपकाल	ग्रेव न0	शवाधान	दिक्स्थापन	लिंग	आयु	वर्ष	सन्दर्भ
I	XII	एकल	पश्चिम–पूर्व	स्त्री	वयस्क	1985	पाल, 1992a: 43, पाल 1992c: 61
II	XXVIII	एकल	पश्चिम–पूर्व	पुरूष	वयस्क प्रौढ़	1987	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 62
III	XVI	युग्म शवाधान	पश्चिम–पूर्व	पुरूष	वयस्क	1985	पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 62
	XVII	एकल	पूर्व–पश्चिम	पुरूष	वयस्क	1985	पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 62
	XL	–	–	–	–	उत्खानन नही किया गया	पाल 1992a : 43, पाल 1992c: 62
IV	XI	एकल	पश्चिम–पूर्व	पुरूष	वयस्क	1984	वर्मा और अन्य 1985: 50, *आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 62
V	XX	युग्म शवाधान	पश्चिम–पूर्व	स्त्री पुरूष	युवा वयस्क वयस्क	1986	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 83, पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 62
VI	XXII	एकल	पश्चिम–पूर्व	पुरूष	युवा वयस्क	1986	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 62
	X	एकल	पश्चिम–पूर्व	स्त्री	वयस्क	1984	पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 62
	XV	एकल	पश्चिम–पूर्व	स्त्री	वयस्क	1985	पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 62
	IX	–	–	–	–	1984 डिस्ट्रर्ब	वर्मा और अन्य 1985: 48, पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 62
VII	XIV	एकल	पश्चिम–पूर्व	–	–	1985	पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 62
	XXVII	एकल	उत्तर–पश्चिम दक्षिण–पूर्व	पुरूष	वयस्क	1987	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 62
VIII	II	एकल	पश्चिम–पूर्व	पुरूष	वयस्क	1983	वर्मा और अन्य 1985: 48, पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 62
	IV	एकल	पश्चिम–पूर्व	–	–	1984	पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 62

फेज	ग्रेव न0	शवाधान	दिक्स्थापन	लिंग	आयु	वर्ष	सन्दर्भ
	V	एकल	पश्चिम–पूर्व	स्त्री	वयस्क	1984	वर्मा और अन्य 1985 : 48, पाल,1992a: 43
	VI	युग्म शवाधान	दक्षिण–उत्तर	स्त्री पुरुष	वयस्क	1984	वर्मा और अन्य 1985: 48, पाल, 1992a: 43
	VII	एकल	पश्चिम–पूर्व	स्त्री	युवा वयस्क	1984	वर्मा और अन्य 1985: 48, पाल, 1992a: 43
	VIII	एकल	पश्चिम–पूर्व	पुरुष	वयस्क	1984	वर्मा और अन्य 1985: 48, पाल, 1992a: 43, पाल 1992c: 61
	XVIII	तीन शवाधान	पश्चिम–पूर्व	पुरूष पुरूष स्त्री	वयस्क वयस्क	1985-86	पाल 1992a : 43, पाल 1992c: 62
	XXX	युग्म शवाधान	पश्चिम–पूर्व	स्त्री पुरूष	वयस्क	1987	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992a : 43, पाल 1992c: 62
	XXXII	एकल	दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व	पुरूष	युवा वयस्क	1987	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 62
	XXXIII	एकल	पश्चिम–पूर्व	पुरूष	वयस्क	1987	पाल 1992a : 43, पाल 1992c: 62
	XXXVI	युग्म शवाधान	पश्चिम–पूर्व	स्त्री पुरूष	वयस्क युवा वयस्क	1984	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 62
	XXXVII	एकल	पश्चिम–पूर्व	स्त्री	युवा वयस्क	1987	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 63
	XXXIX	एकल	उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम	पुरूष	वयस्क	1987	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 63
IX	I	एकल	पूर्व–पश्चिम	स्त्री	वयस्क	1983	वर्मा और अन्य 1985 : 48, पाल 1992a : 43, पाल 1992c: 63

फेज	ग्रेव न0	शवाधान	दिक्स्थापन	लिंग	आयु	वर्ष	सन्दर्भ
	III	एकल	पश्चिम–पूर्व	स्त्री	वयस्क	1984	वर्मा और अन्य 1985: 50, पाल 1992a: 43,
	XIII	एकल	पश्चिम–पूर्व	स्त्री	वयस्क	1985	पाल 1992c: 63
	XIX	एकल	पूर्व–पश्चिम	पुरूष	वयस्क	1986	*आई0 ए0 आर0* 1985-86: 48, पाल 1992c: 63
	XXI	एकल	पश्चिम–पूर्व	स्त्री	वयस्क	1986	*आई0 ए0 आर0* 1985-86: 84, पाल 1992a : 43, पाल 1992c: 63
	XXIII	एकल	उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम	स्त्री	वयस्क	1987	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992a : 43,
	XXIV	एकल	उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम	पुरुष	वयस्क	1987	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992c: 63
	XXV	एकल	उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम	स्त्री	वयस्क	1987	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992 a: 43, पाल 1992c: 63
	XXVI	एकल	उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम	स्त्री	युवा वयस्क	1987	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992a : 43, पाल 1992c: 63
	XXXVII	एकल	उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम	पुरुष	वयस्क	1987	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84,
	XXIV	एकल	दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व	पुरुष	वयस्क	1987	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992a: 43 पाल 1992c: 63
	XXV	एकल	उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम	स्त्री	वयस्क	1987	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992 a: 43, पाल 1992c: 63
	XXXI	एकल	पश्चिम–पूर्व	–	–	1987	पाल 1992 a: 43
	XXXIV	एकल	दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व	पुरुष	वयस्क	1987	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992a: 43
	XXXV	एकल	पश्चिम–पूर्व	–	वयस्क	1987	*आई0 ए0 आर0* 1986-87: 84, पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 63
	XLI	–	–	–	–	उत्खनन नहीं किया गया	*आई0 ए0 आर0* 1986-87 : 84, पाल 1992a: 43, पाल 1992c: 63

इन शवाधानों में 5 शवाधान (शवाधान सं0 VI, VVI, XX, XXX, XXXXVI) युग्म शवाधान हैं (रेखाचित्र 13) और एक शवाधान संख्या (सं0 XVII) में 3 मानव कंकाल एक साथ दफनाये गये थे । एक युग्म शवाधान (सं0 VI) में पुरूष और नारी को एक दूसरे के विपरीत दिशा में रखकर दफनाया गया है (रेखाचित्र 14, छायाचित्र 19)। शेष शवाधानों में एक–एक मानव कंकाल दफनाये हुए मिले हैं (रेखाचित्र 15)। अधिकांश शवाधानों को पश्चिम–पूर्व दिशा में (सिर पश्चिम तथा पैर पूर्व दिशा में) पीठ के बल सांगोपांग लिटाकर दफनाया गया था (छायाचित्र 20)। कतिपय शवाधानों का दिक् स्थापन इससे भिन्न भी मिला है । ऐसे कंकालों के सिर पूर्व अथवा उत्तर या दक्षिण दिशा में रखे हुए मिले हैं । अधिकांश मानव कंकालों को पीठ के बल सांगोपांग लिटाकर दफनाया गया था लेकिन कतिपय कंकाल पेट के बल रखकर भी दफनाये गये थे (छायाचित्र 21) । कुछ ऐसे शवाधान भी प्राप्त हुए हैं, जिनमें हाथ और पैर मोड़कर शव को दफनाया गया है (रेखाचित्र 16, छायाचित्र 22)। श्रृंग के बने हुए बाण तथा आभूषण और पशुओं की हड्डियाँ अन्तयेष्टि सामग्री के रूप में रखी हुई मिली हैं । अधिकांश कंकाल वयस्क स्त्री–पुरूषों के थे जिनकी औसत आयु 18–35 वर्ष के बीच आंकी गयी है । बच्चों के कंकाल यहाँ से नहीं मिले हैं ।

दमदमा में उत्खनन से अधिक संख्या में लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। प्रमुख उपकरण प्रकारों में ब्लेड, फलक, क्रोड, माइक्रोब्यूरिन के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के ब्लेड, पुनर्गठित ब्लेड समद्विबाहु तथा विषमबाहु त्रिभुज, समलम्ब, चतुर्भुज, विभिन्न प्रकार की खुरचनियाँ, छिद्रक, चान्द्रिक आदि हैं (रेखाचित्र 17, 18)। उपकरण निर्माण के लिए प्रयुक्त पत्थरों में चैल्सिडनी, चर्ट, क्वाटज, अगेट, कार्नेलियन, आदि का उल्लेख किया जा सकता है (तालिका 4) ।

पाषाण उपकरणों के अतिरिक्त श्रृंग के उपकरण तथा मुद्रिकायें प्रमुख हैं । बलुआ पत्थर के सिल लोढ़े के टूटे हुए टुकड़े, हथौड़े, निहाई आदि अन्य प्रमुख पुरावशेष हैं ।
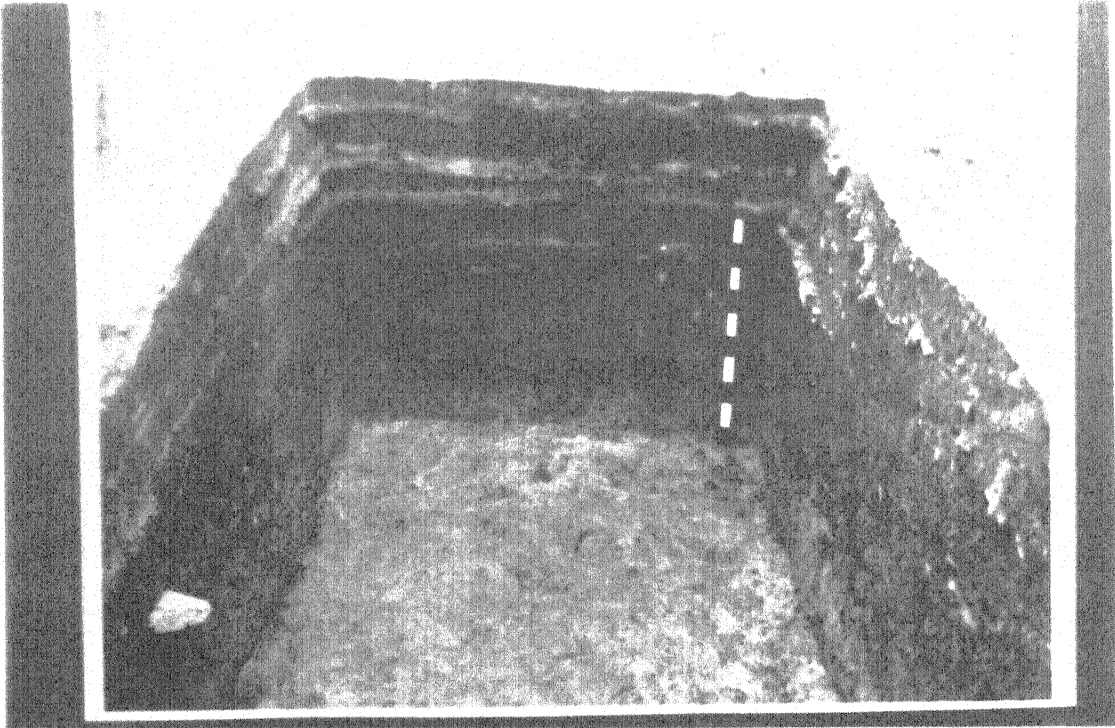
छायाचित्र : 18 दमदमाः अनुभाग में विभिन्न चरणों के जले फर्श के प्रमाण
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)
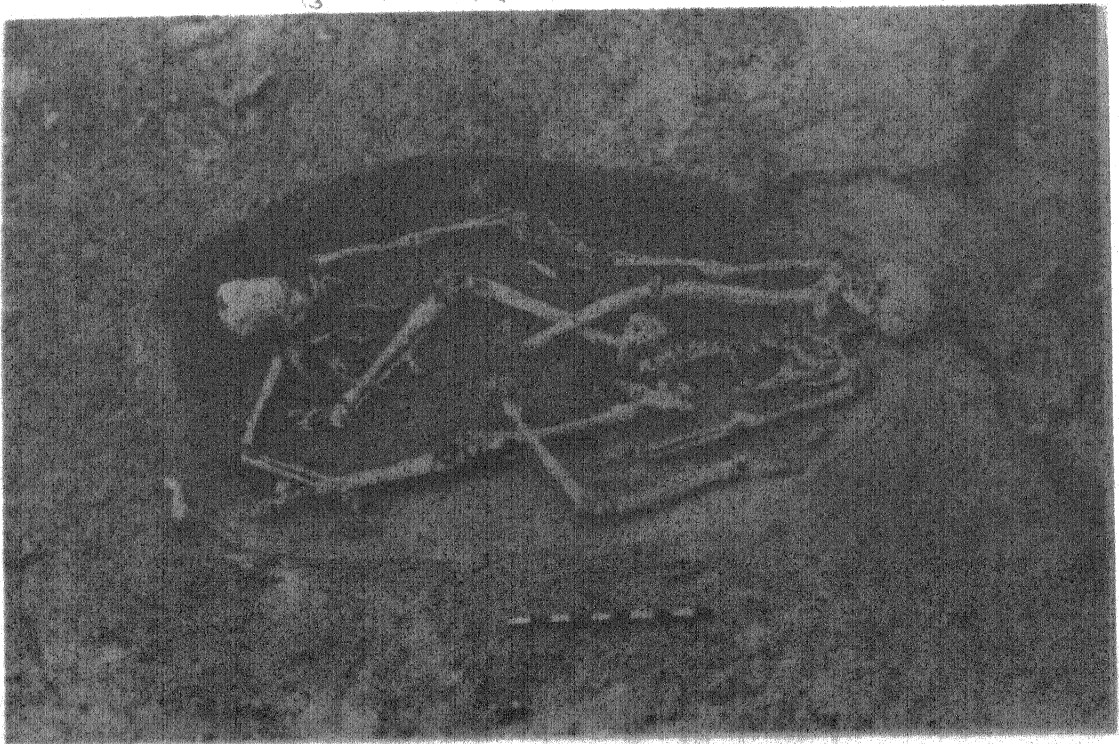
छायाचित्र : 19 दमदमाः विपरीत दिशा में रखकर दफनाये गये पुरुष और नारी का युग्म शवाधान (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)

छायाचित्र : 18 दमदमाः अनुभाग में विभिन्न चरणों के जले फर्श के प्रमाण (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)
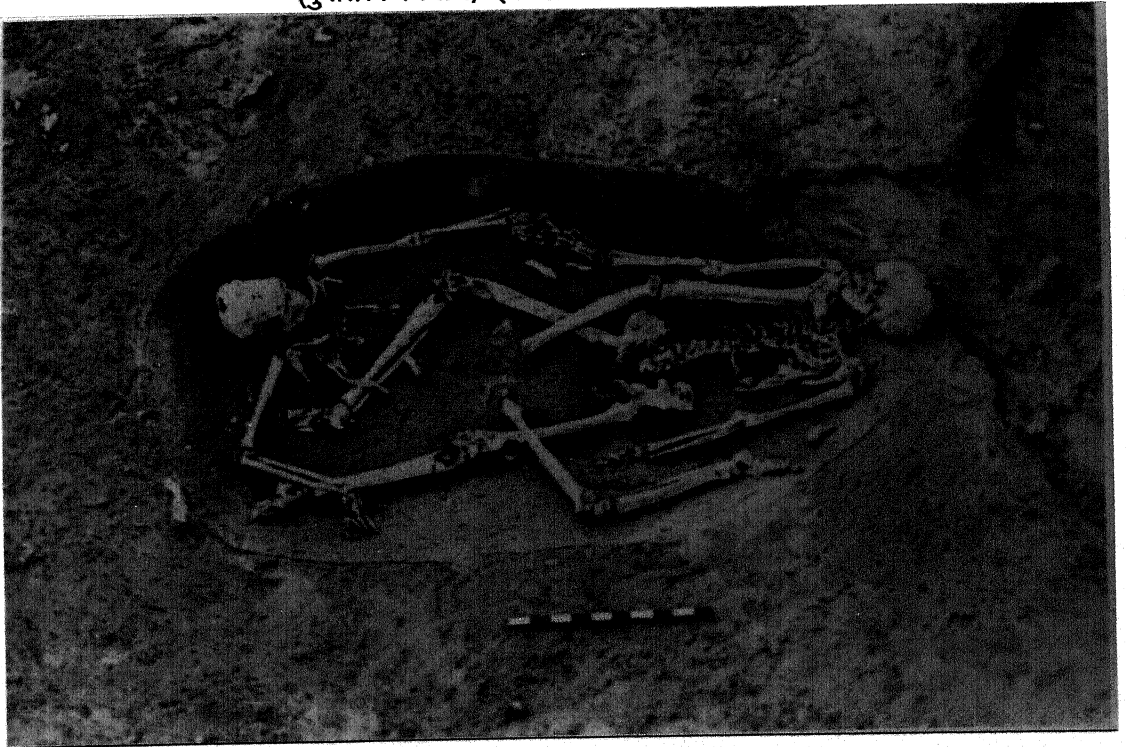
छायाचित्र : 19 दमदमाः विपरीत दिशा में रखकर दफनाये गये पुरुष और नारी का युग्म शवाधान (पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)

रेखाचित्र 13: दमदमाः कब्र का मानचित्र युग्म शवाधान

रेखाचित्र 14 दमदमाः कब्र का मानचित्र विपरीत दिशा में युग्म शवाधान
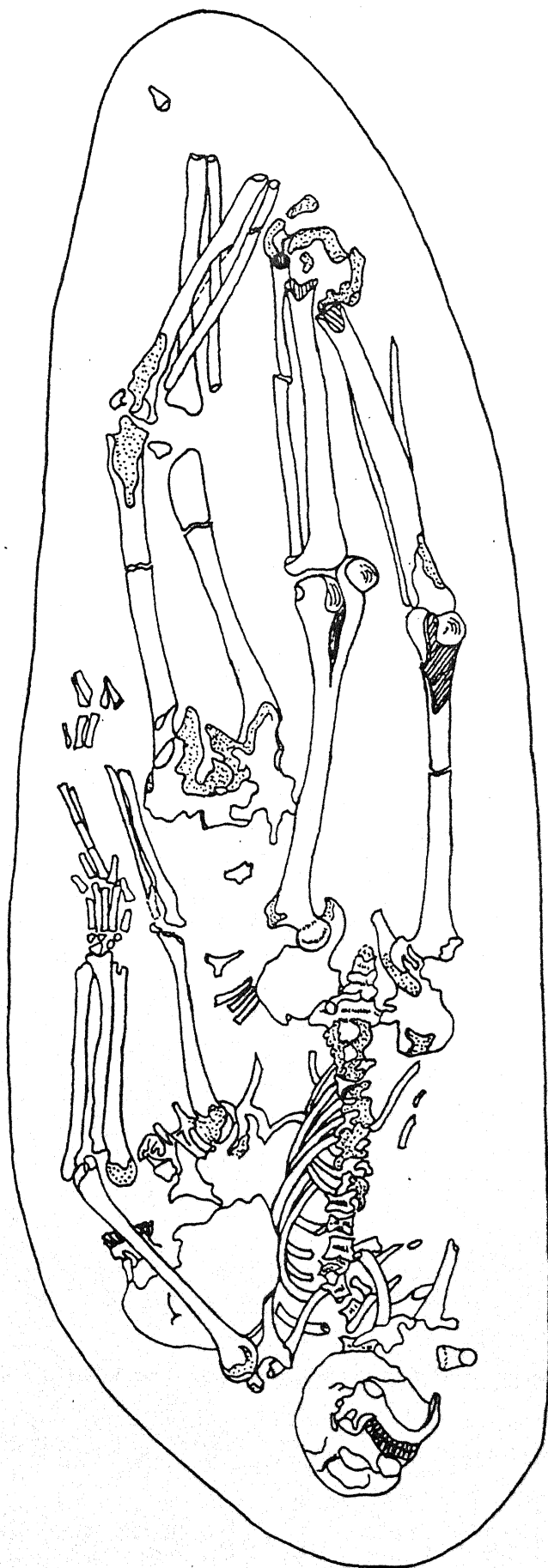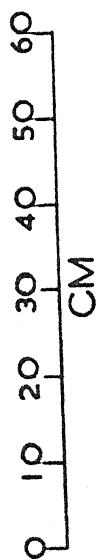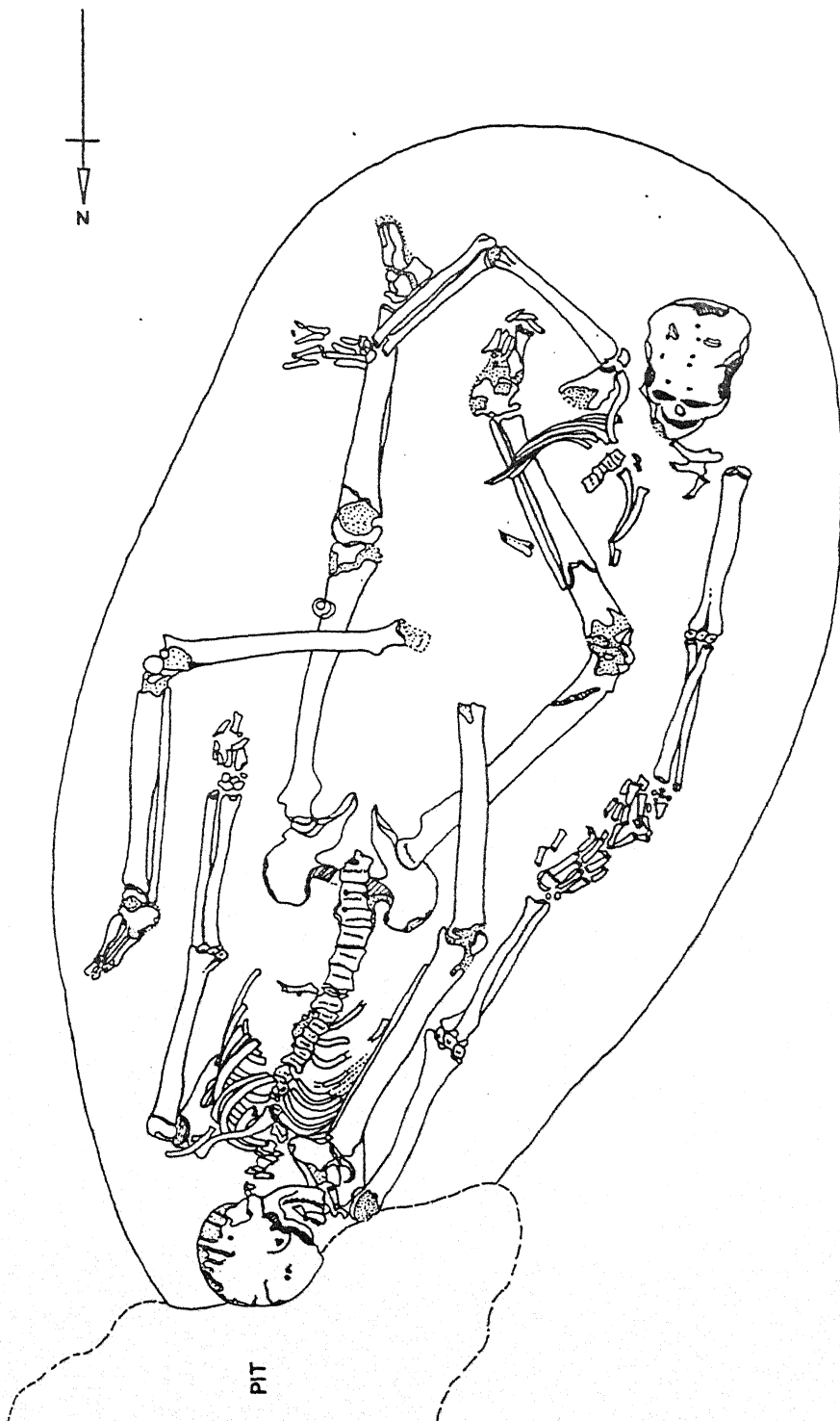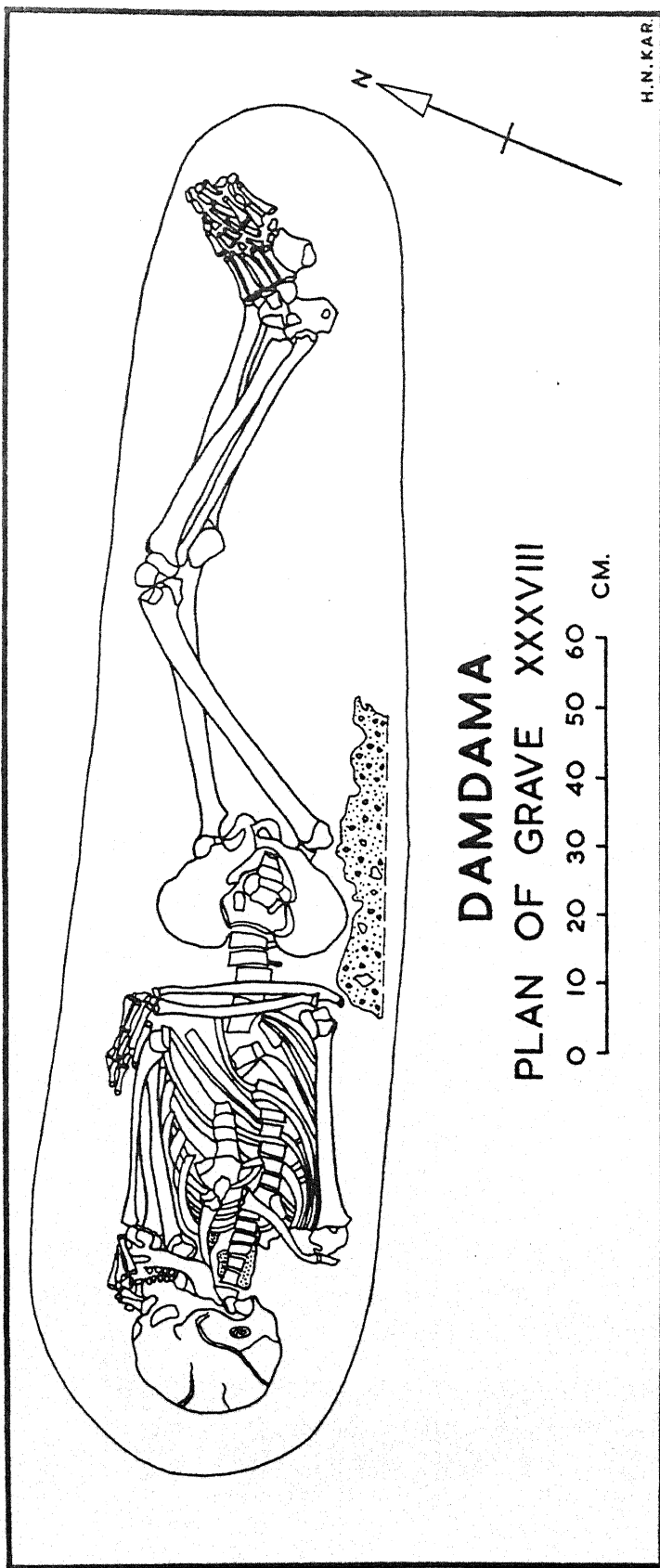
रेखाचित्र 15 दमदमाः कब्र का मानचित्र विस्तीर्ण शवाधान

छायाचित्र : 20 दमदमाः शवाधानों का विहंगम दृश्य
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)
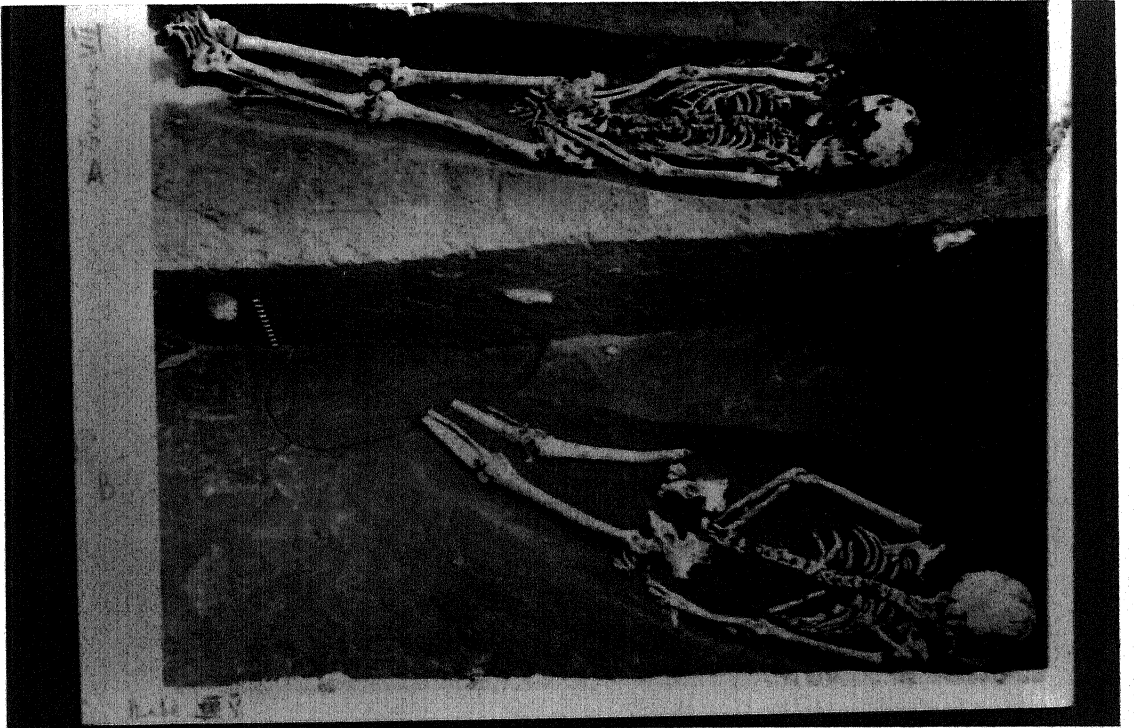
छायाचित्र : 21 दमदमाः विस्तीर्ण शवाधान, ऊपर के चित्र में पीठ के बल और नीचे चित्र में पेट के बल रखकर दफनाये गये कंकाल
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)

रेखाचित्र 16 दमदमा: कब्र का मानचित्र मुड़े हाथ पैर वाला नर कंकाल
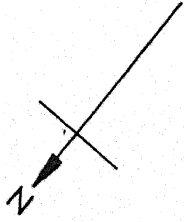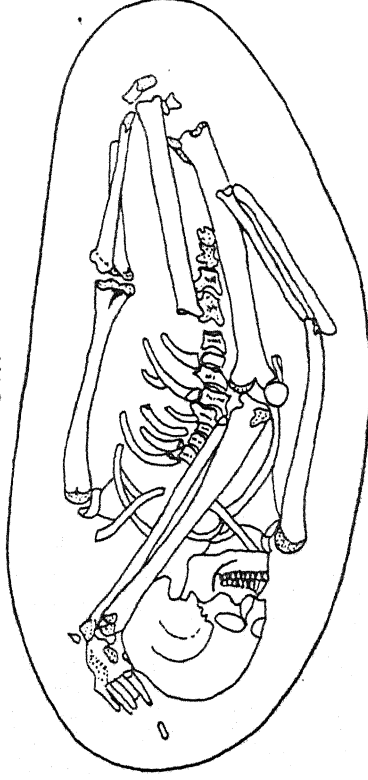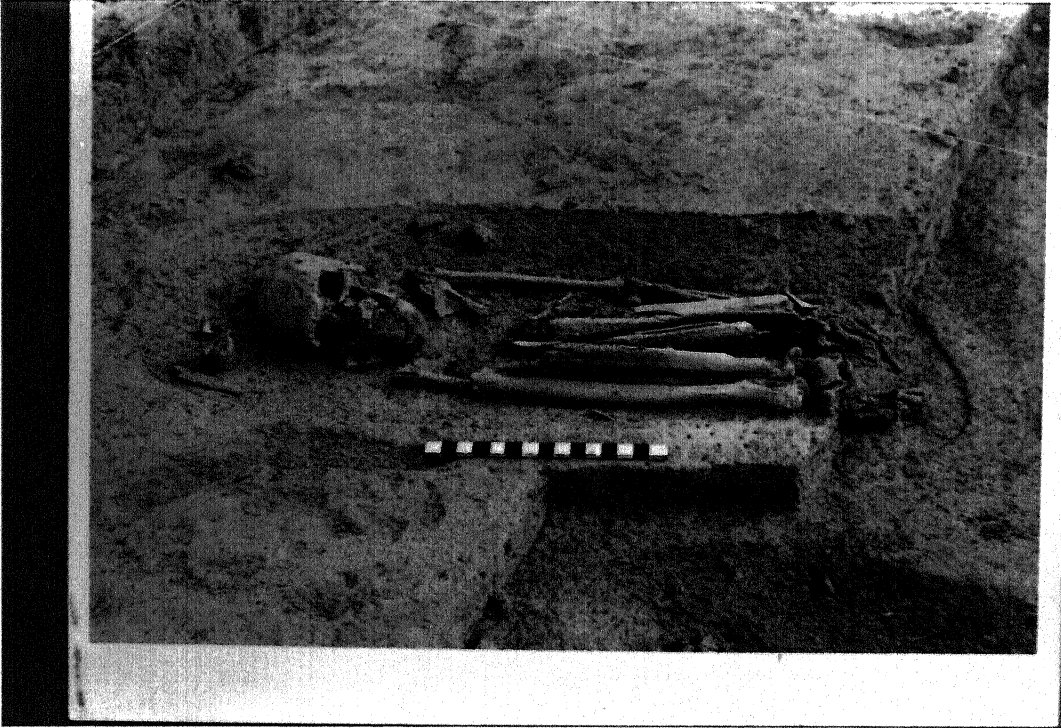
छायाचित्र : 22 दमदमा: हाथ–पैर मोड़कर दफनाया गया कंकाल
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)
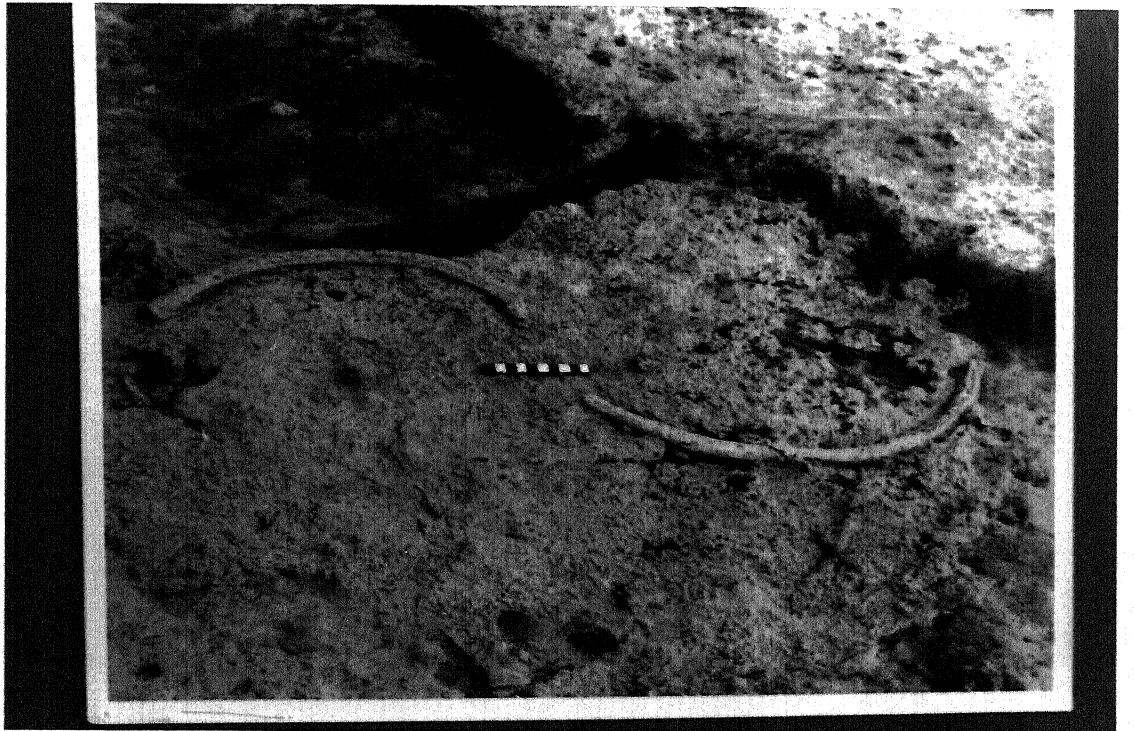
छायाचित्र : 23 दमदमा: उत्खनन में प्राप्त पशुओं की हड्डियाँ (हाथी की पसलियाँ)
(पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सौजन्य से)

रेखाचित्र 17: दमदमा: लघुपाषाण उपकरण

48
49
50
51
52
53
54
55
56
57
58
59
60
61
62
63
64
65
66
67
68
69
70
71
72
73
74
75
76
77
78
79
80
81
82
83
84
85
86
87
88
89
90
91
92
93
94
95
0
1
2 CM
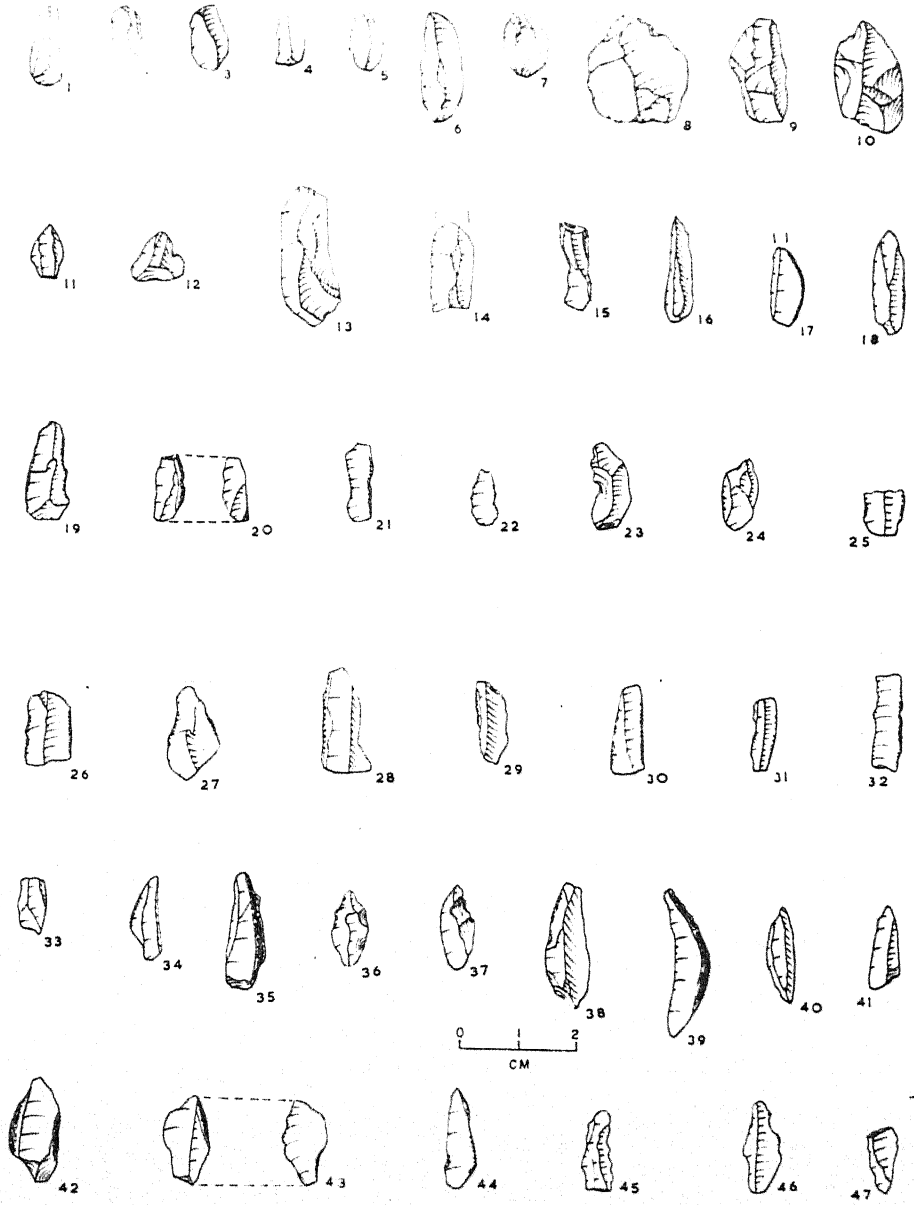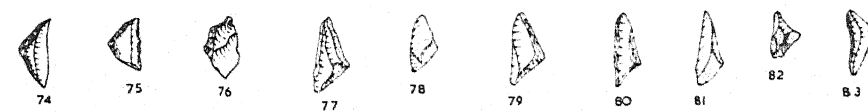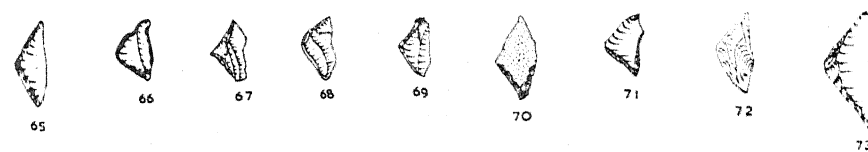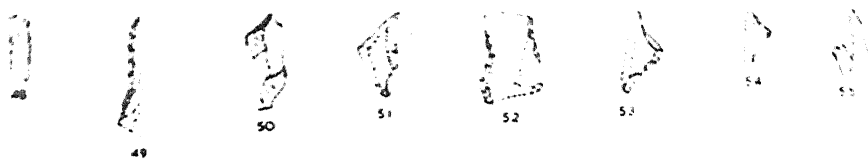
दमदमा में उत्खनन के दौरान प्रायः सभी स्तरों से जानवरों की हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं। उल्लेखनीय है कि सभी हड्डियाँ वन्य पशुओं की हैं (छायाचित्र 23)। पशुओं की हड्डियों के प्रारम्भिक विश्लेषण के आधार पर कहा गया है कि ये हड्डियाँ गैंडा, चीतल, सांभर, बारहसिंघा तथा जंगली सुअर आदि की है (थामस और अन्य 1995, 1996)। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि लगभग 90% हड्डियाँ जली अथवा अधजली हैं, जो इस बात की ओर संकेत करती हैं कि मध्य पाषाण युगीन मानव पशुओं का माँस भूनकर खाता था। पशुओं के अतिरिक्त अनेक पक्षियों तथा मछली कछुआ आदि की हड्डियाँ भी बड़ी संख्या में प्राप्त हुई हैं (पाल 1988: 115–122)। वनस्पति के अवशेष के सन्दर्भ में यहाँ के उत्खनन से प्राप्त बेर की गुठलियों का उल्लेख किया जा सकता है, जो उनकी भोज्य सामग्री के विषय में, महत्वपूर्ण संकेत प्रदान करती है (पाल 1994: 91–101)।

तालिका 4: दमदमा में लघुपाषाण के निर्माण में प्रयुक्त पाषाण प्रकार

स्तर	चैल्सिडनी	चर्ट	क्वार्ट्ज	अगेट	कार्नेलियन	योग
1	1737	750	53	41	7	2588
2	339	97	9	8	2	455
3	159	61	-	3	-	223
4	135	22	-	2	-	159
5	169	15	1	1	-	186
6	99	16	2	3	-	120
7	92	17	1	1	2	113
8	145	47	4	-	1	197
9	81	12	3	1	1	98
10	49	7	1	1	-	58
योग	3005	1044	74	61	31	4197
प्रतिशत	71.85%	24.87%	1.76%	1.45%	0.30%	100%

इस प्रकार दमदमा के उत्खननसे मध्य गंगा घाटी की मध्य पाषाण युगीन संस्कृति पर सर्वथा नवीन प्रकाश पड़ा है। विविध प्रकार के मानव शवाधानों, लघु पाषाण उपकरणों, पशुओं के श्रृंगों के बने हुए उपकरणों एवं आभूषणों, मिट्टी के प्लास्टर से युक्त आवास के फर्श, गर्त चूल्हों, वन्य पशुओं की हड्डियों तथा वनस्पतियों के अवशेषों आदि की दृष्टि से दमदमा का उत्खनन अत्यधिक महत्वपूर्ण कहा जा सकता है।

प्रो0 आर0 के0 दर्मा ने मध्य पाषाणिक स्थलों से प्राप्त सिल–लोढों, चल्हों और शवाधानों के आधार पर इन स्थलों के मध्य पाषाणिक जनसंख्या का अनुमान लगाने का प्रयास किया है (वर्मा 2000: 1–6)।

डॉ0 जे0 एन0 पाण्डेय ने भी दमदमा के उत्खनन से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर मध्य पाषाणिक मानव की जनसंख्या का अनुमान लगाने का प्रयास किया है। इस स्थल के प्रत्येक चरण में मध्य पाषाणिक मानव द्वारा प्रयुक्त क्षेत्र की गणना करके कुछ निष्कर्ष निकाले गये हैं। इस स्थल का कुल उत्खनित क्षेत्र 350. 85 वर्ग मीटर है। एस0 एफ0 कुक और आर0 एफ0 हाइजर (1968) के सूत्र के प्रयोग करने पर यह जनसंख्या 40 या 41 व्यक्तियों की होगी। विभिन्न चरणों के शवाधानों के आधार पर जनसंख्या वृद्धि को तीन वर्गो में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम से चतुर्थ चरण पहले वर्ग के अन्तर्गत आते हैं जब जनसंख्या वृद्धि–दर कम और जनसंख्या का घनत्व भी निम्न था। पाँचवा चरण दूसरे वर्ग में हैं, जिनमें सतत जनसंख्या वृद्धि का एक छोटा उदाहरण है और छठे चरण के अन्तिम वर्ग में जनसंख्या के घनत्व में तीव्र अवनति के प्रमाण मिलते हैं।

दमदमा के उत्खनन से प्राप्त हुए पुरापुष्प तथा वनस्पतियों और खाद्य पदार्थो के विषय में कुछ अध्ययन एम0 डी0 कजाले (1996) ने किया है और कुछ बीरबल साहनी इन्स्टीट्यूट आफ पैलियोबाटनी के के0 एस0 सारस्वत कर रहे हैं।

दमदमा के नर कंकालों की हड्डियों से दो ए0 एम0 एस0 कार्बन–14 तिथियाँ प्राप्त हुई हैं (लुकास और अन्य 1996: 301–311), जो इस प्रकार है:

8,640±65 B.P. और 8,865±65 B.P इन तिथियों के आधार पर यहाँ की मध्य पाषाणिक संस्कृति को लगभग 7000 ई0पू0 का समय दिया जा सकता है।

दमदमा, महदहा और सरायनाहर राय के मध्य पाषाणिक मानव सामान्यतः 1.80 मीटर लम्बे थे जिन्हें डोलिकोसेफलिक प्रजाति से सम्बन्धित किया गया है। हाथ पैर की हड्डियों के दोनों सिरों और कपाल के अस्थिकरण के आधार पर विभिन्न नर कंकालों को 17 से 35 वर्ष की आयु के बीच रखा गया है। महदहा में बच्चों के अतिरिक्त लगभग 50 वर्ष के एक वृद्धा का कंकाल भी प्राप्त हुआ है। तत्कालीन जीवन की दुरूहता संभवतः मानव को अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहने देती थी। जैसा कि पहले कहा गया है, कि दमदमा के कंकालों का अध्ययन ओरेगन विश्वविद्यालय के भौतिक नृतत्व शास्त्रविद् प्रो0 जान0 आर0 लुकास कर रहे हैं।

इन स्थलों पर आवास और समाधियाँ एक दूसरे से काफी नजदीक एक ही क्षेत्र में थे (पाल 1994: 91–101)। जहाँ पर लोग निवास करते थे वहीं पर अपने मृतकों के लिए समाधियाँ बनाते थे। उपर्युक्त तीनों स्थलों से प्राप्त गर्त चूल्हे गोल अथवा अण्डाकार हैं। इन चूल्हों मे कभी–कभी गीली मिट्टी का लेप भी किया जाता था। संभवतः लेपयुक्त गर्त चूल्हों में माँस पिण्ड रखकर उसके ऊपर घास–फूस रख दिया जाता था, और मिट्टी के टुकड़ों से ढक कर आग लगा दी जाती थी। यही कारण है कि इन चूल्हों में जली हड्डियाँ और राख के अतिरिक्त जली मिट्टी के टुकड़े भी प्राप्त हुए थे। सरायनाहर राय में एक चूल्हे को दो बार खोदकर प्रयोग करने के प्रमाण मिले हैं (शर्मा 1973: 129–156)। अतः निष्कर्ष निकाला गया है कि इस स्थल पर मध्य पाषाणिक मानव कम से कम दो बार रहने के लिए आया था।

उल्लेखनीय है कि महदहा से लघुपाषाण उपकरण सरायनाहर राय और दमदमा की अपेक्षा कम प्राप्त हुए है (शर्मा और अन्य 1980)। इस कमी को पूरा करने के लिए ही संभवतः महदहा में हड्डियों के उपकरण अधिक संख्या में बनाये गये हैं। हड्डी के बने उपकरणों में बाणाग्र, नोंक, खुरचनी, आरी, रूखानी आदि

उल्लेखनीय हैं। हड्डियों के बने बाणाग्रों का भारत में प्राचीनतम प्रमाण महदहा के उत्खनन से ही प्राप्त हुआ है।

बलुआ पत्थर पर बने सिल–लोढ़े, हथ गोले आदि भी महदहा से अधिक मात्रा में उपलब्ध हुए हैं। सिल–लोढ़ों की उपलब्धि से प्रतीत होता है कि मनुष्य अब जंगली घासों को पीस कर खाने लगा था। महदहा के आवास–समाधि क्षेत्र में कुछ ऐसे गर्त प्राप्त हुए हैं, जिनमें गीली मिट्टी का मोटा लेप लगाया है। इनमें कभी–कभी लेप की गई परतें भी प्राप्त होती हैं। चूँकि इन गर्तो में न तो राख मिलती है और न तो जली हुई हड्डियाँ तथा न जली हुई मिट्टी के टुकड़े, इससे सम्भावना यही है कि इन गर्तों में खाने योग्य जंगली घासों के बीज संग्रहीत किये जाते थे। जब इनका लेप खराब होने लगता था तब उन्हें पुनः लीप दिया जाता था और गर्त में आग जलाकर उसे पुख्ता बनाया जाता था। दमदमा और महदहा के लघु पाषाण उपकरण भी सरायनाहर राय की तरह चर्ट, चैल्सिडनी, कार्नेलियन, अगेट और जैस्पर पत्थरों पर बने हैं। उपकरण प्रकारों में समानान्तर बाहु वाले ब्लेड, नोक, खुरचनी, तक्षणी, त्रिभुज और समलम्ब चतुर्भुज सम्मिलित हैं।

सराय नाहर राय से समलम्ब चतुर्भुज नहीं मिले हैं। विन्ध्य क्षेत्र में लेखहिया (मिश्र 1977: 53), बघहीखोर (वर्मा 1987) और चोपनीमाण्डो के उत्खनन से इस बात के प्रमाण मिले हैं कि समलम्ब चतुर्भुज (शर्मा और अन्य 1980) का ज्ञान मनुष्य को त्रिभुज के बाद हुआ। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि महदहा और दमदमा की मध्यपाषाणिक संस्कृति सरायनाहर राय के बाद की है । सरायनाहर राय से सिल लोढ़े, हड्डियों के बाणाग्र तथा आभूषण आदि न मिलना भी महदहा को उसके बाद का प्रमाणित करता है। विन्ध्य क्षेत्र में, जहाँ से इस संस्कृति के लोग पत्थर पिण्ड लेकर जीविका की तलाश में आये, लोग पहाड़ की गुफाओं अथवा खुले स्थनों पर रहते थे। वहाँ ये लोग शिलाश्रयों की दीवालों और छतों पर तत्कालीन पशुओं के चित्र, आखेट दृश्य, धनुष धारण किये हुए मनुष्यों तथा नृत्य करते पुरूषों और महिलाओं को बनाते थे। जिन रंगों से ये चित्र बनाये गये हैं उनके प्रमाण गेरू पिण्डों के रूप में शिलाश्रयों के उत्खनन से प्राप्त हुए हैं। इस संस्कृति के गंगाघाटी के स्थलों पर शिलाश्रयों के अभाव में उनकी कलात्मक

अभिरूचि के कोई प्रमाण नहीं मिलते, लेकिन घिसे हुए गेरू के टुकड़े प्राप्त हुए हैं। इन गेरू पिण्डों से निकले रंग का प्रयोग कहाँ किया जाता था, इसका कोई पुरातात्विक प्रमाण हमारे पास नहीं है। संभव है मानव चेहरे को अलंकृत किया जाता. हो, या पशुओं की खालों पर चित्र बनाये जाते हों। कुछ हड्डियों के उपकरणों में रेखाएं बनाकर उत्कीर्ण करके अलंकृत करने के प्रमाण अवश्य मिले हैं।

गंगाघाटी की मध्यपाषाणिक संस्कृति के कालक्रम निर्धारण हेतु कार्बन तिथियाँ प्राप्त हुई हैं। सरायनाहर राय से एक रेडियों कार्बन तिथि 8394±110 ई0 पू0 (टी0आई0एफ0आर0, 1941) प्राप्त हुई है। अज्यामितीय मध्यपाषाणिक संस्कृति को इसके पहले का और ज्यामितीय मध्यपाषाणिक संस्कृति को इसके बाद का समय दिया जा सकता है। विन्ध्य क्षेत्र के लेखाहिया से दो कार्बन तिथियाँ 1710±110 ई0 पू0 और 2410±110 ई0 पू0 प्राप्त हुई हैं (अग्रवाल 1974: 60) इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि गंगा घाटी में भी यह संस्कृति संभवतः 2000 ई0 पू0 तक चलती रही। दमदमा से अभी हाल ही में दो ए0 एम0 एस0 कार्बन तिथियाँ (लुकास और अन्य 1996: 301–311) प्राप्त हुई हैं, जो इस प्रकार हैं:–

8640±65 B.P. (G. X- 20829- AMS)

8865±65 B.P. (G. X- 20822- AMS)

इस आधार पर सरायनाहर राय से प्राप्त तिथि के अधार पर मध्यपाषाण संस्कृति के प्रारम्भ को 8000 ई0 पू0 तक ले जाया जा सकता हैं।

जीविका का प्रारूपः

मध्यपाषाण काल में मानव जनसंख्या की मध्यगंगा घाटी में भी अभिवृद्धि हुई जैसा कि उत्तर पूर्व विन्ध्य एवं समीपवर्ती मध्य गंगाघाटी क्षेत्र में बड़ी संख्या में स्थित स्थलों से पता चलता है। जनसंख्या वृद्धि का कारण प्रौद्योगिकी में अभिनव परिवर्तन, तीर–धनुष का व्यापक प्रयोग एवं खाद्य संसाधनों की प्रचुर उपलब्धता थी।

तालिका 5: गांगेय मैदान और विन्ध्य क्षेत्र से प्राप्त मध्यपाषाणिक कार्बन तिथियाँ

पुरास्थल का नाम	प्रयोगशाला संख्या	5730 ईसा पूर्व	अंशसोधित तिथि
बघईखोर	टी0एफ0 187	1670±124 ईसवी	अप्राप्य
बघोर	एस0यू0ए0 1422	3514± 90	1410 ईसा पूर्व– 3795 ईसा पूर्व
बघोर II	पी0आर0एल0 715	6385± 227	अप्राप्य
लेखहिया	टी0एफ0 419	2415± 113	3035 ईसा पूर्व– 2780 ईसा पूर्व
लेखहिया	टी0एफ0 417	1715±108	2135 ईसा पूर्व– 1755 ईसा पूर्व
लेखहिया	जी0एक्स 20983–ए0एम0एस0	6420±75	
लेखहिया	जी0एक्स 20984–ए0एम0एस0	6050±75	
महदहा	बी0एस0 136	2180±124	2675 ईसा पूर्व – 2515 ईसा पूर्व
महदहा	बी0एस0 138	2005±134	2550 ईसा पूर्व – 2125 ईसा पूर्व
महदहा	बी0एस0 137	1015±258	1385 ईसा पूर्व – 815 ईसा पूर्व
दमदमा	जी0 एक्स0 20829–ए0एम0एस0	6690±65	
दमदमा	जी0 एक्स0 20822–ए0एम0एस0	6915±65	
सरायनाहर राय	टी0एफ0 1356/59	995±124	1140 ईसा पूर्व – 865 ईसा पूर्व
सरायनाहर राय	टी0एफ0 1104	8400±113	अप्राप्य

उत्तर–पूर्व विन्ध्य एवं मध्य गंगाघाटी की मध्य पाषाणकालीन संस्कृति के अध्ययन करने हेतु पुरातात्विक साक्ष्य तीन श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं:–

(1) उपकरण सम्बन्धी साक्ष्य।

(2) जीव–जन्तु सम्बन्धी साक्ष्य, मुख्यतया खुदाई में प्राप्त जानवरों की हड्डियों एवं शिलाश्रयों में की गयी चित्रकारी के आधार पर, और

(3) वनस्पति सम्बन्धी साक्ष्य।

उपलब्ध लघुपाषाण उपकरण में कई उपकरण प्रकारों का प्रयोग शिकार में होता था। उत्तर–पूर्व विन्ध्य के मध्यपाषाण संस्कृति में बहुत अल्पवनस्पति सम्बन्धी साक्ष्य उपलब्ध हैं। उत्तर–पूर्व विन्ध्य के शिलाश्रयों में सर्वाधिक प्राचीन चित्रकारी मध्यपाषाण काल के आखेटक और संग्रहक समुदाय से सम्बन्धित है। जहाँ तक वनस्पति साक्ष्यों का सम्बन्ध है बेलन घाटी में चोपनीमाण्डो के अन्तिम चरण से जंगली चावल के कार्बनयुक्त अवशेष प्राप्त हुए हैं।

मध्यपाषाण कालीन लोगों को गंगाघाटी ने मुख्यतः स्थलीय, जलीय एवं पक्षी आदि खाद्य संसाधनों ने आकर्षित किया। बड़ी संख्या में पत्थर एवं हड्डी के औजारों के अलावा सिल और लोढ़े के टुकड़े भी उत्खनन में मध्यपाषाण कालीन स्थलों से मिले हैं। जानवरों की हड्डियाँ कई प्रजाति के जंगली पशुओं के संकेत करती हैं। हड्डियों पर कटे एवं जले होने के निशान संकेत करते हैं कि इनका भोजन के लिए प्रयोग होता था। वनस्पतीय साक्ष्य महदहा एवं दमदमा में प्राप्त होते हैं। जिनमें छोटे गोल दाने (Millet) जंगली घासों के खाद्य दानें हैं (काजले 1990, 1996)। डा0 के0 एस0 सारस्वत को कुछ धान के अवशेष भी मिले हैं लेकिन उनका विवरण अभी प्रकाशित नहीं है।

उत्तर–पूर्व विन्ध्य के मध्यपाषाण कालीन स्थलों में वनस्पतीय अवशेषों की अनुपस्थिति तथा मध्य गंगाघाटी के तीन खुदे हुए स्थलों में वनस्पतीय साक्ष्यों की उपस्थिति मध्यपाषाण कालीन संस्कृतियों के दो विभिन्न पारिस्थितिकीय क्षेत्रों में दो भिन्न जीविका–प्रारूपों की ओर संकेत करती हैं। उत्तर–पूर्व विन्ध्य के स्थलो–मोरहनापहाड़, बघईखोर, लेखहिया और भदहवाँ पहाड़ी में वनस्पतीय साक्ष्यों के विषय में सूचना का अभाव है। केवल चोपनीमाण्डो से जंगली धान के अवशेष मिले हैं। 2002 में इन्स्टीट्यूट ऑफ आर्क्योलोजी, लन्दन कालेज, लन्दन के डॉ0 डोरियन क्यू0 फुलर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद

विश्वविद्यालय के डॉ0 जे0 एन0 पाल और डॉ0 एम0 सी0 गुप्ता के साथ फ्लोटेशन तकनीक कुछ जंगली घासों के बीज (Millet) प्राप्त हुए हैं। यह संकेत किया जा सकता है कि बघईखोर एवं लेखहिया में मानव ढांचे के सुरक्षित अवशेष पाये गये हैं। जानवरों की हड्डियों का अभाव केवल स्थलों के मिट्टी के रासायनिक गुणों के कारण ही नहीं हो सकता अपितु यह भी हो सकता है कि उत्तर–पूर्व विन्ध्य में रहने वाले मध्य पाषाण कालीन लोग शिकार करने वालों के बजाय इकट्ठा करने वाले रहे हों। खाद्य इकट्ठा करने के साथ–साथ वे मछली पकड़ने तथा चिड़ियों एवं जानवरों का शिकार भी करते रहे होंगें । यह विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं कि उत्तर–पूर्व विन्ध्य के मध्य पाषाण कालीन लोगों के जीविका प्रारूप में वनस्पतीय संसाधनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी होगी। माइक्रोवियर विश्लेषण से भी इसी तरह के निष्कर्ष निकले हैं (पाल 1996)।

उत्तर–पूर्व विन्ध्य क्षेत्र और मध्य गांगेय मैदान में जीविका का प्रारूप

वनस्पतीय आंकड़ों की अपर्याप्तता के कारण प्रागैतिहासिक खाद्य का प्रारूप परिस्थितिकीय स्रोतों के आधार पर अनुमानित की जा सकती है। इस क्षेत्र में आदिम जनजातियों के अध्ययन से भी आखेटक संस्कृति का पुनर्निमाण किया जा सकता है (क्रुक और हाइजर, 1968, क्रुक 1896; चक्रवर्ती और मुखर्जी 1971)। मालती नागर ने वर्तमान समय के मध्य भारत के जनजातियों का समकालीन जातियों का अध्ययन कर संसाधनों की प्रचुरता, प्राप्यता एवं वितरण का अनुमान किया है (नागर 1997, नागर और मिश्र 1989: 66–78; 1990; अंसारी 2001)। उनके अनुसार जिनको शर्मा और क्लार्क ने उदधृत किया है, मध्य प्रदेश के रायसेन एवं बस्तर जिले के भीमबेटका क्षेत्र की जनजातियाँ कभी भी 67 जंगली वनस्पति प्रजाति का उपयोग भोजन हेतु करते हैं। इनमें 8 पत्तियाँ, 7 फूल, 30 फल, 4 बीज, तथा 18 कंद, अंकुर एवं जड़ सम्मिलत हैं। शायद ही किसी माह में जंगली पौधों के संसाधन दोहन हेतु उपलब्ध न होते होगें। मानसून के सम 19 प्रजातियाँ: 3 पत्ते, एक फूल, आठ फल तथा 7 कंद प्राप्त होते हैं: जाड़े में 22 प्रजातियाँ : एक पत्ता, एक फूल, 15 फल एवं सात कंद प्राप्य हैं एवं ग्रीष्म के 23 प्रजातियाँ: दो पत्ते, 4 फूल, 11 फल, 1 बीज, 3 कंद एवं एक गोंद प्राप्य हैं।

उत्तर–पूर्व विन्ध्य क्षेत्र में वर्षा ऋृतु में बड़ी संख्या में जंगली पत्तियाँ, फूल, फल, कन्द आज भी प्राप्त होते है एवम् जंगली लोग, कच्चा तथा पकाकर इनका सेवन करते थे। इनमें चौलाई की पत्ती, चकौड़ा, बड़ा साग (बन साग), भुच्ची, चेंच, कनकौआ, लेहसुआ, एवं बनकारी आदि के फूल तथा पत्तियाँ पंडोरा के फल, सतावर के कंद (अस्परागस रेसेमस) जंगली सुरक्षित मुसानी (पोर्डलाका ट्यूबरोसा रोक्सव), सेमलकन्द, विस्मातिया, अमलोह, कंद कामराज, शुलखादी, केसर, गोंद (नागर मोथा) आदि सम्मिलित हैं। छिउल पौधों की कोमल जड़ो एवं खजूर के ऊपरी छिलकों का भी सेवन अवसर पड़ने पर वर्षा ऋृतु में किया जाता था।

इस क्षेत्र में शरद ऋृतु में प्राप्य मुख्य जंगली फल हैं – आंवला (फिलायस इठिलका), इमली (रैमिरिडंस सेमिआरिया रोक्सब), सीताफल (अन्ना स्कवेमोसा), मकोई (सोलानम निग्रम) एवं सेंघा अथवा सेंधिया। नवम्बर–दिसम्बर में बथुआ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहता है। जाड़े में झरबेर कुछ हद तक सहायक खाद्य सामग्री का काम करता है। झरबेर घनी कांटेदार झाड़ियों की रचना करते हैं। फल अक्टूबर–नवम्बर में पक जाते हैं। पके फलों का उपयोग तुरन्त तोड़कर भी तथा उन्हें सुखाकर एवं सुरक्षित कर ग्रीष्म एवं वर्षा ऋृतु में खाने हेतु किया जाता है।

ग्रीष्म ऋृतु में महुआ के फूल (बौसिया हौटीफालिया), तेंदू, बेल, गूलर, पीपल, बरगद एवं खजूर आदि पाये जाते है। ग्रीष्म ऋृतु में खाया जाता है। इस विषय में उल्लेखनीय है कि महुआ के फूल ग्रीष्म ऋृतु का सर्वाधिक महत्वपपूर्ण जंगली खाद्य–उत्पाद बहुतायत में होते हैं। मार्च–अप्रैल में फूल आने के समय पेड़ के पत्ते झड़ जाते हैं। महुआ के फूल अनेक प्रकार से खाये जाते हैं। ताजे फूल कच्चे ही अथवा पकाकर खाये जा सकते हैं। महुआ के फूलों को सामान्यतः सुखाकर एवं उनको पीटकर अन्दर की भूसी निकालकर सुरक्षित संग्रह कर लिया जाता है। दाल एवं चने के साथ भी इसे पकाया जाता है। फूलों से शराब भी बनायी जाती है। महुआ के फल भी खाने में स्वादिष्ट होते हैं। महुआ के कोए से तेल प्राप्त होता है, जोकि प्रकाश में लिए जलाने अथवा खाने के लिए उपयोग में लाया जाता है। महुआ के फलों एवं फूलों का महत्व प्राचीन जन–जातीय अर्थ–व्यवस्था में प्रमुख खाद्य के रूप में महत्वपूर्ण है। इस बात के साक्ष्य हैं कि

पश्चिमी भारत में जलवायु प्रारम्भिक नूतन काल में आर्द्र थी । पश्चिम भारत की तरह नूतन काल के प्रारम्भ में उत्तर–पूर्व विन्ध्य और मध्य गांगेय मैदान में अधिक वर्षा एवं वितरण होता था। वर्षा ऋतु में वनस्पतियाँ खाद्य की आपूर्ति करते थे तथा पूरक रूप में शाकाहारी जानवरों का शिकार भी करते थे। चोपनीमाण्डो से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों से इस संकल्पना को समर्थन मिलता है। चोपनीमाण्डो में तृतीय चरण की खुदाई में पर्याप्त संख्या में पूर्ण व अपूर्ण गोल पत्थर, सिल एंव लोढ़े पाये गये हैं। इनमें एक या अनेक स्थानों पर प्रयोग के निशान हैं। बारह गोल पत्थरों में पाँच पूर्ण एवं शेष सात टुकड़ों में हैं। इनका बड़ा महत्व है विशेषतः यह देखते हुए कि ऐसे प्रमाण अन्यत्र भी मिले हैं। गुजरात में लंघनाज, बम्बई के निकट येरंगल, राजस्थान में बागोर, कर्नाटक में हुण्सगी–1 और सोरापुर दोआब में तथा मध्य प्रदेश में बाघोर–II और घघरिया शिलाश्रय में पाये गये हैं। वलय पत्थरों (रिंग स्टोन) का बड़ी संख्या में मध्य पाषाणकालीन स्थलों में पाया जाना तथा पुरापाषाण काल में उनकी अनुपस्थिति महत्वपूर्ण है। संभवतः इनका उपयोग खुदाई करने वाली छड़ी के भार हेतु होता था। उपलब्ध साक्ष्य संकेत करते हैं कि मध्य गांगेय मैदान और उत्तर–पूर्व विन्ध्य के मध्य पाषाण कालीन लोग खाद्य जड़ों एवं कन्द का संकलन अपने सहायक खाद्य आपूर्ति के रूप में करते थे।

दक्षिणी उत्तर पद्रेश में बांदा, इलाहाबाद, वाराणसी जिलों तथा बड़ी संख्या में मध्य पाषाण कालीन भित्ति–चित्रों एवं छतों की चित्रकारी से उनकी कलात्मक गतिविधियों का साक्ष्य प्राप्त होता है। मध्य पाषाण कालीन लोगों ने अपने जीने की शैली तथा समकालीन प्राकृतिक वनस्पतियों का एक सुबोध विवरण छोड़ा है। मध्य पाषाण कालीन लोग मुख्यतः लंगूर, हिरण, सुअर, गाय, गैंडा, एवं हाथी का शिकार करते थे। शिकारी कभी–कभी मुखौटा पहने रहते थे। तीर–धनुष एवं भाले शिकार के प्रमुख अस्त्र थे। उत्तर–पूर्व विन्ध्य की चित्रकला में जानवरों के शिकार के अलावा शहद एवं फल इकट्ठा करने के दृश्य भी दिखाये गये हैं: मछली पकड़ना तथा पक्षियों का शिकार करना भी दिखाया गया है।

गंगाघाटी के मध्यपाषाणिक मानव के खाद्य सामाग्रियों और जीवन–यापन के संसाधनों के बारे में कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष मानव कंकालों के रासायनिक परीक्षणों से निकाले गये हैं।

मध्य गंगाघाटी में स्थित मध्य पाषाणकालीन उत्खनित स्थलों– सराय नाहर राय, महदहा तथा दमदमा में बड़ी संख्या में जानवरों की हड्डियों के अवशेष मिलते हैं। सरायनाहर राय में ये हड्डियाँ, चूल्हों में एवं फर्श पर मिली हैं जबकि महदहा में वे चूल्हों के साथ–साथ आवासीय एवं समीपस्थ जलीय क्षेत्रों से भी मिली हैं। खोज के दौरान सम्पूर्ण दमदमा स्थल पर जानवरों की हड्डियाँ मिलती हैं किन्तु उनका बाहुल्य खुदाई के दौरान पूर्वी क्षेत्र में ही दिखायी पड़ता है। यद्यपि सरायनाहर राय से हाथी की पसलियाँ और अन्य हड्डियाँ मिली हैं तथापि मध्य पाषाण काल के लोगों द्वारा शिकार किये गये जानवर मुख्यतया गोजातीय (बोबिड़) एवं छोटे शाकाहारी जन्तु थे। जलचर प्रजातियों का प्रतिनिधत्व कछुआ और मछली द्वारा हुआ है। इन सभी जानवरों की हड्डियाँ टूटी हुई एवं जली हुई हैं। अस्थियों के अध्ययन के आलोक में कहा जा सकता है कि महदहा से विभिन्न प्रकार के पशुओं का प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। इनमें अनेक प्रजातियों के हिरण, सुअर, एवं मांसाहारी जन्तु, इसके अतिरिक्त कछुआ, मछली एवं पक्षियों की हड्डियाँ भी पायी गयी हैं (थामस और अन्य 1995: 29–36, 1996, 2002)। महदहा में पाये गये एक जानकर का चर्वणक दाँत एवं एक ग्रीवा कशेरूका की पहचान दरियायी घोड़े (आलूर 1980: 201–227, 1990) से की गयी है। यहाँ से गैण्डे के अस्थि अवशेश्ष भी प्राप्त हुये हैं।

दमदमा के जन्तु अवशेषों में हिरण, कछुआ, गाय, बैल, भैंस एवं पक्षी सम्मिलित हैं। डा0 आलूर ने जिन हड्डियों के आधार पर भेड़–बकरी की पहचान की थी, वे वस्तुतः हिरण और अन्य मृगों की हैं।

इन तीनों स्थलों सरायनाहर राय, महदहा एवं दमदमा के जन्तु अवशेषों में हिरण, सुअर एवं गाय बैल एवं भैंस सामान्य हैं। हाथी एवं गैंडा के अवशेष विरल हैं। महदहा में मांसाहारी जानवरों के कुछ अवशेष भी पाये गये हैं । कुछ अस्थियों

के बारे में संकेत मिलते हैं कि ये दरियाई घोड़े के हो सकते हैं। जन्तु संसाधनों की उपलब्धि के प्रारूप में परिवर्तन के निर्धारण हेतु जानवरों की हड्डियों की मात्रा के आँकड़े अभी उपलब्ध नहीं हैं।

सराय नाहर राय, महदहा एवं दमदमा के मध्य पाषाण कालीन लोगों द्वारा आखेट किये गये जानवर मुख्यतः हिरण प्रजाति (सर्विडस) एवं गवल प्रजाति (वोविडस) के हैं, जो व्यापक स्तर पर आखेट का संकेत देते हैं। बड़ी संख्या में हिरण प्रजाति के पशु, जंगल एवं झाडियों के रूप में जंगलों के अस्तित्व का संकेत देते हैं, जबकि गवल प्रजाति के पशु, भैंसे और गैंड़ो का अच्छा निरूपण अपेक्षाकृत खुले चारागाहों के महत्वपूर्ण भू–भाग का संकेत देते हैं। वर्तमान स्थापित मत जिसके अनुसार गैंडों के लिए जलीय एवं जंगल आवश्यक हैं, के विपरीत, गैंड़े चारागाही क्षेत्रों में रह सकते हैं। हाथी, भैंस और गैंड़े की उपस्थिति के आधार पर दलदली भू–भाग का भी अनुमान किया जा सकता है। जलीय एवं अपेक्षाकृत शांत जल का पर्यावरण कछुये एवं मछली द्वारा प्रमाणित होता है। प्रतापगढ़ जिले की धनुषाकार झीलों का वनस्पति विज्ञान सम्बन्धी अध्ययन इस क्षेत्र में चारागाही वनस्पति को इंगित करता है। हिरण को प्रतिदिन 25.45 किलोग्राम हरे चारे की आवश्यकता होती है। गाय–बैल को 55.75 किलोग्राम हरे चारे की प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती है। जितने अधिक शाकाहारी पशु होंगे उतने ही कम प्राकृतिक चारागाह होंगे। तदनुसार मानव अथवा गोजातीय जनसंख्या वृद्धि ने एक दूसरे के खाद्य सीमाओं को प्रभावित किया होगा। जे0 एन0 पाण्डेय का मत है कि वर्ष भर उपलब्ध खाद्यान्न ने मध्य पाषाण कालीन लोगों को इस क्षेत्र में अर्द्ध–स्थाई आधार पर बसने को प्रेरित किया, इसके परिणाम स्वरूप मानव जनसंख्या में वृद्धि हुई एवं संसाधनों पर दबाव बढ़ा।

पुरातत्ववेत्ता खाद्य उत्पादक अर्थ व्यवस्थाओं के पर्यावरण एवं भूमि पर प्रभाव से परिचित हैं, किन्तु कृषि–पूर्व अवस्था के समय परिवर्तन की सम्भावना की व्याख्या करना आवश्यक है। यह मान लिया जाता है कि मध्य पाषाण कालीन लोगों ने अपनी आदिम संस्कृति के साथ पारिस्थितिकी पर अल्प प्रभाव डाला होगा। हाल में ब्रिटेन में कुछ सुझाव दिये गये हैं कि मध्य पाषाण कालीन लोग

जंगलों को जलाने के दौरान जंगलों को परिष्कृत कर रहे थे, वे मानव एवं जानवरों के उपयोग हेतु भी जंगलों का विकास कर रहे थे। सरायराय, महदहा एवं दमदमा में आग के उपयोग का प्रमाण मिलता है। मध्य गंगा घाटी के मध्यपाषाण कालीन लोग जंगलों को जलाते थे अथवा नही, इसका कोई सीधा प्रमाण नही है । जंगलों को ग्रीष्म ऋृतु में ही जलाया जाता होगा, जब पौधों में रस की वृद्धि नही होती होगी। आग प्रायः बड़े एवं प्रतिरोधी वृक्षों को जलाने में ही प्रयुक्त होती होगी। जंगलों के कृत्रिम सफाई का भी शिकार पर सीधा प्रभाव पड़ा होगा।

मध्य पाषाण कालीन उत्खनित स्थलों– सराय नाहर राय, महदहा एवं दमदमा से प्राप्त जानवरों की हड्डियाँ सामान्यतया जंगली प्रजातियों से सम्बन्धित हैं। इसके अलावा जानवरों की हड्डियाँ गुजरात में लघंनाज (संकालिया 1965, एर्थाड और केनेडी 1965), राजस्थान में बागोर (मिश्र 1973: 92–101) तथा मध्य प्रदेश में आदमगढ़ (जोशी 1978) के मध्यपाषाण कालीन स्थलों से प्राप्त हुई हैं। बागोर एवं आदमगढ में जंगली एवं पालतू दोनों प्रकार के जानवर पाये गये हैं। बागोर में जंगली जानवरों का प्रतिनिधित्व काला मृग, चिंकारा, चीतल, साँभर, खरगोश, एवं लोमड़ी करते हैं, एवं आदमगढ़ में हिरण, साँभर, खरगोश, साही, एवं घोड़ा करते हैं। जंगली एवं पालतू जानवरों की उपस्थिति से संकेत मिलता है कि मध्य पाषाण कालीन आखेटक तथा खाद्य इकट्ठा करने वाले लोगों की अर्थव्यवस्था पशुचारिता के द्वारा अभिवृद्धि को प्राप्त हुई। बागोर एवं आदमगढ के मध्यपाषाण कालीन स्थलों से प्राप्त जानवरों की हड्डियों की सावधानी पूर्वक जांच आवश्यक है। जब हम पश्चिम एशिया के अधिकांश भागों में पशुपालन का इतिहास देखते हैं तो हम पुरातात्विक दृष्टि से पाते है कि एक समय अधिकांश स्थलों पर भेड़, बकरी, जन्तु सम्बंधी प्रमुख घटक बन गये। कुछ मामलों में परिवर्तन धीमा रहा होगा। अन्य मामलों में प्रजातियों का तीब्र परिवर्तन हुआ होगा। कृषि की तुलना में आखेट के व्यावहारिक निहितार्थों से सम्बन्धित हिग्स एवं जारमन (1972), जारमन एवं सैक्सन (1972) द्वारा निर्मित बिन्दु उचित है एवं आगे भी उनकी गम्भीर जांच पड़ताल की आवश्यकता है।

मध्य गंगाघाटी के मध्य पाषाण कालीन लोगों के वानस्पतिक खाद्य इकट्ठा करने के विषय में हमें मुख्यतया खाद्य सामग्री तैयार करने वाले उपकरणों द्वारा लगाये गये अनुमान पर ही आधारित रहना पड़ता है (वर्मा 2000: 1–6)। सराय नाहर राय एवं महदहा से कोई वनस्पति अवशेष नहीं मिला है। प्लवन तकनीक के द्वारा 1983–84 में दमदमा में खाद्यान्न के कुछ कार्बनीकृत दाने खोजे गये हैं। उनकी निश्चित पहचान अभी होनी है। महदहा एवं दमदमा में बलुआ पत्थर के बड़े खण्ड़ों का प्रयोग सिल के लिए होता था, जिनके अवशेष पर्याप्त मात्रा में पाये गये हैं। मध्य गंगा घाटी में पत्थर स्थानीय रूप से नहीं पाये जाते हैं। अतएव वहाँ पाये गये सिल और लोढ़े दक्षिण में स्थित 100 किलोमीटर दूर प्रभास पहाड़ियों या उत्तर पूर्व विन्ध्य से लाये गये होंगे; ऐसी मान्यता है। चूँकि प्रत्येक पूर्ण सिल का वजन 10 से 15 किलोग्राम होगा एवं महदहा तथा दमदमा में क्रमशः 191 एवं 141 अवशेष मिले हैं, अतएव एक यथेष्ट ऊर्जा–निवेश की आवश्यकता पड़ी होगी।

आर0 बी0 ली और जे0 डी0 वोरे (1968), जे0 येल्लेन एवं अन्य द्वारा किये गये नृजातीय शोध प्रदर्शित करते हैं कि वर्तमान समय के शिकारी तथा खाद्यान्न इकट्ठा करने वाले समुदाय आरामदायक जीवन बिताते हैं, प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन दो से पाँच घंटे भोजन की तलाश में बिताता है एवं पौष्टिक तथा भिन्न प्रकार के आहार का आनन्द उठाता है।

आर0 वी0 ली ने दक्षिण अफ्रीका के कुंग बुशमेन के संदर्भ में आकलन किया है कि उनका 65 से 80 प्रतिशत खाद्य, वानस्पतिक स्रोतों से प्राप्त किया जाता है। फल, फूल, जड़ आदि इकट्ठा किये गये मुख्य खाद्य हैं, खाने में माँस की मात्रा प्रायः 35 प्रतिशत से अधिक नहीं होती, यद्यपि कठिनाई से प्राप्त होने के कारण यह प्रमुखता प्राप्त खाद्य है। यह ध्यान देने की बात है कि वर्तमान समय के शिकारी एवं खाद्य इकट्ठा करने वालों के उदाहरण बहुत कम हैं तथा यह आवश्यक नहीं हैं कि वे पहले के भोजन खोजने वाले समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं। पुरातात्विक अध्ययन में नृजातीय नमूनों का उपयोग सावधानी पूर्वक करना चाहिए। हम यह नहीं मान सकते है कि मध्य पाषाण काल का आखेटक एवं खाद्य–संग्राहक पूर्णतः आजकल के लोगों की भाँति ही व्यवहार करते रहे होगें।

महदहा को स्थल अवशोषण अध्ययन (Site Catchment analysis) हेतु चुना गया (पाण्डेय 1985)। यह स्थल एक झील के किनारे स्थित है। यहाँ पर खुदाई में चार चरणों के आवासीय जमाव और कई नर–कंकाल मिले हैं। मध्य पाषाण काल में यहाँ तीन प्रकार के क्षेत्र उपभोग हेतु उपलब्ध रहे होंगे (1) झील, (2) झील के दलदली किनारे एवं (3) खुले वन स्थल। मध्य पाषाण काल में झील के विस्तार का अनुमान करना कठिन है। यद्यपि मध्य पाषाण काल का यह स्थल सिकुड़ा तथा दलदल भूमि का एक क्षेत्र खाली है जो कि मानसून के समय बाढ़ग्रस्त हो जाता है। झील का कुल संगणित क्षेत्रफल 9.60 वर्ग किलोमीटर है। आजकल झील के तल का प्रयोग मुख्यतया खेती की जमीन के रूप में किया जा रहा है। महदहा के 10 किलोमीटर की परिधि का अवशोषण क्षेत्र एक गतिशील अर्थव्यवस्था के द्वारा शोषित किये जाने वाले स्थल की सीमा निर्धारित करता है। यह क्षेत्र दमदमा को आच्छादित कर लेता है, जो महदहा से 5 किलोमीटर उत्तर–पश्चिम स्थित है। जैसा कि देखा जा सकता है कि अधिगम्य क्षेत्र पूर्व में झील द्वारा यथेष्ट रूप से प्रभावित है ।

मध्यपाषाणिक मानव ने अपने पूर्वपाषाणिक पूर्वजों के ज्ञान का उपयोग करके लगभग 9000 वर्ष पहले भूमध्य सागर के पूर्व और सिंधु घाटी के पश्चिम में कृषि और पशुपालन प्रक्रिया का प्रारम्भ किया। प्राचीन विश्व के अधिकांश भागों में नवपाषाणिक मानव ने कृषि के प्रसार में अधिक योगदान दिया (मिश्र 2002)।

तृतीय अध्याय

नवपाषाण युगीन संस्कृतिः पशु पालन एवं कृषि तकनीक का उद्‌भव एवं विकास

नवपाषाण काल की अर्थव्यवस्था का आधारभूत तत्व कृषि से खाद्य–उत्पादन तथा पशुओं को पालतू बनाने की जानकारी है। कृषि तकनीक तथा पशुओं के उपयोग की जानकारी से स्थायी ग्राम्य जीवन का विकास हुआ। मानव–इतिहास में इस स्तर का विशिष्ट महत्व है। इसी स्तर पर मनुष्य ने सर्वप्रथम कृषि करना सीखा। इस नयी कृषि जीवन–पद्धति का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम था– विकसित अर्थव्यवस्था का विकास और जनसंख्या में पर्याप्त वृद्धि। नूतनकाल में 'कृषि–क्रांति' का सबसे महत्वपूर्ण एवं दुरूगामी परिणाम यह हुआ कि इससे सीमित क्षेत्र के दोहन से ही अधिक लोगों के लिए अधिक खाद्य सामग्री उपलब्ध हुई। स्थायी आवास से अधिक संश्लिष्ट समाज अस्तित्व में आये और अंततः नगरीय जीवन विकसित हुआ। लेकिन उल्लेखनीय है कि जंगली खाद्यों के भोजन में घट जाने के कारण और कृषि उत्पादित सीमित प्रकार के खाद्यान्नों के कारण आहार की पौष्टिकता में कमी आयी और परिणामतः मानव स्वास्थ्य में गिरावट आयी (हैरिस 1996: IX, लुकास और पाल 1993)

उल्लेखनीय है कि मध्य गंगा घाटी के पश्चिमी भाग में जहाँ से मध्य पाषाण संस्कृति के आवास और अन्य परम्पराओं के महत्वपूर्ण प्रमाण मिले हैं, उस क्षेत्र में प्राथमिक संदर्भ से नवपाषाणिक स्थलों का अभाव है । यद्यपि कुछ स्थलों से नवपाषाणिक उपकरण इस क्षेत्र में भी प्रतिवेदित हैं (शर्मा 1949–50: 4–25)। इसलिए इस क्षेत्र की मध्यपाषाणिक आखेट और संग्रहपरक संस्कृति स्थायी और उत्पादनपरक संस्कृति के रूप में विकसित हुई, इसके प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं; लेकिन मध्य गंगा के मैदान का मध्यवर्ती और पूर्वी भाग नवपाषाणिक संस्कृति के

कई महत्वपूर्ण स्थलों के लिए उल्लेखनीय हैं। मध्यवर्ती और पूर्वी क्षेत्र में मध्य पाषाणिक संस्कृति के प्रमाण नहीं मिलते हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि मध्य गंगा घाटी की नवपाषाणिक संस्कृति का स्थानीय विकास सम्भवतः नहीं हुआ था। संभवतः मध्य पाषाण कालीन संस्कृति की भाँति यह संस्कृति भी विन्ध्य क्षेत्र से ही मध्य गंगा घाटी में प्रसरित, पुष्पित एवं पल्लवित हुई।

मध्य गंगाघाटी के मैदानी क्षेत्र के उत्खनित स्थलों– चिरांद, चेचर–कुतुबपुर, सेनुवार, ताराडीह, सोहगौरा, इमलीडीह, लहुरादेवा आदि स्थलों (रेखाचित्र 19) से नवपाषाण संस्कृति पर प्रकाश डालने वाले प्रमाण उपलब्ध हुए हैं और बहुत सम्भव है कि उस क्षेत्र में सर्वेक्षण से कुछ अन्य पुरास्थल भी प्रकाश में आयें जो अभी भी जलोढ़ मिट्टी के नीचे दबे हों अथवा परवर्ती आवासीय जमाव के नीचे पड़े हों। ऐसा प्रतीत होता है कि मैदानी क्षेत्र के स्थलों पर नवपाषाणकालीन मानव के आगमन से पूर्व घने जंगल विद्यमान थे, जो बाद में कृषि के लिए अथवा चारागाहों के लिए साफ किये गये। जंगलों को साफ करने के लिए संभवतः आग का प्रयोग भी किया गया था।

नवपाषाणिक संस्कृति के उत्खनित स्थलों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:

चिरांद

चिरांद (अक्षांश 25^0, 48′ उ0, देशान्तर 84^0 50′ पू0) बिहार के सारन जिले में गंगा के बायें तट पर स्थित है। सारन जिले में स्थित होने के कारण 'हिरण' अर्थ के आधार पर कहा जा सकता है कि यह भू–भाग घने जंगलों से आवृत था। जंगली पशुओं में हिरणों की संख्या अपेक्षया यहाँ अधिक थी। इस स्थल पर सांस्कृतिक जमाव मैदानी क्षेत्र के अन्य स्थलों की भांति बहुसांस्कृतिक है। यहाँ नवपाषाण काल से लेकर पाल वंश के काल तक का सांस्कृतिक जमाव मिलता है। इस स्थल का उत्खनन बिहार राज्य पुरातत्व विभाग के राज्य निदेशालय द्वारा सन् 1963 से 1968–69 ई0 तक लगातार किया गया। सन् 1969–70 और 1970–71 ई0 में इस स्थल का पुनः उत्खनन हुआ, जिसमें पूर्व धातुयुगीन नवपाषाण संस्कृति
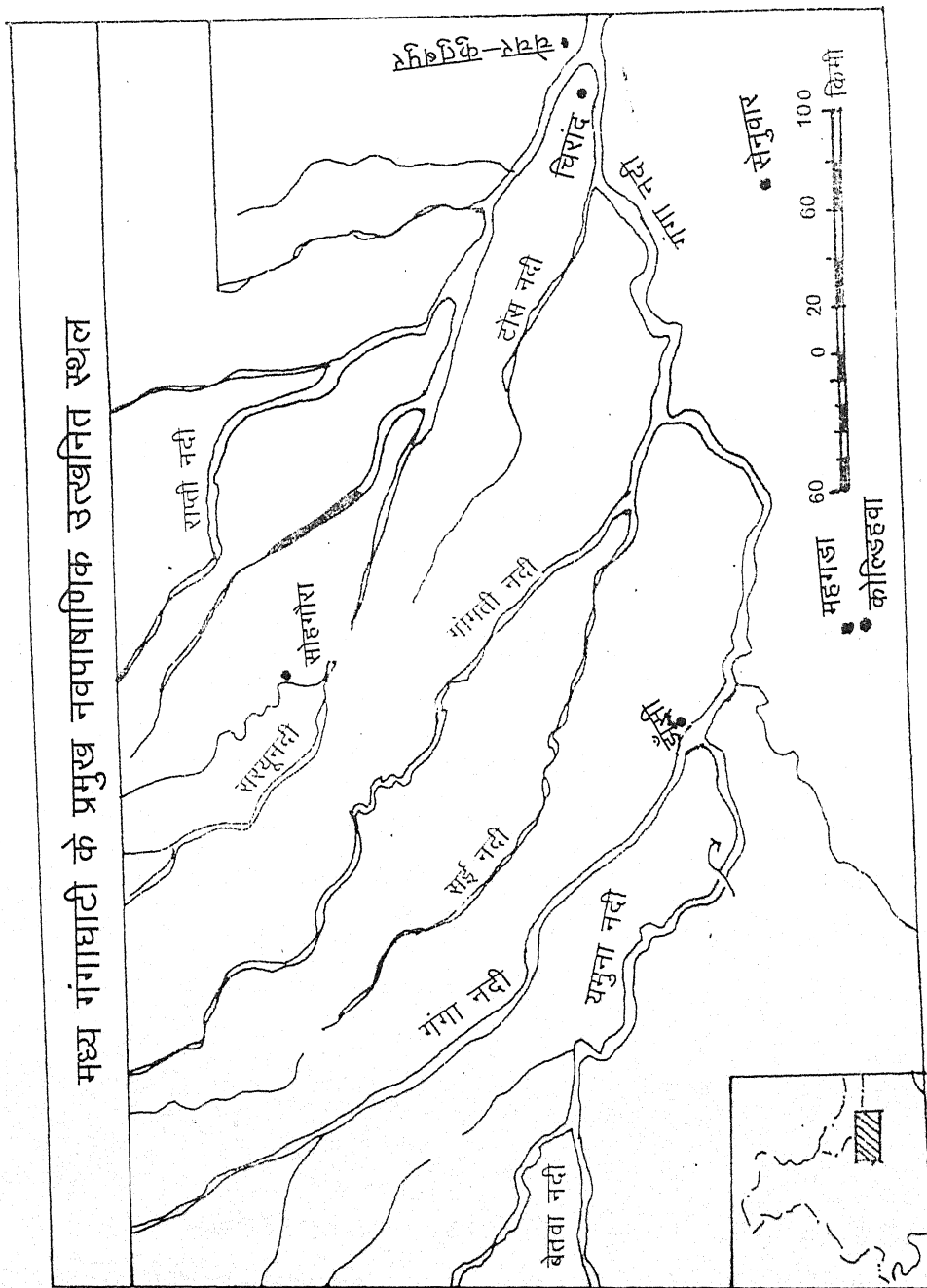
रेखाचित्र 19: मध्य गंगाघाटी के प्रमुख नवपाषाणिक उत्खनित स्थल

का आवासीय जमाव प्रकाश में आया। यहाँ के दो ढाँचे आर0 डी0 एक्स0 साइड (15 X10 मीटर) और आर0 डी0 बी0 (10 X 10 मीटर) का उत्खनन टीले के पूर्वी और पश्चिमी भाग पर किये गये जिसमें लगभग 4.5 मीटर मोटा नवपाषाणिक आवासीय जमाव प्रकाश में आया। इस जमाव के 6 स्तर निर्धारित किये गये हैं, जिसमें नवपाषाणिक पुरासामग्रियाँ, संरचनाएँ और अधिवास के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। यद्यपि चिरांद में परवर्ती संस्कृतियों के मोटे जमाव के कारण नव पाषाणिक धरातल के विस्तृत क्षेत्र में उत्खनन नहीं किया जा सका लेकिन इस धरातल से झोपड़ियों के फर्श के अवशेष और मिट्टी के बर्तन, लघु पाषाण उपकरण, पाषाण कुल्हाड़ी आदि उपकरण, मृण्मूर्तियाँ और उपरत्नों पर मनके आदि सामग्रियाँ प्रकाश में आयी हैं (नारायण 1970: 1—35)।

चिरांद के नवपाषाणिक धरातल का क्षैतिज उत्खनन नहीं किया गया है। इसलिए उनके गृह निर्माण और आवासीय अवशेषों पर अधिक प्रकाश नहीं पड़ा है। यद्यपि गोलाकार या अर्द्धगोलाकार झोपड़ियाँ के प्रमाण उत्खनन से अवश्य उपलब्ध हुए हैं। जली मिट्टी के ऐसे टुकड़े जिन पर बाँस और लकड़ी के निशान हैं, यह बताते हैं कि इस संस्कृति के लोग झोपड़ियों की दीवाल लकड़ी और बाँस से बनाकर उन पर मिट्टी का मोटा लेप लगाते थे।

चिरांद से क्वार्टजाइट, बेसाल्ट या ग्रेनाइट पत्थरों पर बने हुए सिल लोढ़े, हथगोले, हथौड़े और कुल्हाड़ियाँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ की कुल्हाड़ियाँ लम्बाई और चौड़ाई लगभग बराबर होने के कारण गोलाकार मानी गयी हैं । इनके निर्माण के लिए सबसे पहले फलक निकाले गये हैं और फिर इन्हें गढ़कर एवं रगड़कर अत्यन्त चिकना और पालिशदार बनाया गया है । कुछ कुल्हाड़ियों का अनुभाग आयताकार हैं । चिरांद के समीप राजगीर की पहाड़ियाँ हैं, लेकिन प्रतीत होता है कि नवपाषाण कालीन मानव पत्थर के पिण्ड समीपवर्ती सोन नदी के तल से एकत्र करता था (राय चौधरी 1971: 17)।

चल्सेडनी, चर्ट, अगेट आदि महीन कण वाले पत्थरों पर बने समानान्तर बाहु वाले ब्लेड, ,खुरचनी, बाणाग्र, खचित ब्लेड, नोंक, दन्तुरित ब्लेड, अर्द्धचन्द्र,

छिद्रक आदि लघुपाषाण उपकरण भी यहाँ से प्राप्त हुए हैं (छायाचित्र 24)। कुछ ज्यामितिक उपकरण भी लघु पाषाण उपकरणों में सम्मिलित हैं । घिसकर पालिश किये गये गोलाकार नवपाषाणिक कुल्हाड़ियों की संख्या चिरांद में कम है लेकिन हड्डियों और मृगश्रृंगों के बने हुए विभिन्न प्रकार के उपकरण यहाँ से प्राप्त हुए हैं । इन उपकरणों में सुई, नोंक, छिद्रक, पिन, पुच्छल एवं छिद्र युक्त बाणाग्र, खुरचनी, छेनी, हथौड़े, कुल्हाडियाँ आदि सम्मिलित हैं (छायाचित्र 25)।

नवपाषाणिक चिरांद की पात्र परम्पराओं के अध्ययन से भी इस संस्कृति के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। लाल, भूरे, काले एवं लाल पात्र परम्परा के मिट्टी के बर्तन यहाँ से प्राप्त हुए हैं। कुछ बर्तनों की ऊपरी सतह को चिकने पत्थरों से घोंटकर चिकना और चमकीला बनाया गया है। ये पात्र मुख्यतः हस्त निर्मित हैं, लेकिन कुछ ऐसे पात्र भी हैं, जिन्हें साधारण चाक पर धीरे–धीरे घुमाकर बनाया गया है। कुछ बर्तनों को गीली मिट्टी लगाकर ऊपरी सतह पर खुरदुरा भी किया गया है। बर्तनों को आसंजन विधि से अलंकृत करने अथवा पका लेने के बाद उन्हें खरोंचकर अलंकृत करने का प्रमाण भी प्राप्त होता है। एक पात्र पर सोलह तीलियों वाले धुरीयुक्त चक्र का आरेखण उल्लेखनीय है। भूरे रंग के बर्तनों पर पका लेने के बाद लाल गेरू से चित्र बनाये गये हैं। चित्रण अभिप्रायों में एक दूसरे को आर–पार काटती रेखाएँ, संकेन्द्रिक वृत्त और लहरदार रेखाएं सम्मिलित हैं। एक पात्र खण्ड पर बिन्दुओं से त्रिशूल का चित्र बनाया गया है। लाल गेरू से चिन्हित ये अभिप्राय कभी–कभी लाल तथा काले–और–लाल पात्र परम्परा के बर्तनों पर भी प्राप्त होते हैं। चिरांद से एक पात्र खण्ड ऐसा भी प्राप्त हुआ है जिस पर चटाई की छाप है। रस्सी की छाप से युक्त (cord impressed ware) पात्र खण्ड भी यहाँ से प्राप्त हुये हैं। बर्तन आकारों में चौड़े अथवा संकरे मुँह वाले गोलाकार, घड़े टोंटीदार घड़े, आधार वाले कटोरे, छिद्रयुक्त होंठदार अथवा टोंटीदार कटोरे और लम्बे तथा छोटे नलीदार टोंटी के बर्तन सम्मिलित हैं ।

प्रमुख पात्र प्रकारों में बड़े मुँह और संकरे गले के घड़े, टोंटीदार घड़े, होठयुक्त कटोर, छिद्र युक्त और पैर युक्त कटोर, साधार कटोरे, छोटे आकार के बर्तन, चम्मच, करछुल आदि सम्मिलित हैं । बर्तनों को पका लेने के बाद इन पर

लघु पाषाण
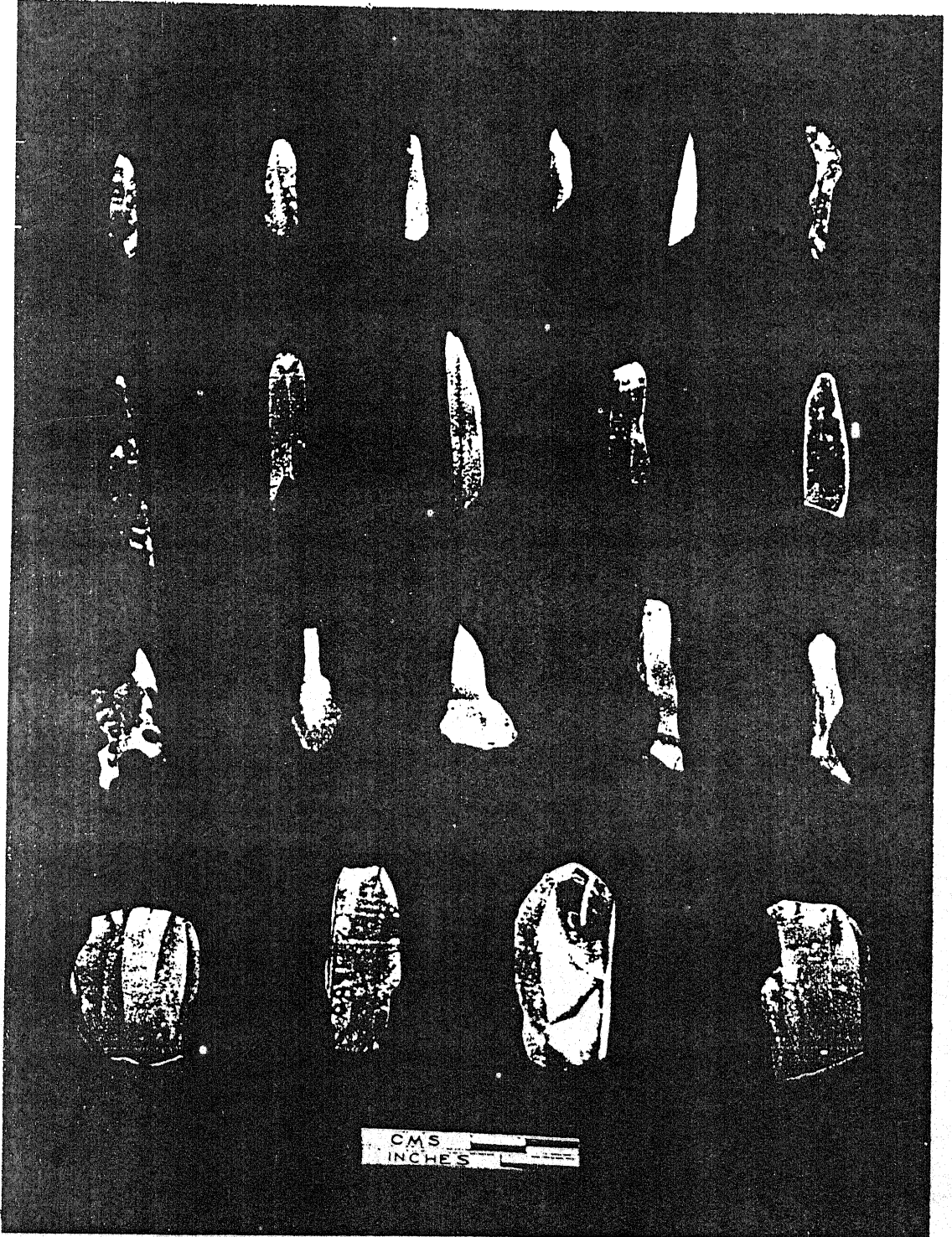
छायाचित्र 2.4. चिरांद: ~~अस्थि निर्मित~~ उपकरण
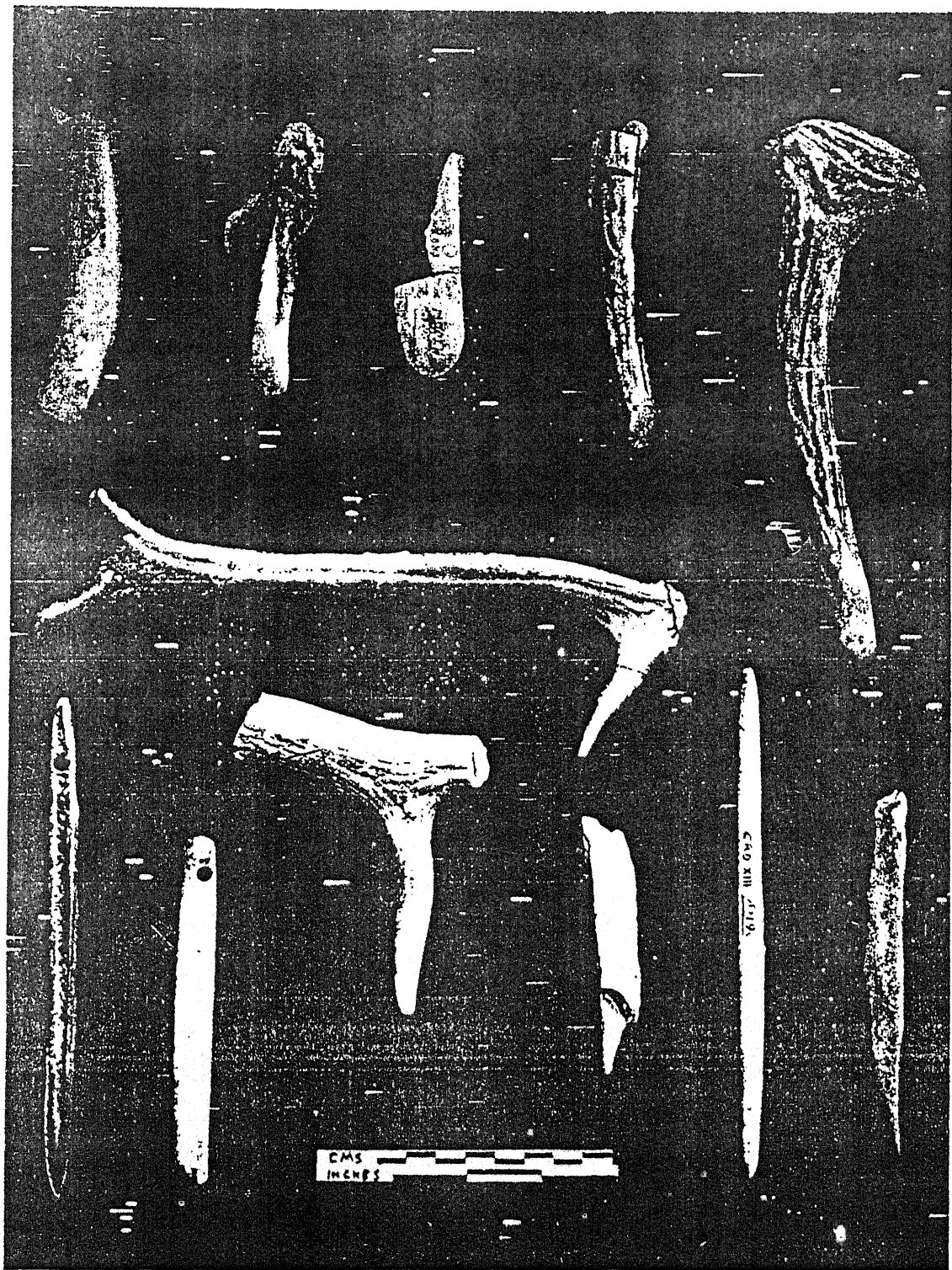
छायाचित्र 25: चिरांद: अस्थि निर्मित उपकरण
(संकालिया 1974 के अनुसार)

रंग से अथवा रेखाएं उत्कीर्ण करके चित्र बनाए गये हैं । चित्रित अभिप्रायों में अर्द्धवृत्त, लहरदार रेखाएं आदि सम्मिलित हैं । टोंटीयुक्त बर्तनों का प्रयोग संभवतः पानी और अन्य द्रव पदार्थों के लिए किया जाता था, जबकि संकरे मुँह वाले बड़े बर्तन अनाजों के संग्रह के लिए प्रयुक्त किये जाते रहे होंगें । चिरांद के उत्खनन में प्लेट या तस्तरी जैसे बर्तनों की संख्या बहुत कम है । जबकि कटोरे, हांड़ी और टोंटीदार बर्तन अधिक हैं । इस आधार पर यह अनुमान किया गया है कि इस क्षेत्र का नवपाषाणकालीन संस्कृति का मानव अपने भोजन में तरल पदार्थो का अधिक प्रयोग करता था (प्रसाद 1997: 161–162)।

चिरांद के नवपाषाणकालीन लोंगों के कलात्मक अभिरूचि को अभिव्यक्त करने वाले उपादानों में उपरत्नों पर बने हुए सुन्दर मनके, हड्डी के कुण्डल और झुमके, मिट्टी तथा हड्डी की चूड़ियाँ, कूबड़ वाले बैल, चिड़ियाँ तथा नाग की मृण्मूर्तियों का उल्लेख किया जा सकता है ।

हड्डी के बने उपकरणों और मनकों से भी मध्यगंगा घाटी में नवपाषाणकालीन मानव के विशिष्ट उद्योगों का पता चलता है । क्योंकि गंगा के मैदान में उपकरण निर्माण के लिए पत्थरों की कमी थी, इसलिए बड़े पैमाने पर पशुओं की हड्डियों और हिरन की सीगों पर उपकरणों का निर्माण किया गया । जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि हड्डी पर बने उपकरणों में स्क्रेपर, छिद्रक, छेनी, हथौड़ा, सुई, प्वाइंट, भालाग्र और बाणाग्र आदि उपकरण सम्मिलित हैं । बैल की एक कंधे की हड्डी का प्रयोग बेलचे के रूप में किया गया है । इतने प्रचुर मात्रा में हड्डी के उपकरणों का प्रयोग भारतीय नवपाषाणिक संदर्भ में सिर्फ बुर्जहोम (का 1979: 219–228) में दिखाई पड़ता है । लेकिन दोनों क्षेत्रों में उपकरणों के प्रकार अलग–अलग हैं। चिरांद के नवपाषाणिक मानव ने लटकन, चूडियाँ, चर्खी की तरह के आकार का और कंघी जैसे आभूषण हड्डी और कछुए की सीग के बने हुए प्राप्त हुए हैं। चैल्सेडिनी, अगेट, जैस्पर, मारबुल, स्टेएटाइट और फयांस के बने हुए विभिन्न प्रकार के मनके भी उपलब्ध हुए हैं । विभिन्न प्रकार की पुरासामग्रियों से चिरांद के नव–पाषाणकालिक मानव के उत्कृष्ट शिल्प पर उल्लेखनीय प्रकाश पड़ा। प्राकृतिक सामग्रियों पर उनकी कला निर्भर थी। विभिन्न प्रकार के वस्तुओं के

निर्माण में मिट्टी का ही बड़े पैमाने पर प्रयोग किया गया । सहज उपलब्धता और मैदानी क्षेत्र की मिट्टी के लचीलेपन के कारण इसे विविध सामग्रियों के निर्माण के लिए प्रयुक्त किया गया। मिट्टी की बनी हुई कूबड़ युक्त बैल की मूर्तियाँ, पक्षी, मनके, हथगोले, गोले और अन्य सामग्रियाँ उपलब्ध हुई हैं । एक छिद्रयुक्त बेलनाकार मिट्टी की वस्तु जिस पर धुआँ लगा हुआ है उसकी पहचान उत्खनन कर्त्ता ने स्मोकिंग पाइप के रूप में किया है ।

मैदानी क्षेत्र का नवपाषाणिक मानव नदियों के तट पर नदी की बाढ़ सीमा से ऊपर अपने आवासों का निर्माण करता था । चिरांद में उत्खनन उर्ध्वाधर हुआ, जिससे सीमित क्षेत्र में ही उत्खनन कार्य किया गया । इसलिए आवास का पूरा प्रमाण उपलब्ध नहीं हो सका । सिर्फ कुछ गोलाकार दो मीटर व्यास वाले एक दूसरे के पास स्थित झोपड़ियों के फर्श प्राप्त हुए हैं। संभवतः इन गोलाकार झोपड़ियों की छत कोंणाकार थी, जिसमें दलदली भूमि में प्राप्त होने वाले नरकुल का प्रयोग किया गया था । ऐसा लगता है कि इस प्रकार की संरचना में झोपड़ियों के फर्श के बीच में एक स्तम्भ लगाया जाता था । इस प्रकार की झोपड़ियाँ अभी भी समीपवर्ती गाँवों में देखी जा सकती है ।

बी0 एस0 वर्मा के अनुसार चिरांद में कुछ फर्श के नीचे आवास बनाने के प्रमाण प्राप्त हुए हैं । गोलाकार झोपड़ियों के फ़र्श पर एक–दूसरे के समीप स्थित खुले मुँह वाले कई चूल्हे भी प्राप्त हुए हैं । ऐसा लगता है कि चिरांद में बार–बार बाढ़ और अग्निकांड से इन आवासों को क्षति पहुँची। उत्खनित खन्तियों के अनुभाग में बार–बार आई बाढ़ के प्रमाण मिलते हैं। बाँस–बल्ली के निशान से युक्त अत्यधिक मात्रा में जली मिट्टी के टुकड़े अग्निकांड के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त कोयले और राख से युक्त काली परतें प्राप्त हुई हैं । लेकिन 3.5 मीटर मोटा आवासीय जमाव यह प्रदर्शित करता है कि बार–बार के बाढ़ और अग्नि की विभीषिका के बावजूद नवपाषाणिक मानव ने इस स्थल का परित्याग नहीं किया अपितु पूर्ववर्ती जमाव के ऊपर फिर से अपने अधिवास निर्मित करके रहने लगे। सम्भवतः उर्वर भूमि और प्राकृतिक सम्पदा की सम्पन्नता के कारण यह पुरास्थल निरन्तर आबाद रहा।

चिरांद की नवपाषाणिक अर्थव्यवस्था कृषि पर निर्भर थी। उत्तर भारत में नवपाषाणिक संस्कृति में कृषि द्वारा खाद्यान्न उत्पादन के प्राचीनतम प्रमाण यहाँ के उत्खनन से प्राप्त हुए हैं। खाद्यान्नों में चावल के दाने, भूसी, गेहूँ, जौ, मटर, उर्द के अवशेष प्राप्त हुए हैं। जंगली धान की एक प्रजाति ओरिजा पेरेनिष अभी भी उड़ीसा में पायी जाती है। ऐसा माना जाता है कि गंगा घाटी और भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरवर्ती भाग में धान की खेती का प्रारम्भ हुआ था। संभवतः नवपाषाणिक संस्कृति के समय जंगली अवस्था के धान के संग्रह से धान की खेती का प्रारम्भ हुआ । प्रतीत होता है कि धान की खेती का प्रारम्भ चिरांद, कोलडिहवा, तथा महगड़ा में हुआ, जहाँ से जंगली और पालतू दोनों अवस्था का धान प्राप्त हुआ है। गंगाघाटी में लहुरादेवा के उत्खनन से भी धान की खेती के प्राचीन प्रमाण उपलब्ध हुए हैं (तिवारी और अन्य 2001–2002: 54–59)। अन्य खाद्यान्नों के उद्भव के बारे निश्चित प्रमाण नहीं हैं। मूँग का आदि क्षेत्र भारत को माना जाता है। उत्तर–प्रदेश के तराई क्षेत्र में जंगली प्रजाति की एक मूँग उत्पन्न होती है, जो संभवतः पश्चिमी एशिया से आयी थी । इसके प्रमाण उत्तर भारत और पश्चिमी भारत से मिले हैं। हड़प्पन स्थलों के अतिरिक्त जौ अतंरजीखेड़ा से प्राप्त हुआ है। पश्चिमी एशिया में जौ और गेहूँ साथ–साथ पैदा किये जाते थे। ट्रैटिकम स्फैरोकौकम नामक गेहूँ की प्रजाति के प्रमाण मोहनजोदाड़ो के उत्खनन से उपलब्ध हुए हैं। संभवतः यह प्रजाति भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर–पश्चिमी भाग में उद्भूत हुई थी। भारत में इस गेहूँ की खेती बड़े पैमाने पर की जाती थी, फिर भी गेहूँ, जौ और मूँग जो चिरांद के उत्खनन में प्राप्त हुए हैं उनके उद्भव के बारे में निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता (विष्णुमित्रे 1972: 18–21)। ऐसा लगता है कि चिरांद के नवपाषाणिक मानव को कृषि के ऋतुचक्र के बारे में पूरी जानकारी थी। क्योंकि धान जैसी खरीफ की फसलें और गेहूँ, जौ, मूँग जैसी रबी के फसलों के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। संभवतः बरसात के तुरन्त बाद नम भूमि में बीज बो दिये जाते थे और लघु पाषाणोपकरणों से निर्मित हंसिये जैसे उपकरणों से फसल पक जाने पर काट ली जाती थी। फिर भी संभवतः कृषि बहुत प्राथमिक प्रकार की थी। गदाशीर्ष का प्रयोग जमीन खोदने के लिए लकड़ी में किया जाता रहा होगा।

चिरांद से उपलब्ध अनाजों से ऐसा प्रतीत होता है कि नवपाषाणिक मानव जंगल की सफाई से लेकर फसल काटने तक के कृषि सम्बन्धी विभिन्न क्रिया–कलापों से सुपरिचित थे। सर्वप्रथम नवपाषाणिक मानव ने कृषि के लिए जंगली भूमि को साफ किया होगा। संभवतः यह कार्य सामूहिक रूप से किया जाता रहा होगा। वृक्षों और पौधों को काटने का एक मात्र उपयुक्त उपकरण प्रस्तर की कुल्हाड़ी थी। उल्लेखनीय है कि चिरांद के उत्खनन से केवल चार कुल्हाड़ियाँ उपलब्ध हुई थीं जिससे प्रतीत होता है कि जंगल की सफाई के लिए बड़े पैमाने पर उनका प्रयोग नहीं किया गया था। संभवतः इसके लिये उन्होंने आग का प्रयोग किया था। आग के प्रयोग से सभी वनस्पतियाँ जलकर राख हो गई होंगी जो मिट्टी में मिलकर उसकी उर्वरा शक्ति में वृद्धि की होंगी।

पर्वतीय क्षेत्रों की आदिम जातियाँ इस तरह के कार्य झूम कृषि में करते हैं। कृषि में दूसरे चरण में जमीन की जुताई की जाती थी जिसके लिये लकड़ी से निर्मित प्रारम्भिक/आदिम प्रकार के खोदने वाले उपकरणों का प्रयोग किया जाता था, यद्यपि उत्खननों से लकड़ी से निर्मित इस प्रकार के उपकरण उपलब्ध नहीं हैं। यहाँ की जलवायु इस तरह के अवशेषों को सुरक्षित नहीं बचा सकी। खोदने वाली लकड़ी के निशान जैसे प्रमाण चिरांद के उत्खनन से नहीं मिले हैं। तीसरे चरण में बीज बोया जाता था। बोने का कार्य मानसून की वर्षा से प्रारम्भ होता था । इसके उपरान्त जब तक फसल पक नहीं जाती थी तब तक उसकी देखभाल की जाती थी और अन्त में फसल काटने का कार्य होता था। फसल के काटने में भी तकनीकी प्रक्रिया और उपकरणों की आवश्यकता थी। ऐसा संकेत किया गया है कि लघु पाषाण उपकरणों को संग्रथित करके काटने वाले हंसिये जैसे उपकरण निर्मित किये गये थे। ब्लेड ज़ैसे उपकरणों का प्रयोग हंसिये के रूप में किया जाता था। यह भी संभव है कि पकी हुई फसल को जड़ से उखाड़ लिया जाता था और फसल को पीटकर दानें अलग कर लिये जाते रहे हों। इसके उपरान्त सिल–लोढ़े से अनाज के दाने अलग पीसे रहे होंगे।

गंगा के मैदान में नवपाषणिक काल के कृषि के साथ–साथ पशुपालन के भी प्रमाण प्राप्त हुए हैं। पशुपालन कृषि का अभिन्न अंग है। प्रचुर संख्या में

उत्खनन से हड्डियाँ प्राप्त हुई है। पशुओं में बकरी, सुअर, भैंसा, गैंडा, हिरण, बैल आदि की पहचान की गयी हैं। सबसे अधिक संख्या में हिरण की हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं। तदुपरान्त भैंसे, बैल, सुअर, और बकरी की हड्डियाँ आती हैं। पालतू पशुओं में कूबड़युक्त बैल, भैंस, भेड़, बकरी, सुअर और कुत्ता सम्मिलित हैं। जंगली पशुओं के अंतर्गत गैंडा, हिरण, चीतल, आदि सम्मिलित हैं। क्योंकि अधिकांश हड्डियों पर काटने के निशान हैं, इससे लगता है कि इन पशुओं को माँस के लिए काटा गया होगा (नाथ और विश्वास 1980: 115–124)।

नवपाषाणिक अर्थव्यवस्था में जलचरों का भी महत्वपूर्ण स्थान था। चिरांद के उत्खनन से मछली, सीपी, घोंघे आदि की हड्डियाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हुई हैं। झीलों और नदियों से ये मछलियाँ पकड़ी जाती थीं। उत्खनन में पक्षियों की हड्डियाँ भी मिली हैं। जंगली क्षेत्रों से खाने योग्य वनस्पतियाँ भी एकत्र की जाती थी। इस प्रकार विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध संतुलित आहार नवपाषाणिक लोगों का अभीष्ट था।

उत्खनन से उपलब्ध उपकरणों में कोई भी उपकरण ऐसा नहीं है, जिसे हाथी, गैड़े, या भैंसे जैसे बड़े जानवरों के शिकार के लिए प्रयुक्त किया जा सके। संभवतः इन पशुओं का शिकार अन्य विधियों जैसे गहरे पानी आदि में पशुओं को धकेल कर किया जाता रहा होगा अथवा गड्ढे खोदकर उनके ऊपर घास–फूस डालकर उसमें उन्हें फँसा दिया जाता रहा होगा। छोटे पशुओं और पक्षियों के शिकार के लिए हड्डियों और पत्थरों के बाणाग्रों का प्रयोग किया जाता था। पकी मिट्टी के गोले, हथगोले के रूप में प्रयुक्त किये जाते थे। बड़ी मात्रा में मछलियों की हड्डियाँ उपलब्ध हुई हैं, लेकिन न तो हार्पून और न ही मछली पकड़ने की कटिया ही उपलब्ध हुई हैं। चिरांद के उत्खननकर्त्ता के अनुसार सूजे जैसे हड्डी के उपकरण मछली के पकड़ने के लिए जाल बनाने में प्रयुक्त होते थे और पकी मिट्टी की गोलियों का प्रयोग जाल को पानी में डुबोने के लिये किया जाता था। मछलियों को पकड़ने के लिए विभिन्न प्रकार के जालों या धनुष–बाण का प्रयोग किया जाता रहा होगा। जैसा कि इस समय भी कुछ आदिम जनजातियाँ इस प्रकार के तरीकों का प्रयोग करती हैं । कुछ आदिम जातियों द्वारा प्रचलित तरीकों की तरह

मछिलयों को मारने के लिए पानी में जहरीले तत्व मिलाये जाते रहे होंगे (नागर 1997: 210–217)।

यद्यपि मध्य गंगाघाटी में विभिन्न पुरास्थलों के उत्खननों से नवपाषाणिक धरातल बहुत सीमित क्षेत्र में ही प्रकाश में आ सका है । चिरांद के उत्खनन से अठारह गोलाकार आवास का प्रमाण मिलता है । उल्लेखनीय है कि गर्त आवास परम्परा उत्तर भारत की कश्मीर घाटी की नव पाषाणिक संस्कृति में अधिक प्रचलित थी। जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है कि इस संस्कृति के लोगों को जलवायु संबधी परिस्थितियों, परिवर्तनों एवं ऋतु चक्र का भी ज्ञान था। अब वे अपने पूर्वजों के संचरणशील जीवन का परित्याग कर स्थायी रूप से एक स्थान पर आवास बनाने लगे। चिरांद जैसे उपयुक्त स्थल पर बाढ़ और अग्नि जैसे प्राकृतिक आपदाओं के बावजूद एक ही स्थान पर लम्बे समय तक रहते रहे। पाषाण उद्योग के स्थान पर हड्डी के उपकरण और विभिन्न प्रकार की पात्र परम्पराओं का विकास हुआ। मनके, मृण्मूर्तियों, आभूषणों तथा मिट्टी के बर्तनों पर चित्र के रूप में कला का विकास उल्लेखनीय है। इसके प्रमाण चिरांद के अतिरिक्त उस क्षेत्र के अन्य नव पाषाणिक पुरास्थलों चेचर–कुतुबपुर, ताराडीह, सेनुआर, इमलीडीह, सोहगौरा और लहुरादेवा जैसे स्थलों से भी प्राप्त हुए हैं।

उपलब्ध कार्बन तिथियों (तालिका संख्या 6) के आलोक में चिरांद की नवपाषाण संस्कृति विन्ध्य क्षेत्र की संस्कृति के काफी बाद की प्रमाणित होती है। चिरांद के नवपाषाणिक धरातल से कुल 9 कार्बन तिथियाँ प्राप्त हुई हैं जिनमें से तीन तिथियों 1580±110, 1675±140 और 1755±155 ई0 पू0 को उपयुक्त माना गया है (मंडल 1972: 106–116)। नवपाषाणिक और ताम्रपाषाणिक धरातलों के संधि स्थल से 1050±190 ई0 पू0 की एक तिथि प्राप्त हुई है । इस आधार पर चिरांद की नवपाषाणिक संस्कृति 1800 से 1200 ई0 पू0 के मध्य रखा गया है (अग्रवाल एवं कुसुमगर 1974: 71)। चूँकि निचले धरातल से कोई तिथि नहीं मिली है इसलिए इस संस्कृति का प्रारम्भ 2000 ई0 पू0 या इससे भी पूर्व का समय देने की संस्तुति की गयी है। यहाँ के अवसादन दर की गणना के आधार पर इस संस्कृति

का प्रारम्भ और भी पहले 4000 से 3000 ई0 पू0 तक प्रस्तावित किया गया है (विष्णुमित्रे 1972)।

तालिका 6: गांगेय मैदान और विन्ध्य क्षेत्र से प्राप्त नवपाषाणिक कार्बन तिथियाँ

पुरास्थल का नाम	प्रयोगशाला संख्या	5730 ईसा पूर्व	अंशसोधित तिथि
चिरांद	टी0एफ0 1035 टी0एफ0 1127 टी0एफ0 1025 टी0एफ0 1033 टी0एफ0 1034 टी0एफ0 1030 टी0एफ0 1031 टी0एफ0 1032	1270±105 ईसापूर्व 1375±100 ईसापूर्व 1515±155 ईसापूर्व 1540±110 ईसापूर्व 1570±115 ईसापूर्व 1580±100 ईसापूर्व 1675±140 ईसापूर्व 1755±155 ईसापूर्व	
कोलडिहवा	पी0आर0एल0 101 पी0आर0एल0 100	4530±185 ईसापूर्व 5440±240 ईसापूर्व	
महगड़ा	पी0आर0एल0 407 पी0आर0एल0 408 पी0आर0एल0 409 बी0एस0 128	1440±100 ईसापूर्व 1330±240 ईसापूर्व 1440±150 ईसापूर्व 3330±100 ईसापूर्व	
बरूडीह	टी0एफ0 1099 टी0एफ0 1100 टी0एफ0 1101 टी0एफ0 1102	750±110ईसापूर्व 1055±210 ईसापूर्व 595±90 ईसापूर्व 660±90 ईसापूर्व	
कुनझुन	बीटा 4879 बीटा 6414 बीटा 6415	3120±70 ईसापूर्व 4010±110 ईसापूर्व 4600±80 ईसापूर्व	
लहुरादेवा	बी0एस0 1951 बी0एस0 1966	5320±90 ईसापूर्व 6290±160 ईसापूर्व	4220 ईसा पूर्व, 4196 ईसा पूर्व, 4161 ईसा पूर्व 5298 ईसा पूर्व

यह स्थल अदवा एवं बेलन नदी के संगम पर स्थित है। इस स्थल की विशेषता यह है कि यहाँ पर जो भी सांस्कृति जमाव प्राप्त हुआ है वह नितान्त ठोस जमाव के रूप में दिखाई पड़ता है। विन्ध्य क्षेत्र के नवपाषाण संस्कृति की पात्र परम्पराएं पूर्णतः हस्तनिर्मित हैं। यहाँ की कुछ पात्र परम्पराओं के बर्तनों की ऊपरी सतह पर रस्सी की छाप अथवा कछुये की हड्डी को पीटकर अलंकृत किया गया है और कुछ के ऊपरी सतह को खुरदुरा बनाया गया है (पाल 1977: 278–279)। कुछ पात्रों की ऊपरी सतह को घोंटकर चिकना और चमकीला किया गया है। पात्रों को घोंटकर चिकना बनाने की प्रथा से दोनों संस्कृतियों का परिचय था। एक ही तरह के घड़े और कटोरे तथा टोंटीदार बर्तन भी दोनों संस्कृतियों से प्राप्त हुए हैं।

दोनों संस्कृतियों के नवपाषाणिक कुल्हाड़ियों में साम्य हैं और एक ही तरह के लघुपाषाण उपकरण भी प्राप्त होते हैं। चिरांद में पात्रों को पकाने के बाद चित्रित भी किया गया है। लेकिन विन्ध्य क्षेत्र में पात्रों को चित्रित करने की परम्परा नहीं थी और न तो उन्हें पकाने के बाद खरोंचकर अलंकृत ही किया गया है। चिरांद में मिलने वाली मृण्मूर्तियाँ भी महगड़ा, कोलडिहवा, टोकवा और पंचोह से नहीं मिली हैं। हड्डियों के बने उपकरणों की संख्या भी विन्ध्य क्षेत्र में अधिक नहीं हैं। रस्सी अथवा कछुयें की हड्डी की छाप वाले मिट्टी के बर्तन जो विन्ध्य क्षेत्र की नवपाषाणिक संस्कृति का चारित्रिक लक्षण है, चिरांद में भी मिलते हैं। उर्पयुक्त विश्लेषण से यही प्रतीत होता है कि चिरांद की नवपाषाण संस्कृति अधिक विकसित है, जबकि विन्ध्य क्षेत्र की यह संस्कृति अभी भी शैशवावस्था में है (मिश्र 1977: 116, पाल 1986)। उपलब्ध कार्बन तिथियों के आलोक में भी चिरांद की नवपाषाण संस्कृति विन्ध्य क्षेत्र की संस्कृति के काफी बाद की प्रमाणित होती है।

नवपाषाणिक स्थल नदियों के तट पर कुछ ऊँचाई पर स्थित हैं। जहाँ पर वार्षिक बाढ़ का पानी नहीं पहुँच पाता था। जल की सुलभता और वार्षिक बाढ़ से समीपवर्ती क्षेत्रों में उपजाऊ भूमि नदियों के तट पर स्थिति के मुख्य कारण हैं। विन्ध्य क्षेत्र के महगड़ा, इन्दारी जैसे स्थल प्राकृतिक भू–तात्विक जमावों की प्राचीर से घिरे हुए प्राप्त हुए हैं, जो संभवतः लू और ठंडी हवाओं से उनकी रक्षा करते थे।

अधिकांश नवपाषाणिक स्थलों के समीप घने जंगल थे जहाँ से जंगली वनस्पतियों को आसानी से प्राप्त किया जा सकता था । यही नहीं इन जंगलों में अनेकानेक पशुओं की उपस्थित शिकार के लिए अत्यन्त उपयुक्त थी। अतः ऐसे स्थलों पर लम्बे समय तक जीवन निर्वाह करने में कोई कठिनाई नहीं थी।

चेचर–कुतुबपुर

यह स्थल (अक्षांश 25^0 35′ उ0 देशान्तर 85^0 20′ पू0) भी बिहार में गंगा के दाहिने तट पर स्थित वैशाली जनपद में है। इस स्थल का उत्खनन भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के आर0 एस0 विष्ट द्वारा सन् 1977–78 ई0 में किया गया था (*इण्डियन आर्कियोलाजीः ए रिव्यू* 1977–78ः 17–18)। यहाँ के उत्खनन से तीन संस्कृतियों के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। जिनमें सबसे प्राचीन प्रथम सांस्कृतिक काल को तीन उपसांस्कृतिक कालों – प्रथम–ए, प्रथम–बी तथा प्रथम–सी में विभाजित किया गया है। प्रथम–ए उपसांस्कृतिक काल में उसी प्रकार की नवपाषाणिक पुरासामग्री उपलब्ध हुई है जैसा कि चिरांद के नवपाषाणिक स्थल से मिली है।

ताराडीह

यह स्थल बिहार के गया जिले में प्रसिद्ध महाबोधि मन्दिर के दक्षिण–पश्चिम दिशा में स्थित एक ऊँचे टीले के रूप में मिलता है। इस स्थल का उत्खनन बिहार राज्य पुरातत्व निदेशालय के डा0 ए0 के0 प्रसाद द्वारा सन् 1981–82 से किया जा रहा है (*इण्डियन आर्कियोलाजीः ए रिव्यू* 1977–78ः 17–18)। यहाँ के उत्खनन से भी बहुसांस्कृतिक जमाव प्राप्त होता है, जो नवपाषाण काल से लेकर ऐतिहासिक काल तक का है। यहाँ नवपाषाणकालीन धरातल का उद्घाटन सन् 1984–85 ई0 के उत्खनन से हुआ। लगभग 60 सेमी0 मोटे नवपाषाणिक (प्रथम सांस्कृतिक काल) के स्तर से हाथ से बने मिट्टी के बर्तन, नवपाषाणिक कुल्हाडियाँ, लघु पाषाण उपकरण, हड्डी के उपकरण, जली मिट्टी की समाग्रियाँ और बाँस–बल्ली के निशान से युक्त जली मिट्टी के टुकड़े आदि मिले हैं। इस स्थल से विभिन्न आकार के चूल्हे भी प्रकाश में आये हैं।

सेनुवार

इस पुरास्थल (अक्षांश 24^0 56′ उ0 देशान्तर 83^0 56′ पू0) को प्रकाश में लाने का श्रेय बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के पुरातत्वविदों को है। बिहार के रोहतास जिले में स्थित यह स्थल कैमूर पहाड़ियों के बहुत निकट है। इस क्षेत्र में सन् 1986–87 ई0 में किये गये पुरातात्विक अन्वेषणों में प्रारम्भिक कृषिपरक संस्कृति के कई स्थल कैमूर के पास मैदानी क्षेत्र से प्रकाश में आये हैं जिनमें से सेनुआर नामक स्थल का उत्खनन बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के बी0 पी0 सिंह ने किया (सिंह 2000–2001)। कुदरा नामक छोटी नदी के तट पर स्थित इस स्थल के उत्खनन से भी नवपाषाणिक सांस्कृतिक जमाव के ऊपर कई संस्कृतियों के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं, जो क्रमशः प्रथम–नवपाषाणिक, द्वितीय– ताम्रपाषाणिक, तृतीय–एन0 बी0 पी0 वेयर तथा चतुर्थ–कुषाण कालीन है। प्रथम नवपाषाणिक सांस्कृतिक काल को प्रथम–ए तथा प्रथम बी, उपकालों में विभाजित किया गया है। प्रथम बी उपकाल के सांस्कृतिक काल से तांबे के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। इसलिए उसे नवपाषाण और ताम्रपाषाणिक संस्कृति के संक्रमण काल से समीकृत किया गया है। गंगा के मैदान और विन्ध्य की पहाड़ियों के मध्यवर्ती क्षेत्र में स्थित इस नवपाषाणिक स्थल से हड्डी पर बने हुए उपकरण और पात्र परम्पराओं के उल्लेखनीय प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। छोटे आकार की पालिशदार कुल्हाड़ियों के लिए यह स्थल उल्लेखनीय है (रेखाचित्र 20)। बर्निश्ड रेड वेयर और बर्निश्छ ग्रे वेयर के पात्रों के ऊपर मोटे लेप के परत है । साधारण रेड वेयर के अतिरिक्त बर्निश्ड ग्रे वेयर के पात्र भी इस तरह के लेप से युक्त हैं । लाल गेरू से बर्तनों के मुँह पर चित्र बनाये गये हैं । जो बर्तनों को पका लेने के बाद चित्रित किये गये थे। खुरदुरे सतह वाले पात्र और रस्सी की छाप वाले पात्र विन्ध्य क्षेत्र के कोलडिहवा और महगडा के पात्रों से साम्य रखते है । लघु पाषाण उपकरणों में सामान्तर भुजाओं वाले पुर्नगठित ब्लेड, भुथड़े ब्लेड, और फलक उल्लेखनीय हैं । अन्य पाषाण उपकरणों में सिल–लोढ़े, चक्र हथौड़ा और हथगोले का उल्लेख किया जा सकता है । पशुओं की हड्डी पर बने हुए बाणाग्र और प्वाइंट जिनके नोंक पर प्रयोग के प्रमाण हैं, प्राप्त हुए हैं । सेनुवार से बड़ी मात्रा में प्राप्त हड्डी
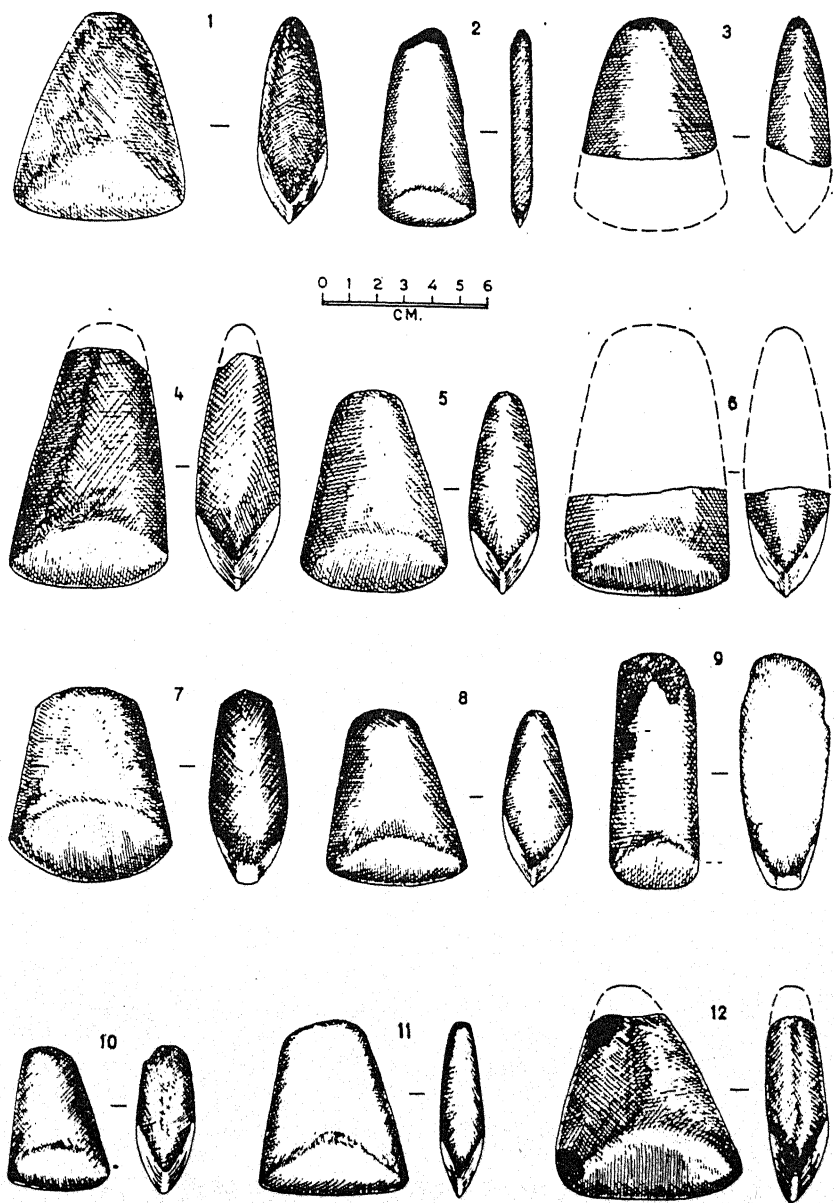
रेखाचित्र 20: सेनुवारः नवपाषाणिक पालिशदार कुल्हाड़ियाँ
(बी0पी0 सिंह 1988—89 के अनुसार)

के उपकरणों की माइक्रोवियर एनालिसिस डा0 गायत्री चतुर्वेदी ने किया है। बर्निश्ड ग्रेवेयर के लिए भी इस स्थल का महत्वपूर्ण स्थान है (रेखाचित्र 21)।

द्वितीय सांस्कृतिक काल ताम्रपाषाणिक है तृतीय काल में लोहे के साथ एन0 बी0 पी0 डब्लू0 संस्कृति मिलती है। उत्खनन से पता चलता है कि यहाँ एन0 बी0 पी0 डब्लू0 संस्कृति का प्रथम चरण ही विद्यमान था। चतुर्थ काल कुषाण काल से सम्बन्धित है। तृतीय एवं चतुर्थ काल में समय का अन्तराल है।

प्रारम्भिक नवपाषाण कालीन प्रथम सांस्कृतिक काल को तिथिक्रम की दृष्टि से 2200 से 2000 ईसा पूर्व के मध्य रखने का आग्रह दिखायी पड़ता है। पशुपालन ओरिजा सतिवा प्रकार के धान की प्रारम्भिक कृषि और संग्रहण इस चरण की अर्थ व्यवस्था को इंगित करते हैं। यहाँ से छोटे आकार के पालिशयुक्त कुल्हाड़ियाँ सिल लोढ़े इत्यादि मिले हैं। हड्डी के निर्मात उपकरण भी मिलते हैं। पशुओं की मृण्मूर्तियाँ भी मिली हैं। मिट्टी और उपरत्नों के मनके सीप के लटकन और हड्डी की चूड़ियाँ भी प्राप्त हुई हैं। पात्र परम्परा के अर्न्तगत मार्जित लाल बर्तन, रस्सी की छाप से युक्त लाल बर्तन प्रमुख पात्र प्रकारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अल्प मात्रा में रुक्ष काले–और–लाल पात्र परम्परा प्राप्त होती हैं।

यहाँ से प्राप्त पुरासामग्रियों का विन्ध्य क्षेत्र के नवपाषाणिक सामग्री तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर प्रमाणित होता है कि प्रारम्भिक सेनुवार की संस्कृति का सम्पर्क बेलन घाटी से था । पात्र परम्परा की समानता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस काल के निम्न धरातल से प्राप्त रेडियो कार्बन तिथि इस संस्कृति को 2200 से 2000 ईसा पूर्व के मध्य रखती है । प्रथम बी उपकाल का तिथिक्रम 2000 से 1950 ईसा पूर्व प्रस्तावित किया गया है (सिंह 2000–2001: 109–118) ।

धान के अतिरिक्त इस चरण में कई फसलों की खेती का प्रचलन हो गया था जिसमें गेहूँ, जौ, ज्वार, मिलेट, लेन्टिल, मटर, रागी, और खेसारी के प्रमाण प्राप्त होते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि उपयुक्त परिवेश की तलाश में कैमूर क्षेत्र
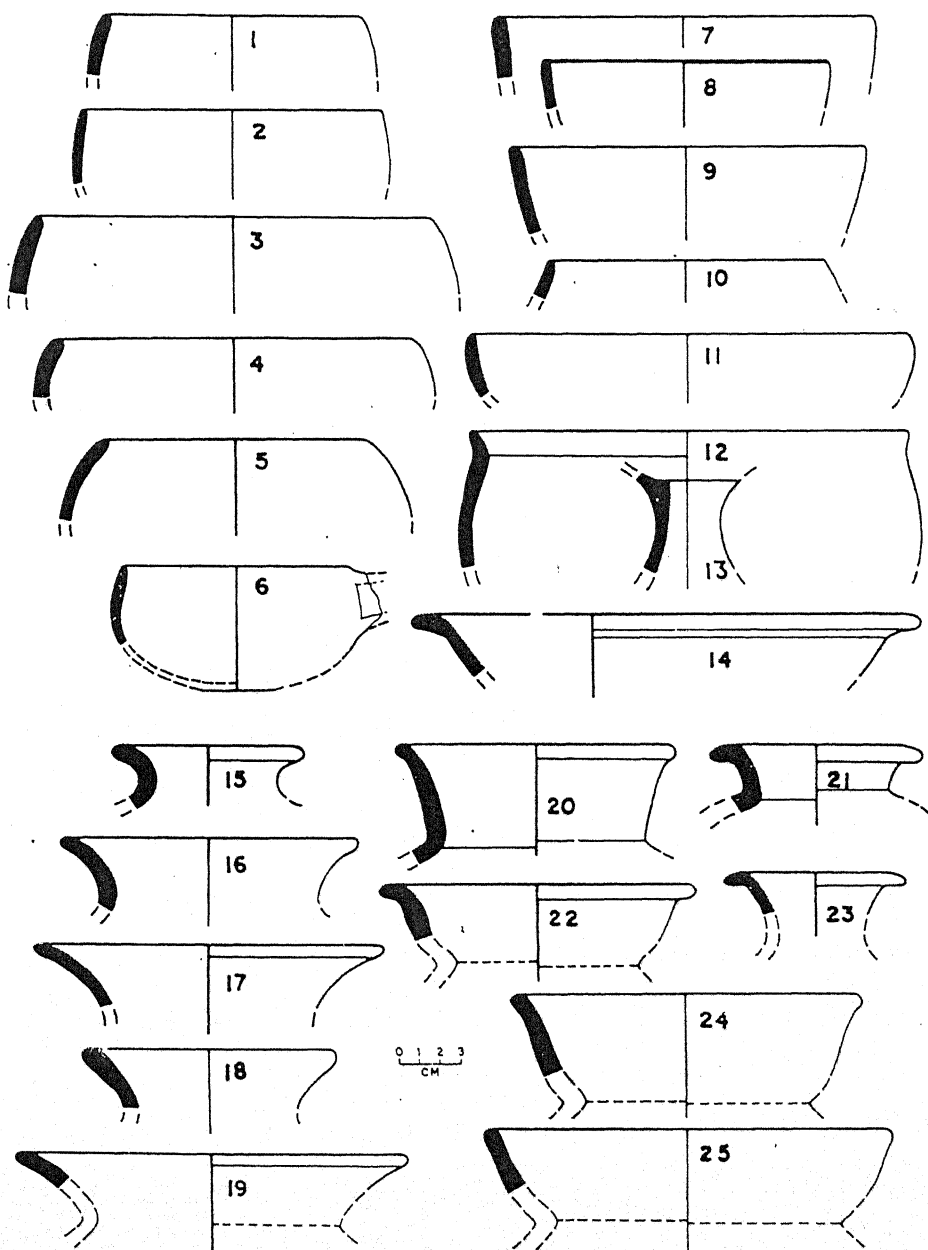
रेखाचित्र 21: सेनुवारः नवपाषाणिक मृदभाण्ड, बर्निश्ड ग्रे एण्ड रेड वेयर
(बी0पी0 सिंह 1988–89 के अनुसार)

से नवपाषाणिक मानव उत्त में बिहार की ओर प्रस्थान किया जिसका प्रमाण चिरांद, ताराडीह, मानेर तथा चेचर–कुतुबपुर से प्राप्त होता है ।

सोहगौरा

नवपाषाणिक संस्कृति के प्रमाण सोहगौरा (अक्षांश 26^0 32'' उ0 देशान्तर 80^0 32'' पू0) के निचले धरातल से भी मिले हैं। यह स्थल उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद में आमी और राप्ती नदियों के संगम पर स्थित है । इस स्थल का उत्खनन गोरखपुर विश्वविद्यालय के डा0 एस0 एन0 चतुर्वेदी ने सन् 1962–63 और सन् 1975–76 ई0 में किया था (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू:* 1977–78: 17–18, चतुर्वेदी 1985: 101–108)।

इमलीडीह खुर्द

यह पुरास्थल (अक्षांश 26^0, 30' उ0, देशान्तर 30^0 12'' 5' पू0) गोरखपुर जनपद के दक्षिण पश्चिम भाग में घाघरा की सहायक कुंआनो नदी के बायें तट पर स्थित है । इस क्षेत्र का सर्वेक्षण सन् 1990–91 ई0 में प्रारम्भ हुआ । यह आवासीय स्थल गोरखपुर से लगभग 40 किमी दक्षिण में स्थित है । इमलीडीह और इस क्षेत्र के अन्य स्थलों पर किये गये सर्वेक्षण से बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के डा0 पुरूषोत्तम सिंह को एक ताम्रपाषाणिक संस्कृति के प्रमाण मिले जिसे उन्होंने नरहन संस्कृति का नाम दिया। सन् 1992 ई0 में इमलीडीह में किये गये उत्खनन में नरहन संस्कृति के पूर्व की संस्कृति अर्थात नवपाषाणिक संस्कृति के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं जिसमें हाथ से बने हुए रस्सी के छाप वाले मिट्टी के बर्तन (रेखाचित्र 22, 23), अलंकृत पात्र (रेखाचित्र 24) और अन्य पुरा सामग्रियाँ सम्मिलित हैं (सिंह 1984: 120–122)। प्रथम सांस्कृतिक काल से बाँस–बल्ली के निशान से युक्त जली मिट्टी के टुकड़े, मिट्टी के बने फर्श और चूल्हे प्राप्त हुए हैं। 1.95 मीटर के व्यास वाला एक गोलाकार गर्त भी उपलब्ध हुआ है। कुछ मिट्टी की पतली दीवालों से बनी हुई गोलाकार संरचनाएं भी मिली हैं जिनका प्रयोग अनाज रखने के लिए किया जाता था। बहुत से स्टीयटाइट के लघु मनके, मिट्टी, अगेट और फ्यान्स के बने मनके, हड्डी के बाणाग्र और मिट्टी के बर्तनों के टुकड़ों से बने डिस्क भी प्राप्त
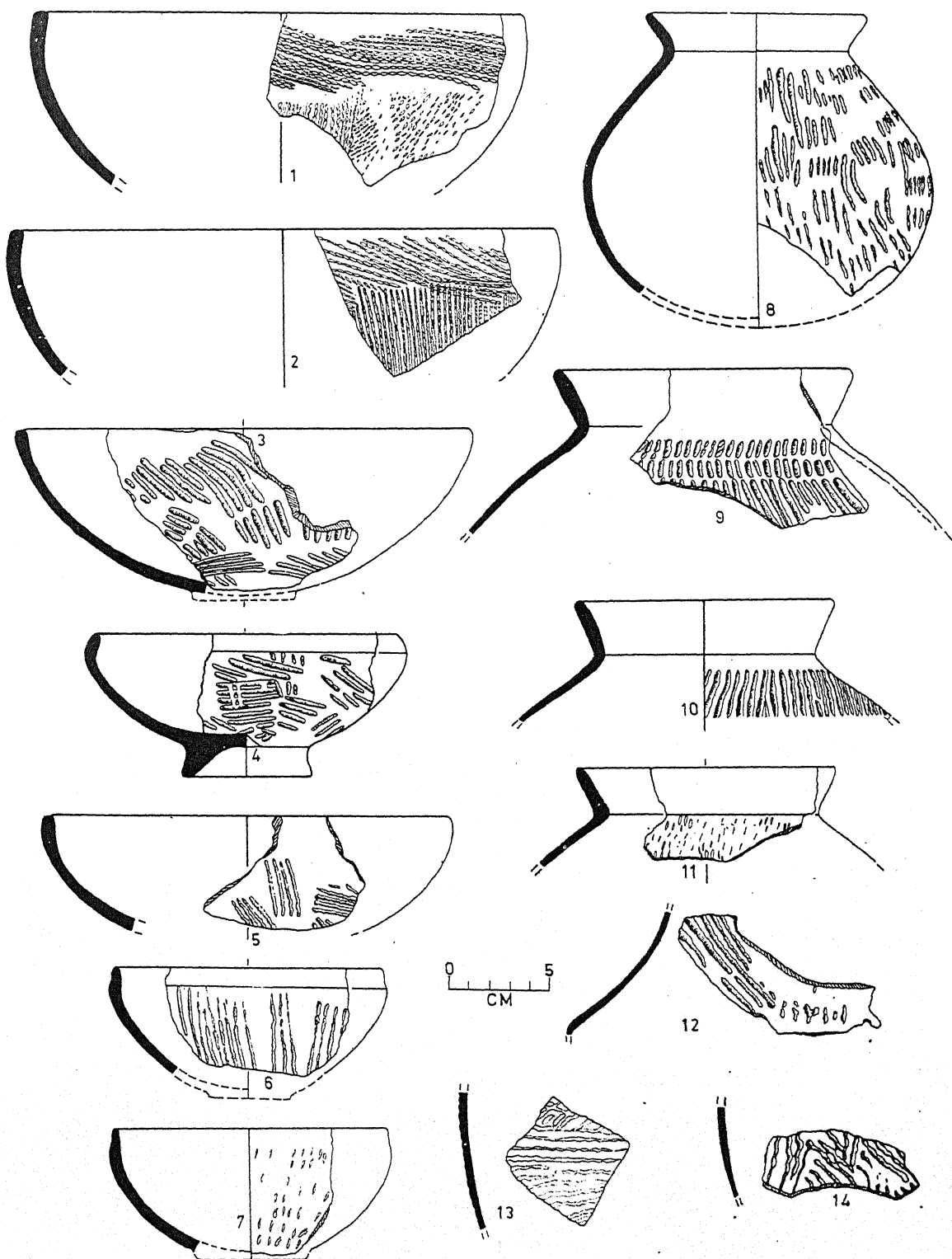
रेखाचित्र 22: इमलीडीह खुर्द: रस्सी छाप युक्त मृदभाण्ड़, प्रथमकाल
(पी० सिंह 1992–93 के अनुसार)
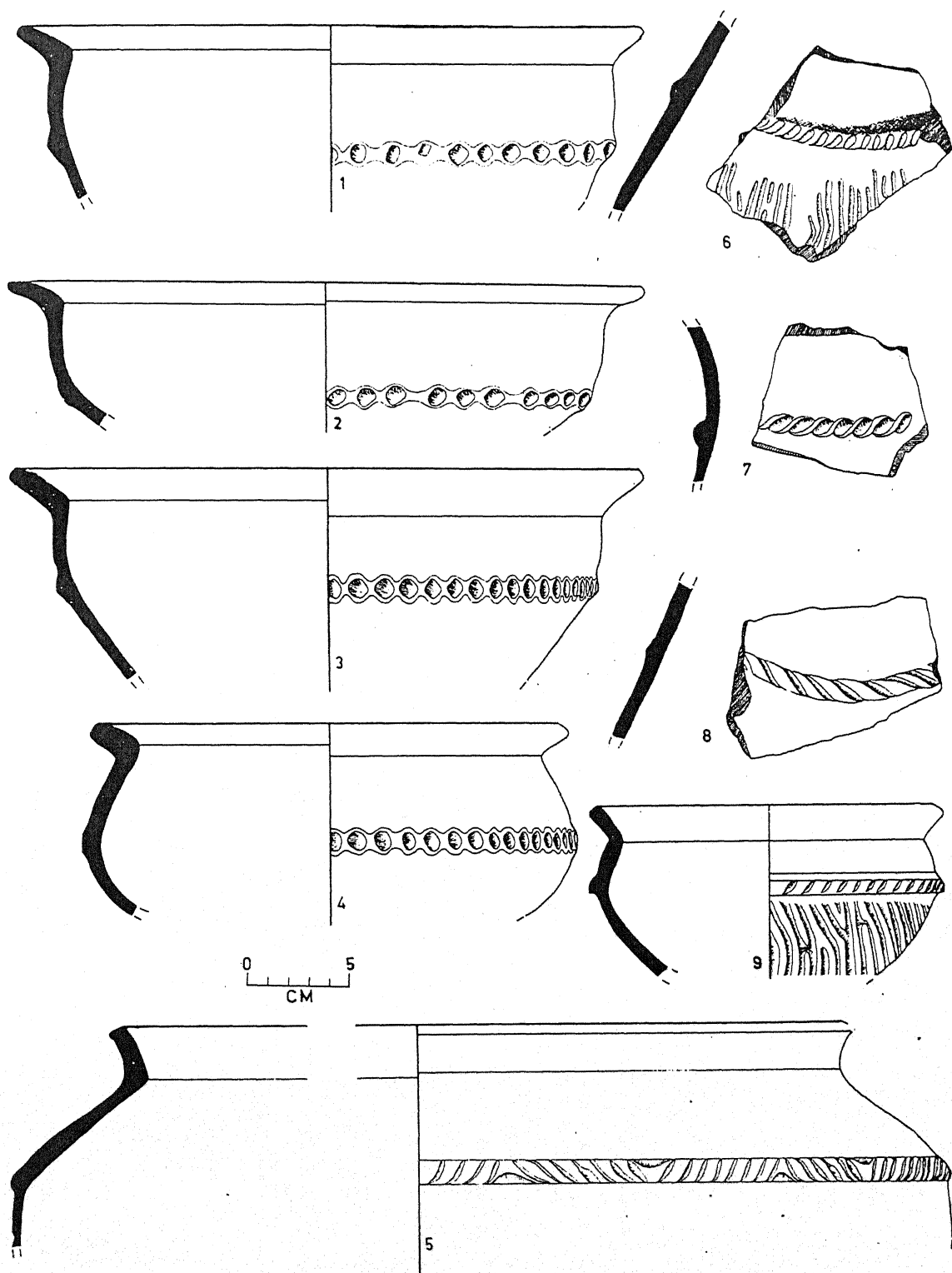
रेखाचित्र 23: इमलीडीह खुर्दः रस्सी छाप युक्त अलंकृत मृदभाण्ड, प्रथम काल
(पी० सिंह 1992–93 के अनुसार)
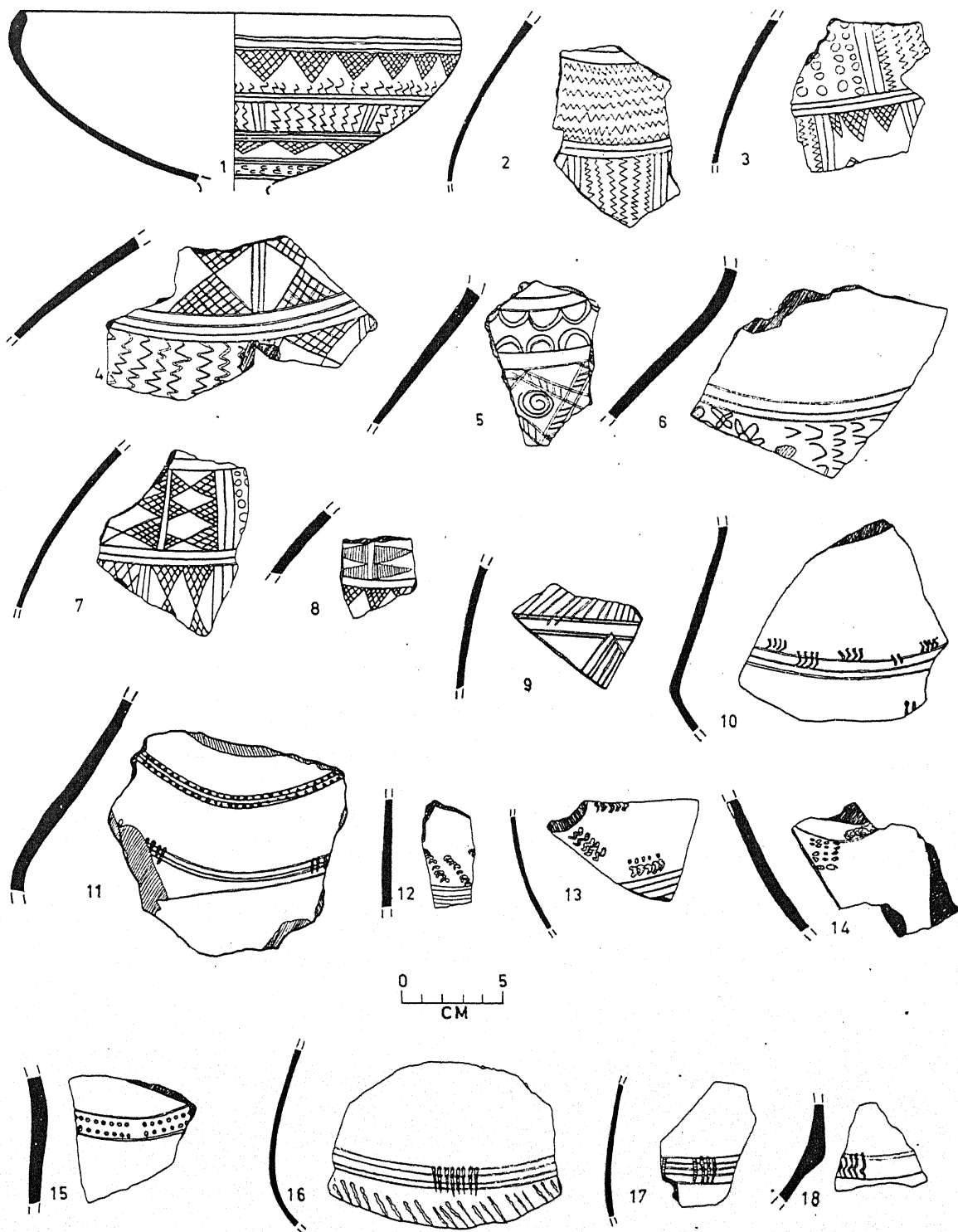
रेखाचित्र 24: इमलीडीह खुर्द: पकाने के उपरान्त उत्कीर्ण और चित्रित मृदभाण्ड, प्रथम काल (पी0 सिंह 1992–93 के अनुसार)

हुए हैं। इस चरण से उपलब्ध पात्र–परम्परा का साम्य सोहगौरा की प्रथम चरण की पात्र–परम्परा से है । इसलिए उसका सम्बन्ध नवपाषाणिक संस्कृति से है, लेकिन उत्खननकर्त्ता ने इस संस्कृति को प्राक् नरहन संस्कृति से अभिहित किया है । यहाँ से उपलब्ध जिन पशुओं की पहचान की गयी है उनमें गाय, बैल, भेड़, बकरी, सुअर, हिरण और भेड़िया आदि सम्मिलित हैं । मछली, घोंघे और कछुए के अस्थि अवशेष भी प्राप्त हुए हैं । अनाजों के प्रमाण से ऐसा लगता है कि यहाँ के निवासी रबी और खरीफ दोनों फसलों से परिचित थे । धान, जौ, गेहूँ, ज्वार, सांवा, बाजरा, मट़र, खेसारी, मूँग, तिल आदि अनाजों के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

लहुरादेव

यह पुरास्थल (अक्षांश 26^0, 46′ उ0, देशान्तर 82^0 57′ पू0) उत्तर प्रदेश के सन्त कबीर नगर जनपद में बस्ती–गोरखपुर मार्ग पर भुजैनी चौराहे से 5 किमी दक्षिण जगदीशपुर गाँव के समीप स्थित है । प्रारम्भ में यह स्थल तीन तरफ से झील से घिरा हुआ था । इस समय इसके अधिकांश भाग में खेती होती है, केवल पश्चिमी क्षेत्र में जलभराव है । यह स्थल पूर्व से पश्चिम 220 मीटर तथा उत्तर से दक्षिण 140 मीटर के क्षेत्र में फैला हुआ है । इस स्थल के पुरातात्विक महत्व को प्रकाश में लाने का श्रेय गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्रो0 शैल नाथ चतुर्वेदी को है (चतुर्वेदी 1980: 339–340; 1985: 105)। इस स्थल का उत्खनन उत्तर पद्रेश राज्य पुरातत्व विभाग की ओर से डॉ0 राकेश तिवारी के निर्देशन में 2001 तथा 2002 में किया गया (तिवारी एवं अन्य, 2001–2002: 54–59)। यहाँ के उत्खनन से पाँच सांस्कृतिक काल उद्घाटित किये गये हैं जिनका विवरण निम्नवत् हैः

प्रथम सांस्कृतिक काल – प्रारम्भिक कृषि के चरण (नवपाषाण काल)

द्वितीय सांस्कृतिक काल – ताम्रपाषाण काल

तृतीय सांस्कृतिक काल – प्रारम्भिक लौह काल

चतुर्थ सांस्कृतिक काल – एन0बी0पी0डब्लू0

पंचम सांस्कृतिक काल – प्रारम्भिक शताब्दी ई0पू0 / ई0

प्रारम्भिक सांस्कृतिक जमाव को पुनः दो उपकालों में विभाजित किया गया है– प्रथम–ए तथा प्रथम–बी। इस जमाव से मिट्टी के बर्तन पशुओं की जली हुई तथा बिना जली हुई हड्डियाँ, कोयले के टुकड़े, जली मिट्टी के टुकड़े इत्यादि सामग्रियाँ प्राप्त हुईं। प्रथम ए उपकाल से प्राप्त मिट्टी के बर्तन लाल तथा काले–तथा–लाल रंग के हैं। अधिकांश बर्तन हस्तनिर्मित हैं। मार्जन (Burnishing) के प्रमाण भी कतिपय बर्तनों पर दिखायी पड़ते हैं। सामन्यतया बर्तन अधपके हैं। कुछ बर्तनों में लाल रंग लेप लगाने का भी प्रमाण मिला है। अधिकतर बर्तन रस्सी की छाप से युक्त तथा अलंकृत किए गये हैं। उत्खनन से अनाज के दाने भी प्राप्त हुए हैं जिनका अध्ययन बीरबल साहनी पुरावनस्पति संस्थान के डॉ0 के0 एस0 सारस्वत ने किया है। उनके अनुसार इस संस्कृति के लोग जंगली तथा कृषि से उत्पन्न धान (*ओरिजा सतीवा*) उत्पन्न धान से परिचित थे। अन्य पुरावशेषों में मिट्टी के मनके, मिट्टी के हथगोले अस्थि निर्मित बाणाग्र, जली एवं अधजली पशुओं की हड्डियाँ सम्मिलित हैं। कतिपय हड्डियों के ऊपर काटने के निशान विद्यमान हैं। संरचना सम्बंधी प्रमाण में स्तभगर्तों का उल्लेख किया जा सकता है । इससे आवासीय झोपड़ियों के निर्माण का साक्ष्य प्रस्तुत होता है।

यहाँ से दो रेडियो कार्बन तिथियाँ भी प्राप्त हुई हैं । जिनके आधार पर इस संस्कृति के तिथिक्रम पर प्रकाश पड़ता है। प्राप्त तिथियों का उल्लेख निम्नवत् है :

(1) बी0एस0– 1951– बी0पी0 5320±90 अंशसोधित तिथि 4220, 4196, 4161 ईसा पूर्व ।

(2) बी0एस0– 1966– बी0पी0 6290±16 अंशसोधित तिथि 5298 ईसा पूर्व।

उपर्युक्त तिथियों के आलोक में लहुरादेव के प्रथम सास्कृतिक काल की तिथि छठवीं–पाँचवी सहस्त्राब्दी के मध्य प्रस्तावित की गयी है (तिवारी और अन्य 2001–2002 : 54–59)।

द्वितीय सांस्कृतिक काल का सम्बंध ताम्रपाषाण युगीन संस्कृति से हैं। इसकी कृष्णलेपित प्रात्र परम्परा, चित्रण अभिप्राय, ताम्र उपकरण इत्यादि चारित्रिक विशेषताएं प्राप्त होती हैं।

झूँसी

झूँसी की (अक्षांश 25^0 26′ 10′′ उ0 देशान्तर 81^0 54′ 30′′ पू0) पहचान प्रतिष्ठानपुर से की गई है । गंगा–यमुना के संगम पर इलाहाबाद नगर के ठीक सामने स्थित लगभग 3 किलोमीटर के क्षेत्र में विस्तृत इस टीले का अधिकांश भाग वर्तमान झूँसी गाँव द्वारा आबाद है । इस समय यह स्थल नालों के कारण कई छोटे टीलों में विभाजित हो गया है । लेकिन समुद्र कूप टीला अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित है, जिसकी अधिकतम ऊँचाई लगभग 16 मीटर है। समय–समय पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग द्वारा इस स्थान पर किये गये सर्वेक्षण एवं पुरातत्व विभाग द्वारा इस स्थान पर किये गये सर्वेक्षण से मिट्टी के बर्तन, सिक्के, मृण्मूर्तियाँ, पाषाण मूर्तियाँ, मुहरें, हड्डी, लोहे और ताबें के उपकरण आादि प्राप्त हुए हैं, जो इस स्थल की प्राचीनता को प्राक् एन0 बी0 पी0 काल से लेकर मध्य काल तक के विस्तृत सांस्कृतिक काल का संकेत देते हैं। इस स्थल का उत्खनन इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग द्वारा 1994–95 में छोटे पैमाने पर किया गया। समुद्र–कूप के टीले पर ऊपर से नीचे तक एक सोपान खन्ती में किये गये उत्खनन से 15.5 मीटर के आवासीय जमाव उपलब्ध हुए जिन्हें पाँच सांस्कृतिक कालों में विभजित किया गया है । तत्पश्चात् 1998, 1999 तथा 2002 में पुनः उत्खनन कार्य किया गया है जिससे निम्नलिखित सांस्कृतिक अनुक्रम प्रकाश में आयेः

प्रथम सांस्कृतिक काल':– नवपाषाणकालीन

द्वितीय सांस्कृतिक कालः –ताम्रपाषाणयुगीन

तृतीय सांस्कृतिक कालः –एन0बी0पी0डब्लू0

चतुर्थ सांस्कृतिक कालः –शुंग कुषाणकालीन

पंचम सांस्कृतिक कालः— गुप्त कालीन

छँठा सांस्कृतिक कालः— प्रारम्भिक मध्ययुगीन

जहाँ तक इस स्थल की प्रथम संस्कृति का सम्बन्ध है इसमें नवपाषाण युगीन पुरावशेषों की प्राप्ति होती है । इनमें रस्सीछाप से युक्त मृदभाण्ड, लघुपाषाण उपकरण इत्यादि के मिलने से इस स्थल की प्रारम्भिक संस्कृति के रुप में समझा जाता है । प्रस्तुत अध्याय में मात्र नवपाषाण युगीन पुरास्थल के रुप में झूँसी का परिचय प्रस्तुत किया गया है (मिश्र और अन्य 2002; व्यक्तिगत सूचना) ।

महगड़ा

यह पुरास्थल (अक्षांश 24^0 54′ 50″ उ0, देशान्तर 82^0 3′ 30″ पू0) इलाहाबाद से 80 किमी की दूरी पर दक्षिण पूर्व की आकर बेलन नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है । इस स्थल उत्खनन का कार्य 1976–77 ई0 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुराविदों ने स्वर्गीय प्रो0 जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन में किया था यहाँ से नवपाषाणयुगीन एकल सांस्कृतिक जमाव प्रकाश में आया है । यहाँ की नवपाषाणिक सांस्कृति का साम्य इसी स्थल से ठीक दक्षिणी के ओर बेलन नदी के दाहिने किनारे पर स्थित कोलडिहवा नामक स्थल के प्रथम सांस्कृतिक काल से तुलनीय है । संरचनाओं के प्रमाण गोलाकार अथवा अंडाकार आवासीय झोपड़ियों के रूप में प्राप्त हुए हैं । जिन स्थलों पर उत्खनन का क्षेत्र अत्यधिक सीमित था वहाँ से बाँस–बल्ली के निशान से युक्त जली मिट्टी के टुकड़े अत्यधिक मात्रा में प्राप्त हुए हैं । इनसे भी झोपड़ियों का ही प्रमाण मिलता है । चिरांद, महगड़ा और इन्दारी के उत्खनन से गोलाकार कुल्हाड़ियाँ प्राप्त हुई हैं । महगड़ा के क्षैतिज उत्खनन से नव पाषाणिक अधिवास प्रक्रिया पर उल्लेखनीय प्रकाश पड़ता है । यहाँ की सभी उत्खनित झोपड़ियों के फर्श गोलाकार अथवा अंडाकार है । गोलाकार झोपड़ियों का व्यास 6.40 मीटर और 4.30 मीटर के नीचे और अंडाकार झोपड़ियों की न्यूनतम तथा अधिकतम धुरी क्रमशः 3.40 मीटर से 6 मीटर और 2.80 मीटर से 4.20 मीटर के बीच की थी । इन झोपड़ियों के फर्शो का औसत आवासीय क्षेत्र 15. 79 वर्ग मीटर है (मण्डल 1997: 163–164)। इन फर्शो के चारों ओर स्तम्भ गर्तों के

प्रमाण हैं जिनमें बांस अथवा लकड़ी के लट्ठे गाड़ दिये जाते थे । इन्हीं पर झोपड़ियों की छत टिकी रहती थी । उनके बांस–बल्ली और घास–फूस से निर्मित दीवाल भी बनायी जाती थी जिस पर मिट्टी का मोटा लेप भी लगाया जाता था, जिसके प्रमाण जली मिट्टी के टुकड़ों के रूप में प्राप्त हुए हैं । चिरांद के उत्खनन से उपलब्ध वृत्ताकार अथवा अर्द्धवृत्ताकार झोपड़ी जिसका व्यास 3 मीटर था। महगड़ा के उत्खनित फर्शों की स्थिति से ऐसा लगता है कि अधिवास प्रक्रिया में इन झोपड़ियों की केन्द्रीय भूमिका थी । मकान प्रायः सीधी रेखा में न होकर गोलाई में स्थित होते थे । एक मकान में एक अथवा एक से अधिक झोपड़ियाँ सम्मिलित थी क्योंकि दो या तीन झोपड़ियाँ एक दूसरे से जुड़ी हुई प्राप्त हुई हैं । इस तरह लगभग 1600 वर्गमीटर के क्षेत्र में आठ घरों के प्रमाण प्राप्त हुए हैं । इनमें से प्रत्येक घर के आस–पास पर्याप्त खुली हुई भूमि थी । झोपड़ियों के फर्शों से उपलब्ध पुरासामग्रियों के विश्लेषण से झोपड़ियों के प्रयोग सम्बन्धी प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। तीन झोपड़ियों वाले बड़े घरों की एक झोपड़ी संभवतः आवास के लिए प्रयुक्त की जाती थी और शेष दो उपकरण निर्माण, खाद्य सामग्री, भोजन बनाने आदि के लिए प्रयुक्त की जाती थी ।

12.5 मीटर X 7.5 मीटर के क्षेत्र में विस्तृत पशुओं का एक बड़ा बाडा महगड़ा के उत्खनन से उपलब्ध अधिवास संबंधी एक महत्वपूर्ण प्रमाण के रूप में देखा जा सकता है । इस बाड़े के चारों ओर झोपड़ियों के फर्श विद्यमान हैं । संभवतः बाड़े की सुरक्षा की दृष्टि से बाड़े के चारों ओर टट्र की दीवालें थीं जैसा कि उपलब्ध स्तम्भगर्तो के निशान से प्रतीत होता है । इसमें प्रवेश के लिए तीन रास्ते थे । संभवतः बाड़े को बांस बल्ली से निर्मित घास–फूस की दीवालों से घेरा तो गया था पर उसके ऊपर कोई छत नहीं थी, क्योंकि बाड़े के भीतर स्तम्भ गर्त का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है । इस बाड़े में विभिन्न आयु वर्ग के पशुओं के खुरों के निशान उपलब्ध हुए हैं । इससे लगता है कि पशुओं को बाड़ों में खुला ही रखा जाता था ।

महगडा के उत्खनन से इस स्थल के जनसंख्या का अनुमान लगाने का प्रयास किया गया है । महगड़ा स्थल का सम्पूर्ण आवास क्षेत्र 8000 वर्ग मीटर है ।

इसमें से तीन हजार वर्ग मीटर का क्षेत्र इसके चारों ओर प्राकृतिक आवास के अन्तर्गत आता है और इस प्रकार शेष 5000 वर्ग मीटर क्षेत्र आवास के लिए प्रयुक्त किया जाता था । अभी तक पूरे आवासीय क्षेत्र के 1/3 भाग 1650 वर्गमीटर का उत्खनन किया गया है जिसमें अठारह झोपड़ियों, आठ घर और एक बाड़े के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं । यदि प्रत्येक घर में पाँच या छः व्यक्ति औसत मानते हैं तो लगभग 40 या 50 व्यक्ति का अनुमान किया जा सकता है घरों, बाड़े और उनके बाहर के खुले क्षेत्र तो अन्य कार्यों के लिए प्रयुक्त किये जाते रहे होंगे । यह पूरे आवास क्षेत्र का 1/3 भाग है । इसका अर्थ यह हुआ कि पूरे अधिवास के लगभग आधे हेक्टेयर क्षेत्र में लगभग 24 घर थे जिनमें कम से कम 141 से 150 व्यक्ति रह सकते थे । बाड़े के उत्खनन से प्राप्त खुरों के निशान का क्षेत्र और पूरे बाड़े के क्षेत्र का आकार लगभग 40 से 60 पशुओं का मान लिया गया है (शर्मा 1980)।

कोलडिहवा इलाहाबाद से दक्षिण पूर्व दिशा में 80 किमी की दूरी पर बेलन नदी के दाहिने तट पर स्थित है। 1974–75 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुराविदों ने इस स्थल को प्रकाश में लाने का कार्य किया । नवपाषाण काल का यह प्रथम उत्खनित प्राथमिक सन्दर्भ का स्थल है जहाँ से पालिशदार, गोलाकार कुल्हाड़ियाँ प्राप्त हुई थी (छायाचित्र 26)। रस्सी के छाप वाले (रेखाचित्र 25) और खुरदुरी सतह वाले (रेखाचित्र 26) हाथ से बने मिट्टी के बर्तन विन्ध्य क्षेत्र के नवपाषाणिक स्थलों कोलडिहवा, महगड़ा, पचोह, इन्दारी, टोकवा (छायाचित्र 27, 28), और कुनझुन से प्राप्त हुए हैं, जिन्हें इस क्षेत्र की नवपाषाणिक संस्कृतिक की चारित्रिक विशेषता माना जाता है (शर्मा और अन्य 1980)। इन स्थलों से लघुपाषाण उपकरण प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुए हैं (छायाचित्र 29)।

रेबा रे ने बिहार के मैदानी क्षेत्र और छोटा नागपुर पठार के नवपाषाणिक संस्कृति के स्थलों का अधिवास प्रक्रिया की दृष्टि से विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है (रे 1987)। झारखण्ड का छोटा नागपुर पठार, जहाँ आदिम जनजातियाँ रहती हैं, आधुनिक विकास से कोसों दूर है। इनमें से कई आदिम जातियाँ अभी भी आखेटक और स्थानान्तरित कृषि करते हैं और कुछ लोग स्थायी जीवन और कृषि पर निर्भर है। संथाल प्रजाति मैदानों, घाटियों और गाँवों में निवास करती हैं एवम्

छायाचित्र 26: कोलडिहवाः पालिशदार गोलाकार कुल्हाड़ियाँ

छायाचित्र : 27 टोकवाः हस्तनिर्मित खुरदुरे पात्र खण्ड़

1
2
3
4
5
6
7
9
8
10
11
14
12
13
15
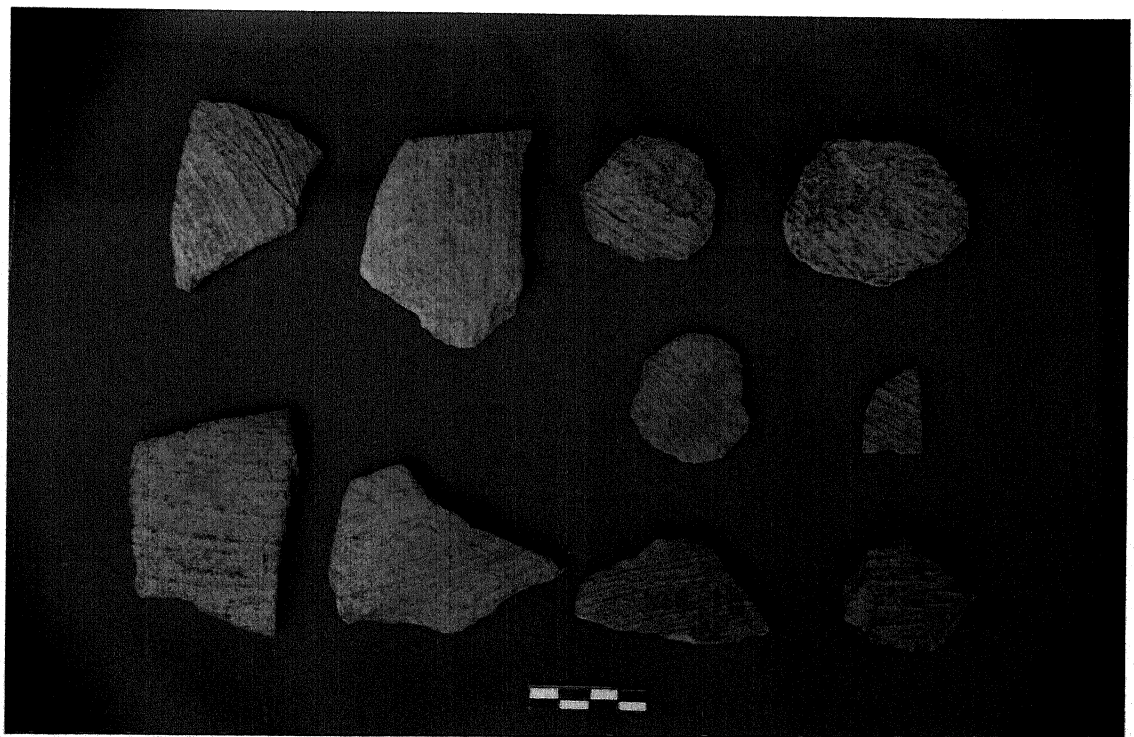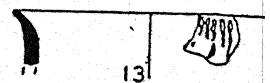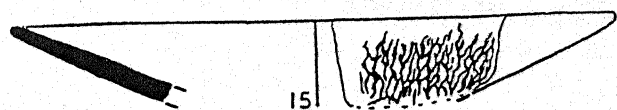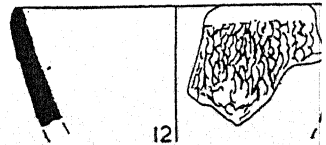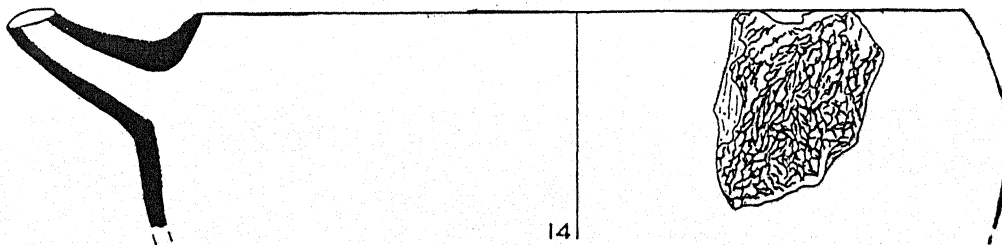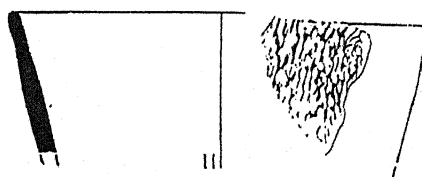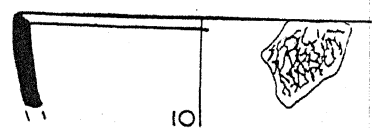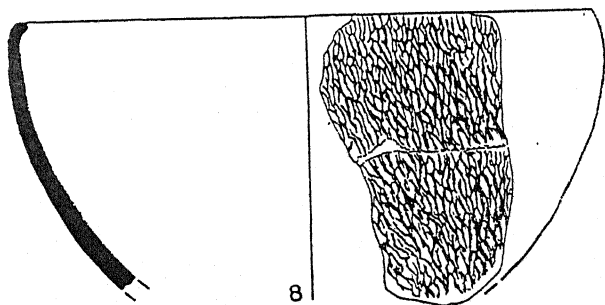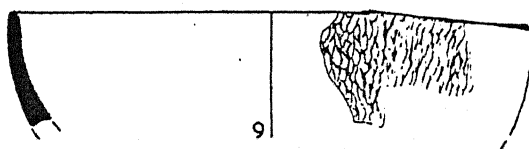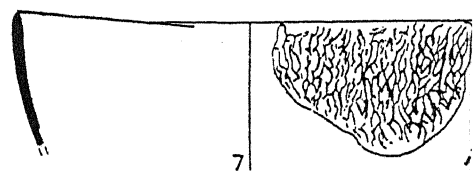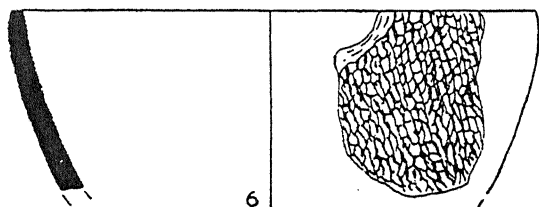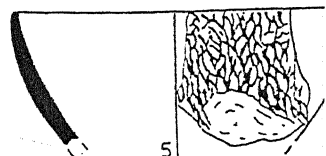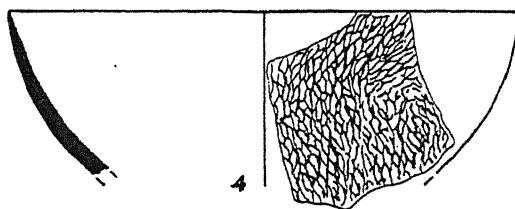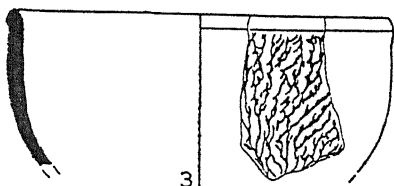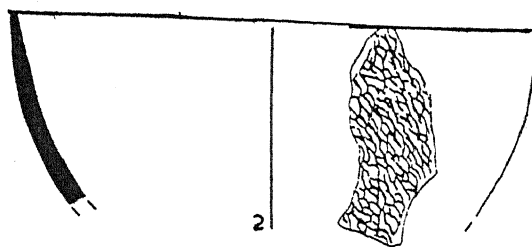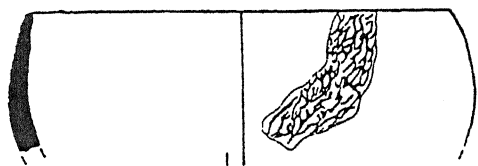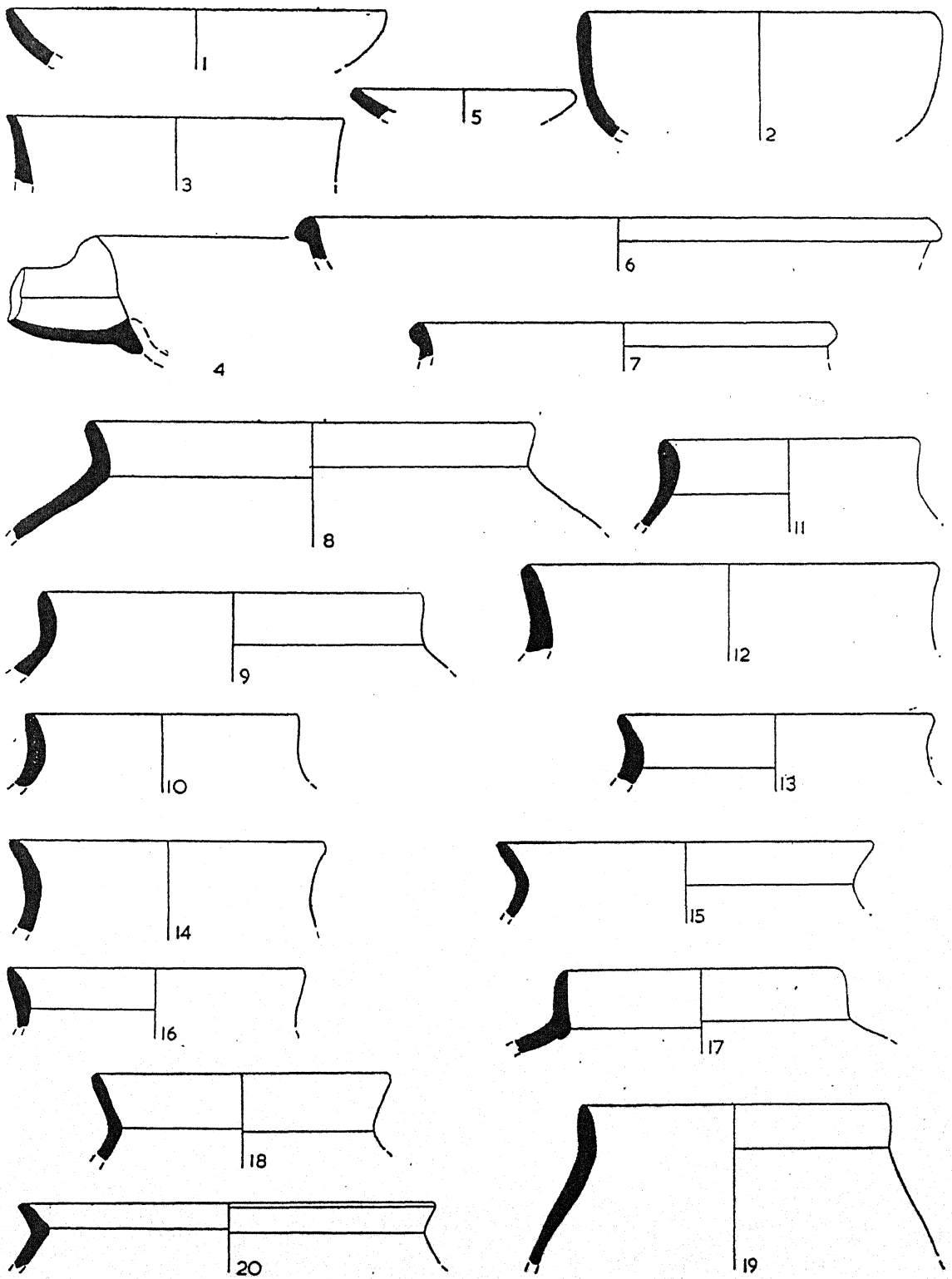
रेखाचित्र 26: महगड़ाः हस्तनिर्मित खुरदुरे सतह वाले मृदभाण्ड
(शर्मा और अन्य 1980 के अनुसार)
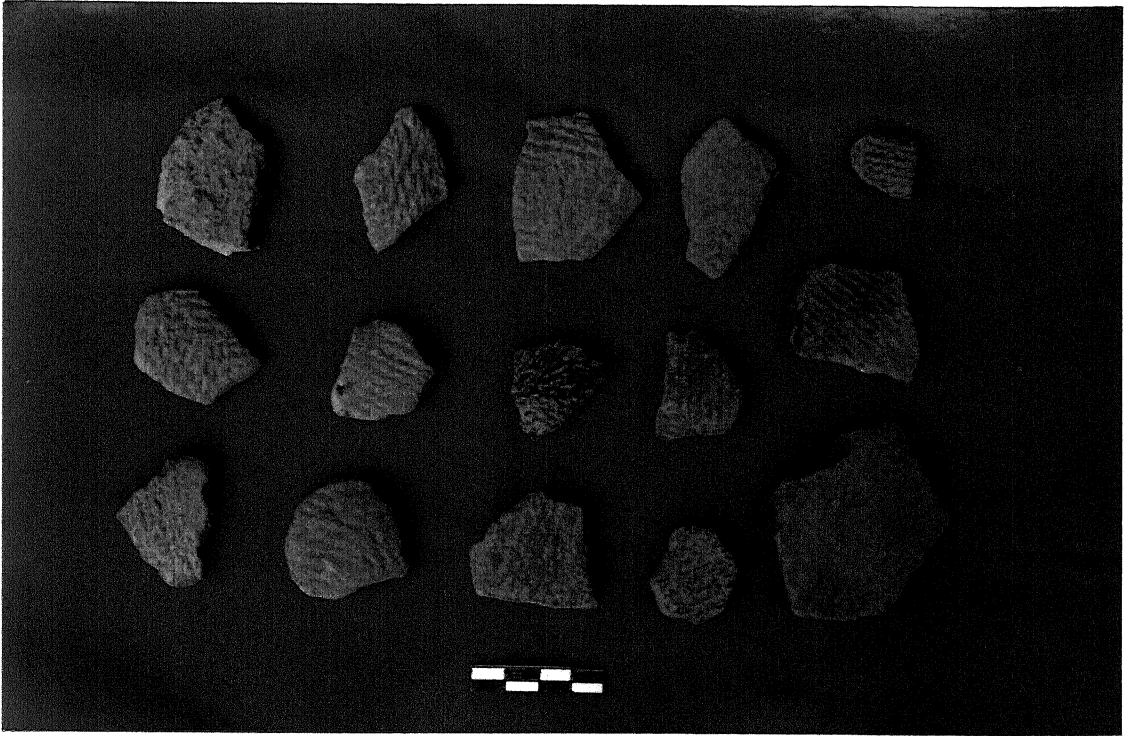
छायाचित्र 28: टोकवा: हस्तनिर्मित रस्सी की छाप से युक्त पात्र खण्ड
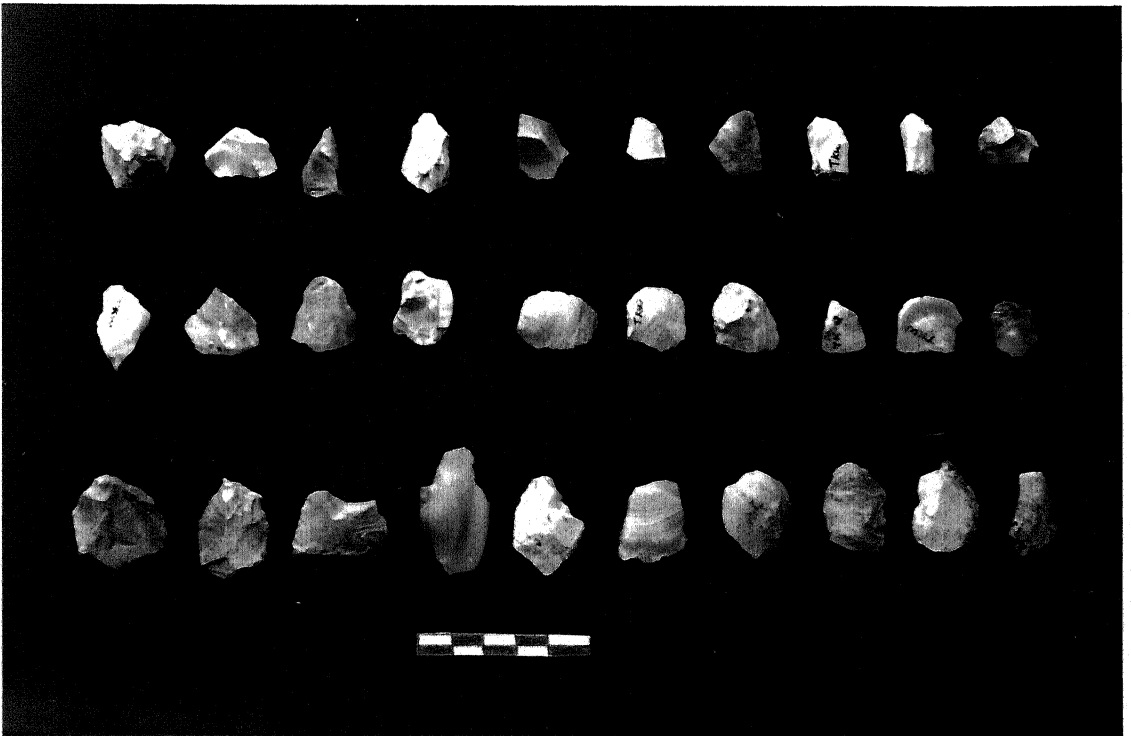
छायाचित्र : 29 टोकवा: नवपाषाणिक लघुपाषाण उपकरण

लैटेराइट भूमि पर कृषि करती है। यहाँ की मुख्य फसलों में गेहूँ, धान, मोटे अनाज, दालें आदि उत्पादित किये जाते हैं (राय चौधरी 1971: 17)।

बिहार और झारखण्ड के पठारी क्षेत्र सिंह भूमि, संथाल परगना, मुंगेर और गया जिलों में बहुत से नवपाषाणिक संस्कृति के स्थल प्रतिवेदित किये गये हैं और इनमें से अधिकांश स्थलों पर उपकरण और अन्य सामग्री सतह पर बिखरी हुई मिली हैं । अधिकतर स्थलों की स्थिति और पुरा सामग्री के बारे में पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं है । इसलिए इनके सांस्कृतिक तत्वों पर समुचित प्रकाश नहीं डाला जा सकता । सिंह भूमि जनपद के स्थल संजय, स्वर्णरेखा और हरकई नदी घाटी में स्थित हैं । इन घाटियों के प्रमुख स्थलों में सोनुआ, लोटा पहाड़, वरदाब्रिज, बरूडीह, उकरी, दूँगी और सिनी हैं । इनमें से चक्रधरपुर से सात किलोमीटर पूर्व वरदाव्रिज स्थल विशेष उल्लेखनीय हैं (सेन 1950: 1–12) । यह स्थल 1938 में खोजा गया था । इस स्थल से बड़ी संख्या में फलकित, घिसे हुए तथा पालिशदार नवपाषाणकालीन कुल्हाडियाँ प्राप्त हुई थीं ।यहाँ से निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं से नवपाषाणिक उपकरण उपलब्ध हुए हैं जो नये अप्रयुक्त तथा बिल्कुल ही घिसे हुए नहीं हैं । इससे लगता है कि यह नवपाषाणकालीन उद्योग स्थल रहा होगा (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू* 1960–61: 14; *इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू* 1962–63: 6) 1958 के बाद इस क्षेत्र में और कई नवपाषाणिक स्थलों की खोज की गयी । इन स्थलों के आधार पर कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में नवपाषाण कालीन मानव अपने अस्थायी आवास बनाकर निवास करता था । कुल्हाड़ियाँ, वसुले, छेनियाँ, सिल–लोढ़े और गदाशीर्ष जैसे उपकरण यहाँ से एकत्रित किये गये हैं। उपकरणों के निर्माण के लिए इपिडियोराइट का उपयोग गया है । इन उपकरणों के साथ चाक से बने मिट्टी के बर्तन भी मिलते हैं । लेकिन स्तरीकरण के अभाव में इनके नवपाषाणिक संदर्भ के बारे में निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता । संजय घाटी के स्थलों में सिली के समीप स्थित बरूडीह नामक स्थल विशेष उल्लेखनीय हैं। इस टीले पर छोटे पैमाने पर उत्खनन किया गया (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू* 1962–63: 9) । इस स्थल पर किये उत्खनन और सर्वेक्षण से कुल्हाडियाँ और अन्य वस्तुएं, जले हुए चावल के दाने, जली मिट्टी

के टुकड़े और हड्डी के टुकड़े उपलब्ध हुए हैं । यहाँ से हँसियें की तरह का लौह उपकरण भी प्राप्त हुआ है । सेन ने यहाँ की संस्कृति को दो चरणों में विभाजित किया है । पहले के अन्तर्गत पालिशयुक्त कुल्हाड़ियाँ, बसूले व अन्य उपकरण, लकड़ी के कोयले, हाथ से बने मिट्टी के बर्तन सम्मिलित है और दूसरे चरण में जले हुए धान के दाने, कोयले, जली मिट्टी के टुकड़े, चाक से बने मिट्टी के बर्तन और लौह उपकरण सम्मिलित किये गये हैं । दूसरे चरण से ही पालिश की गयी कुल्हाड़ियाँ और अन्य पाषाण उपकरण मिलते हैं । इस स्थल के उत्खनन से स्तम्भ गर्त या संरचना के और कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हुए हैं लेकिन गर्त चूल्हों के कुछ प्रमाण यहाँ से प्राप्त हुए है। रेबा रे के अनुसार सिंहभूमि जनपद के अधिकांश नवपाषाणिक स्थल कृषि पर आधारित थे । कुल्हाड़ियों का प्रयोग जंगल को साफ करने के लिए किया जाता था । कुछ कुल्हाड़ियाँ लकड़ी काटने और छीलने में प्रयुक्त की जाती थी । सिल और लोढ़े की उपस्थिति से भी कृषि का संकेत मिलता है । यद्यपि घरों के प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं लेकिन बड़ी मात्रा में सिल और लोढ़े तथा मिट्टी के बर्तन आवासीय स्थल का संकेत करते हैं ।

पठारी क्षेत्र का नवपाषाणिक मानव संभवतः मैदान की प्राकृतिक सम्पदा के कारण आकर्षित होकर यहाँ आया । वार्षिक बाढ़ के कारण उर्वर भूमि कृषि के लिए अधिक उपयुक्त थी । बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के नवपाषाणिक स्थल इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं ।

चतुर्थ अध्याय

ताम्रपाषाणयुगीन संस्कृति

विगत चार दशकों में मध्य गंगा घाटी में किये गये पुरातात्विक अन्वेषणों से ताम्रपाषाणिक संस्कृति के बहुत से स्थल प्रकाश में आये हैं (रेखाचित्र 27)। इन स्थलों से उत्तर पूर्वी भारत में ताम्रपाषाणिक संस्कृति का एक नया अध्याय प्रकाश में आया है। ताम्र धातु के ज्ञान एवं तत्सम्बन्धित तकनीकी विकास के नवीन योगदान से इस संस्कृति को विशिष्टता प्रदान की गयी है। यही इस युग की मृदभाण्ड कला एंव अन्य उद्योगों के विकास के आधार पर इस संस्कृति का स्वरूप पूर्ववर्ती संस्कृति से पृथक पहचान रखता है। इन स्थलों में उल्लेखनीय स्थल है – उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जनपद में पुरेदेवजानी, पेलखवार और भेवानी (पाल 1987: 196–200) जौनपुर में एकहुआँ (इस स्थल की खोज प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डा0 जे0 एन0 पाल, श्री बी0 बी0 मिश्र एवं डॉ0 मानिक चन्द्र गुप्त ने 1987 में की थी) वराणसी में राजघाट (नारायण एवं राय 1977), प्रहलादपुर (नारायण एवं राय 1967) सरायमोहना (इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू: 1967–68: 48–49), कमौली (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू:* 1963–64: 58), गाजीपुर में मसोनडीह (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू:* 1963–64: 57–58), आजमगढ़ में राजा नहुष का टीला (नेगी 1975: 56–58), बस्ती में बनवारी घाट (भट्ट 1970: 78–88), गुलरहिया घाट (भट्ट 1970: 78–88), लहुरदेवा (चतुर्वेदी 1985:101–108), सूसीपार (चतुर्वेदी 1985:101–108), रामगढ़घाट (चतुर्वेदी 1985:101–108), बड़ा गाँव (चतुर्वेदी 1985:101–108), और गेरार (चतुर्वेदी 1985:101–108), बलिया में खैराडीह (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू:* 1981–82: 67–70), भूनाडीह (सिंह 1996), गोरखपुर में सोहगौरा (चतुर्वेदी 1985: 101–108), नरहन (सिंह 1994) व इमलीडीह (सिंह 1990) तथा बिहार के सारन जनपद में चिरांद (वर्मा 1969: 201–211), और मांझी (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू:*

मध्य गंगाघाटी के प्रमुख ताम्रपाषाणिक उत्खनित स्थल
N
INDIA
AREA OF MAP
INDEX
CHALCOLITHIC SITES
DISTRIC
SRAVASTI
PIPRAHWA
GANWARIA
RAPTI R.
AYODHYA
Faizabad
Gorakhpur
DHURIAPAR
Deoria
NARHAN
GHAGHARA R.
GANDAK R.
BURHI GANDAK R.
KOSI R.
Muzaffarpur
Sultanpur
Azamgarh
KHAIRADIH
MANJHI
VAISALI
CHECHAR-KUTUBPUR
Chapra
GOMTI R.
Bela-Pratapgarh
Jaunpur
Ballia
Ghazipur
Arrah
Patna
GANGA R.
Allahabad
Varanasi
YAMUNA R.
Mirzapur
SENUWAR
LAHARIA-DIH
20 0 100 KM
28°
27°
26°
25°
N
E
82°
83°
84°
85°
86°
87°

1983–84: 15–16, 1984–85: 12–13), पटना जनपद में मानेर (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू* 1984–85: 11–12), भागलपुर जनपद में ओरियप (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू* 1966–67: 6–7), और चम्पा (सिन्हा 1978: 15–16), वैशाली जनपद में चेचर कुतुबपुर (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू:* 1977–78: 17–18), गया जनपद में सोनपुर (सिन्हा एवं वर्मा 1970), और ताराडीह (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू:* 1981–82: 10–12; 1982–83: 16–25; 1983–84: 12–13; 1984–85: 12–13), और रोहतास जनपद में सेनुवार (सिंह 1992: 77–84; 1995–96: 75–93; 2001–2002: 109–118)।

इन स्थलों में से राजघाट, प्रहलादपुर, सरायमोहना, कमौली, मसोनडीह, सोहगौरा, नरहन, इमलीडीह, भूनाडीह, धुरियापार, खैराडीह, चिरांद, मांझी, मनेर, ओरियप, चम्पा चेचर कुतुबपुर, सोनपुर, ताराडीह और सेनुवार का उत्खनन किया गया है। कौशाम्बी, श्रंगवेरपुर और झूँसी के प्राचीनतम सांस्कृतिक धरातल को पात्र परम्पराओं के आधार पर ताम्रपाषाणिक संस्कृति के अन्तर्गत रखा जा सकता है। मध्य गंगा घाटी के दक्षिणवर्ती विन्ध्य क्षेत्र के उत्खननित स्थलों में ककोरिया (मिश्र एवं मिश्र 2000: 68) और कोलडिहवा (मिश्र एवं मिश्र 2000: 68–69) से मध्य गंगाघाटी के ताम्रपाषाणिक संस्कृति के न केवल उद्‌भव पर प्रकाश पड़ा है अपितु दोनों के पारस्परिक सांस्कृतिक सम्पर्क भी उजागर हुए हैं। मध्य गंगा घाटी के उपर्युक्त उत्खनित स्थलों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:

कौशाम्बी:

कौशाम्बी में (अक्षांश 25^{0} 20′ 30″ उ0, देशान्तर 81^{0} 23′ 12″ पू0) पूर्वी प्रवेश–द्वार पर किये गये उत्खनन से चार सांस्कृतियों के विषय में साक्ष्य मिले हैं जिनका वर्गीकरण मिट्टी के बर्तनों के आधार पर किया गया है । प्रथम सांस्कृतिक काल की प्रमुख पात्र–परम्पराओं में लाल–परम्परा है जिस पर कभी–कभी चित्रण अभिप्रायः मिलते हैं । कृष्ण–लोहित पात्र–खण्ड भी प्रथम सांस्कृतिक काल से मिले हैं। पात्र चाक पर बने हुए है जिन पर प्रलेप (स्लिप) लगाने के साक्ष्य मिलते हैं । प्रमुख पात्र–प्रकारों में कटोरे, थालियाँ तथा तसले (बेसिन) आदि हैं । प्रथम से

लेकर चतुर्थ निर्माण काल तक इस प्रथम सांस्कृतिक काल से सम्बद्ध हैं । पुरातात्विक आधार पर कालक्रम 1165 ई0 पू0 से 885 ई0पू0 के बीच में निर्धारित किया गया है । कौशाम्बी में जो लोग सबसे पहले रह रहे थे वे ग्रामीण संस्कृति के लोग थे लेकिन यहाँ के तीसरे निर्माण–काल से नगर–जीवन के साक्ष्य मिलने लगते हैं ।

द्वितीय सांस्कृतिक काल चित्रित धूसर पात्र–परम्परा से सम्बन्धित है। पाँचवें से लेकर आठवें तक चार निर्माण–काल इससे सम्बन्धित हैं । ऊपरी गंगा घाटी में मिलने वाली चित्रित धूसर पात्र–परम्परा तथा कौशाम्बी की इस तरह की पात्र–परम्परा के बीच कुछ विभिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं । कौशाम्बी से प्राप्त पात्र–खण्ड अपेक्षाकृत मोटे हैं । इनका धूसर वर्ण कुछ हल्के रंग का तथा चित्रण–अभिप्राय भी कम मिलते हैं । थाली, कटोरे प्रमुख पात्र प्रकार हैं । चित्रित धूसर पात्र परम्परा के साथ कृष्ण–लोहित मृदभाण्ड परम्परा (ब्लैक एण्ड रेड वेयर) बहुतायत से मिलती है । द्वितीय सांस्कृतिक काल का काल–क्रम 885 ई0 पू0 से लेकर 605 ई0 पू0 के बीच निर्धारित किया गया है ।

श्रृंगवेरपुर

श्रृंगवेरपुर पुरास्थल (अक्षांश 25^{0} 35′ 22″ उ0 देशान्तर 81^{0} 38′ 40″ पू0) के उत्खनन से प्राप्त प्रारम्भिक दो संस्कृतियाँ ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति के अर्न्तगत रखी जा सकती है । प्रथम सांस्कृतिक काल (1050–1000 ई0 पू0) गैरिक मृद्‌भाण्ड संस्कृति का है । गैरिक मृदभाण्डों के अतिरिक्त सरकण्ड़ों की छाप से युक्त मिट्टी के जले हुए टुकड़े मिले हैं जिनसे इंगित होता है कि ये लोग बाँस–बल्ली से निर्मित झोपड़ियाँ बनाते थे । मृण्मय चक्रिक खण्ड और कार्नेलियन के फलक का एक खण्डित टुकड़ा मिला है । इसके पश्चात् यह पुरास्थल संभवतः कुछ समय तक वीरान रहा।

द्वितीय सांस्कृतिक काल (950–700 ई0 पू0) की प्रमुख पात्र–परम्पराओं में कृष्ण–लेपित और चमकाई गई धूसर पात्र–परम्परा का उल्लेख किया जा सकता

है। हड्डी के बने बेधक और बाण–फलक, हड्डी का एक लटकन, जैस्पर तथा मिट्टी के बने मनके अन्य महत्वपूर्ण पुरावशेष हैं ।

श्रृंगवेरपुर के उत्खनन से मध्य गंगा घाटी की प्रारम्भिक संस्कृति के रूप में गैरिक मृद्भाण्डों की प्राप्ति विशेष महत्वपूर्ण हैं । द्वितीय सांस्कृतिक काल की कृष्ण–लोहित, कृष्ण लेपित एवं धूसर पात्र–परम्परा पश्चिमी बिहार तथा विन्ध्य क्षेत्र की ताम्रपाषाणिक संस्कृति से अनुप्राणित ानी जा सकती है ।

झूँसी

झूँसी की (अक्षांश 25^0 26′ 10′′उ0, देशान्तर 81^0 54′ 30′′ पू0) पहचान प्रतिष्ठानपुर से की गई है । गंगा–यमुना के संगम पर इलाहाबाद नगर के ठीक सामने स्थित लगभग 3 किलोमीटर के क्षेत्र में विस्तृत इस टीले (छायाचित्र 30) का अधिकांश भाग वर्तमान झूँसी गाँव द्वारा आबाद है । झूँसी के उत्खनन एवं खोज संम्बन्धी विवरण पूर्ववर्ती अध्याय में लिखा जा चुका है। यहाँ के उत्खनन से प्राप्त ताम्रपाषाण युगीन संस्कृति के सम्बन्ध में ही उल्लेख आवश्यक है । यहाँ के द्वितीय सांस्कृतिक काल का सम्बन्ध ताम्रपाषाण काल से है । इस सांस्कृतिक जमाव की मोटाई 4.36 मीटर मिलती है । यहाँ मृदभाण्ड चूल्हे तथा स्तम्भगर्त इस संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं (छायाचित्र 31) । इसको दो उपकालों में विभाजित किया गया है द्वितीय ए तथा द्वितीय बी । द्वितीय ए लौह रहित तथा द्वितीय बी लौह युक्त ताम्रपाषाणिक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं । यहाँ की मृदभाण्ड कला विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्यगंगा घाटी ताम्रपाषाणिक के सन्दर्भ में प्राप्त होती है । प्रमुख पात्र प्रकारों में घड़े (छायाचित्र 32, 33), कटोरे , होंठदार कटोरे (छायाचित्र 34), तश्तरियाँ, गिलास (छायाचित्र 35) आदि का उल्लेख किया जा सकता है। कुछ चित्रित पात्र खण्ड भी प्राप्त हुए हैं (छायाचित्र 36) । अन्य पुरासामग्रियों में हड्डी के बने बाणाग्र (छायाचित्र 37), उपरत्नों और मिट्टी के बने मनकों (छायाचित्र 38) का उल्लेख किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में ककोरिया (मिश्र 1999), कोलडिहवा (पाल 1986), राजानल का टीला (तिवारी और अन्य 1996–97 और 1997–1998),

छायाचित्र 30: झूँसी समुद्रकूप टीले का विहंगम दृश्य

छायाचित्र 31: झूँसी: ताम्रपाषाणिक धरातल के उत्खनन का दृश्य

छायाचित्र 32: झूँसी: ताम्रपाषाणिक घड़ा

छायाचित्र 33: झूँसी: ताम्रपाषाणिक छोटे आकार का घड़ा

छायाचित्र 34: झूँसीः ताम्रपाषाणिक होंठदार कटोरा
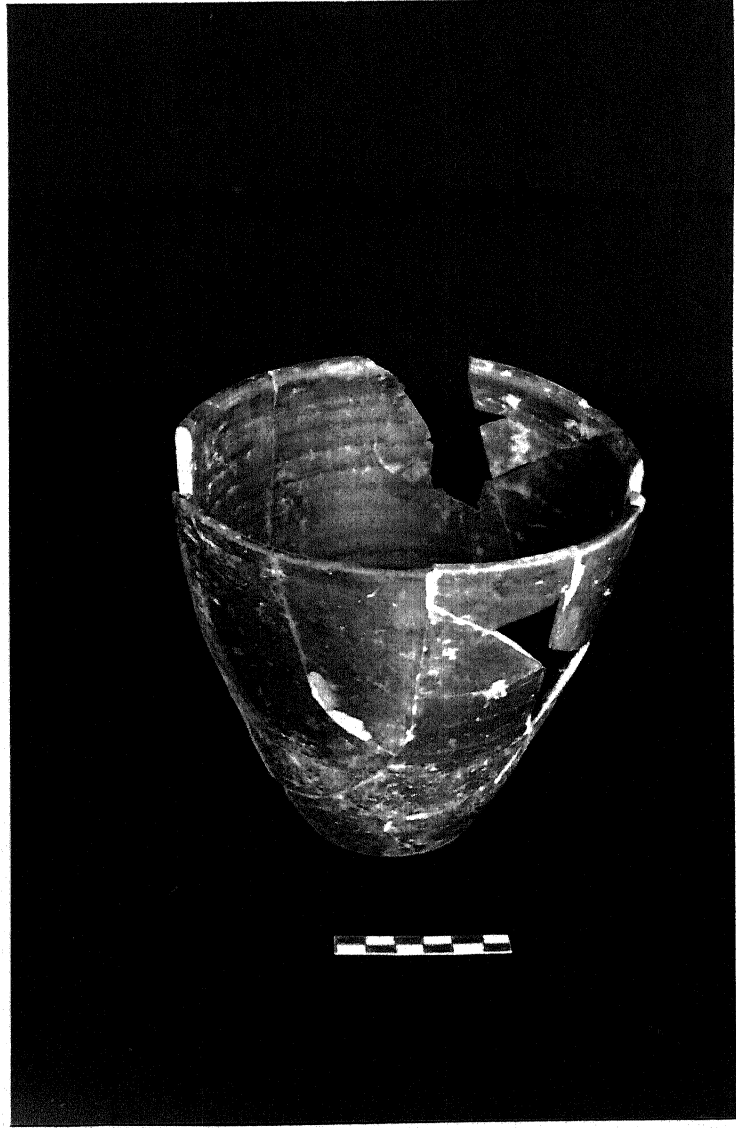
छायाचित्र 35: झूँसीः ताम्रपाषाणिक गिलास

छायाचित्र 36: झूँसी: ताम्रपाषाणिक चित्रित पात्र खण्ड

छायाचित्र 37: झूँसी: अस्थि निर्मित बाणाग्र
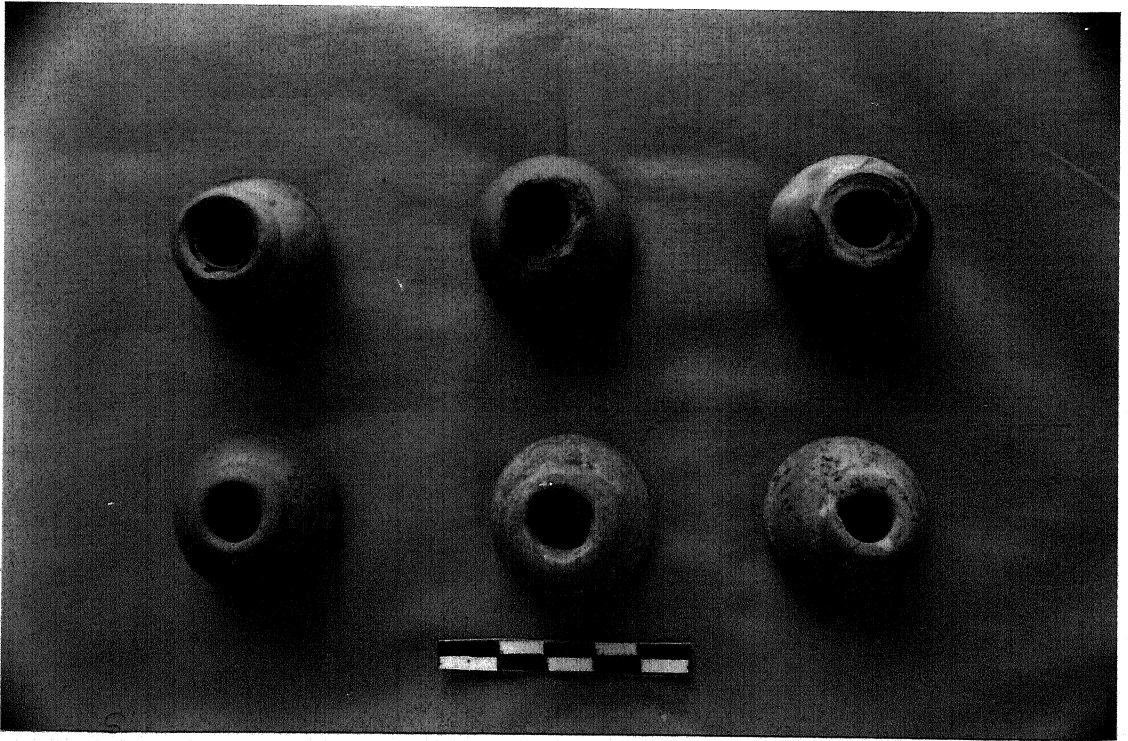
छायाचित्रः 38 झूँसीः घटाकृति के मिट्टी के मनके

मल्हार, इमलीडीह, खैराडीह, चिरांद, सेनुवार, ताराडीह, प्रहलादपुर, अगियावीर इत्यादि पुरास्थलों का उल्लेख तुलनात्मक अध्ययन से दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं ।

अगियाबीर

यह पुरास्थल (अक्षांश 25^0 13′ 52″ उ0, देशान्तर 82^0 38′ 41″ पू0) मिर्जापुर में गंगा नदी के बायें किनारे पर वाराणसी– इलाहाबाद राजमार्ग पर कटका रेलवे स्टेशन से दो किमी दक्षिण पूर्व में स्थित है । यह उल्लेखनीय तथ्य है कि यह स्थल मिर्जापुर सन्त रविदास नगर एवं वाराणसी जनपदों की सीमाओं के सन्धि स्थल पर स्थित है यह प्राचीन टीला गंगा की बाढ़ में अंशतः निमज्जित हो गया हे । इसको प्रकाश में लाने का श्रेय बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के पुरुषोत्तम सिंह एवं अशोक कुमार सिंह को है । यहाँ के उत्खननों के परिणामस्वरूप निम्नलिखित सांस्कृतिक अनुक्रम (सिंह और सिंह 1999–2000: 31–56) प्रकाश में आये हैं:

प्रथम सांस्कृतिक कालः– ताम्रपाषाण युगीन

द्वितीय सांस्कृतिक कालः– प्राक् एन0 बी0 पी0 डब्लू0 (लौह युक्त) युगीन

तृतीय सांस्कृतिक कालः– एन0 बी0 पी0 डब्लू0 युगीन

चतुर्थ सांस्कृतिक कालः– शुंगकुषाण युगीन

यहाँ के प्रथम एवं द्वितीय सांस्कृतिक काल की सस्कृति समसमायिक मध्य गांगेय मैदान की संस्कृति के समतुल्य है । इनमें इमलीडीह खुर्द, धुरियापार, वैना, खैराडीह, इत्यादि घाघरा और उसकी सहायक नदियों के तट पर स्थित है । इसी क्रम में सोनभद्र जनपद में राजानल का टीला, चन्दौली जनपद में स्थित, मल्हार इत्यादि उत्खनित पुरास्थलों का उल्लेख किया जा सकता है । अगियाबीर का संस्कृतिक अनुक्रम इलाहाबाद जनपद में स्थित झूँसी नामक पुरास्थल से साम्य रखते है ।

राजघाट

यह पुरास्थल (अक्षांश 25° 4′ 30″ उ0, देशान्तर 83° 1′ 30″ पू0) वाराणसी में गंगा के बायें तट पर स्थित है जिसकी पहचान प्राचीन वाराणसी (काशी) के रूप में की गयी है । इस स्थल का उत्खनन बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के ए0 के0 नारायण और टी0 एन0 राय ने कई वर्षो तक किया (नारायण एवं राय 1976, 1977)। इन उत्खननों से 800–700 ई0 पू0 से लेकर परवर्ती मध्य काल तक के छः क्रमिक सांस्कृतिक चरणों के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं । इनमें से प्रथम दो चरणों का सम्बन्ध प्रस्तुत अध्ययन काल से है।

प्रथम सांस्कृतिक काल 800–700 ई0 पू0 से लेकर 300–200 ई0 पू0 के मध्य रखा जा सकता है । इसे पुनः तीन चरणों– प्रथम 'ए', प्रथम–'बी' और प्रथम 'सी' के अन्तर्गत विभाजित किया गया है । इन तीनों ही चरणों में लौह उपकरण उपलब्ध हुए हैं । प्रथम चरण प्राक् एन0बी0पी0डब्लू0 संस्कृति का है । 3.55 मीटर के इस सांस्कृतिक जमाव से मुख्यतः ब्लैक–एंड–रेड वेयर और ब्लैक स्लिप्ड वेयर (कृष्ण लेपित पात्र परम्परा) तथा रेड वेयर (लाल पात्र परम्परा) के पात्र उपलब्ध हुए हैं । इसी तरह के ब्लैक स्लिप्ड वेयर (कृष्ण लेपित पात्र परम्परा) हस्तिनापुर के प्राक् एन0बी0पी0डब्लू0 जमाव से भी प्राप्त हुए थे । उल्लेखनीय है कि राजघाट के ब्लैक स्लिप्ड वेयर के पात्र हस्तिनापुर के द्वितीय चरण में मिलने वाले पी0जी0डब्लू0 (चित्रित धूसर पात्र परम्परा) के पात्रों से साम्य रखते हैं । राजघाट के कुछ ब्लैक एंड रेड वेयर (कृष्ण लेपित पात्र परम्परा) के पात्रों पर सफेद रंग से चित्र बना हुआ है । चित्रित अभिप्रायों में साधारण स्ट्रोकार्बन, लहरदार रेखाएं आदि सम्मिलित हैं । कभी–कभी इन चित्रों को बनाने के लिए मोटे ब्रश का भी प्रयोग किया गया है । इसी धरातल से चर्ट पर बना हुआ एक ब्लेड उपकरण भी उपलब्ध हुआ है । उत्खनन की खन्ती में इस धरातल से कोई लौह उपकरण नहीं मिला था और लाल पात्र परम्परा के कुछ बर्तनों का आकार–प्रकार चिरांद के ताम्रपाषाणिक धरातल के बर्तनों से साम्य रखता है । इस आधार पर इस धरातल को ताम्रपाषाणिक संस्कृति से समीकृत किया गया है (राय 1983: 51)।

प्रथम 'बी' चरण में पहली बार एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) के पात्र मिलते हैं । लेकिन पूर्ववर्ती ब्लैक–एण्ड–रेड (कृष्ण लेहित पात्र परम्परा) वेयर और ब्लैक स्लिप्ड वेयर (कृष्ण लेपित पात्र परम्परा) के पात्र चलते रहते हैं । यद्यपि उनकी संख्या घट जाती है । पकी मिट्टी के ईटों का प्रयोग भी इस चरण में दिखायी देता है । प्रथम 'सी' चरण और द्वितीय सांस्कृतिक काल परवर्ती एन0 बी0 पी0 डब्लू0 संस्कृति से सम्बन्धित किये गये हैं, जिन्हें 400–300 ई0 पू0 से लेकर ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी के मध्य रखा गया है । इस समय यहाँ नगरीकरण के प्रमाण मिलने लगते हैं । यहाँ का तीसरा सांस्कृतिक काल एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) के बाद का है, जिसमें रेड पालिस्ड वेयर (लाल लेपित पात्र परम्परा) के बर्तन मिलते हैं ।

प्रहलादपुर

प्रहलादपुर नामक पुरास्थल (अक्षांश 25^0 26' 30'' उ0, देशान्तर 83^0 27' 30'' पू0) गंगा के दाहिने तट पर चन्दौली जनपद में स्थित है । यह स्थल 1387 X 415 मीटर के क्षेत्र में विस्तृत है । बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के ए0 के0 नरायाण एवं टी0 एन0 राय ने 1963 में इस स्थल का उत्खनन किया था। यहाँ के 3.91 मीटर आवासीय जमाव को प्रारम्भिक, मध्य और परवर्ती (प्रथम 'ए', प्रथम 'बी' और प्रथम 'सी') चरणों में विभाजित किया गया है । प्रथम 'ए' चरण से ब्लैक स्लिप्ड वेयर (कृष्ण लेपित पात्र परम्परा), रेड वेयर, पी0जी0डब्लू0, (चित्रित धूसर मृदभाण्ड), मोटे प्रकार का रेड वेयर और सादे ग्रे वेयर के बर्तन प्राप्त हुए हैं । इस चरण से लौह उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं । अन्य पुरासामग्रियों में हड्डी के बाणाग्र, मृण्मूर्तियाँ, पाटरी डिस्क, अगेट, कार्नेलियन और मिट्टी के मनके उपलब्ध हुए हैं । प्रथम 'बी' चरण में पूर्णतः विकसित एन0बी0पी0डब्लू0 संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं। इसके साथ प्राक् एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृति की अन्य सामग्रियाँ– हड्डी के बाणाग्र, मिट्टी और मिट्टी के बर्तनों के दृश्य, मिट्टी के कोन और मिट्टी के बने मनके उपलब्ध हुए थे । पशुओं और मनुष्यों की मृण्मूर्तियाँ, लेख रहित आहत मुद्राएं, मिट्टी के वलयकूप भी इस चरण से प्राप्त हुए हैं। प्रथम 'सी' उपचरण परवर्ती एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र

कमौली

उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद में स्थित राजघाट के उत्खनन के समय इस स्थल की भी खोज की गयी थी और 1963–64 में छोटे पैमाने पर उत्खनन किया गया । साँचे दो सांस्कृतिक कालों के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं– प्रथम सांस्कृतिक काल आद्यैतिहासिक संस्कृति से सम्बन्धित हैं, जिसमें लाल पात्र–परम्परा (रेड वेयर) और चर्ट पर बना एक ब्लेड उपकरण प्राप्त हुआ था। टी0 एन0 राय ने इस स्थल के प्रथम उपचरण को ताम्र–पाषाणिक संस्कृति से समीकृत किया है (राय 1997, *इण्डियन आर्कयोलाजीः ए रिव्यू 1963--64*)। कमौली का दूसरा सांस्कृतिक काल परवर्ती मध्य काल से सम्बन्धित है ।

मसोनडीह

यह पुरास्थल उत्तर–प्रदेश के गाजीपुर जिले में गंगा–नदी के बायें तट पर स्थित है । इस स्थल का उत्खनन वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय के आर0 बी0 नारायण ने 1964–65 से लेकर 1970–71 तक चार वर्षो में कराया । यहाँ से उपलब्ध सांस्कृतिक सामग्रियाँ राजघाट के प्रथम चार सांस्कृतिक कालों की ही तरह उपलब्ध हुई हैं । यहाँ के प्रथम 'ए' सांस्कृतिक काल को प्रहलादपुर और राजघाट के प्राक् एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) सांस्कृतिक काल से समीकृत किया गया है । प्रथम 'बी' सांस्कृतिक काल से एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृति के प्रारम्भिक और परवर्ती चरण प्राप्त हुए हैं । तृतीय सांस्कृतिक काल एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) के बाद का है । यहाँ से भी ब्लैक स्लिप्ड वेयर और ब्लैक एंड रेड वेयर की पात्र–परम्पराएं और कुछ लघु–पाषाण उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं ।

सोहगौरा

यह पुरास्थल (अक्षांश 26^0 32″ उ0, देशान्तर 80^0 32″ पू0) जैसा कि नवपाषाणिक अधिवास प्रकार के संदर्भ में उल्लिखित किया जा चुका है कि आमी और राप्ती के संगम पर स्थित सोहगौरा स्थल के उत्खनन से पाँच सांस्कृतिक कालों के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं । प्रथम काल से रस्सी की छाप से हाथ से बने

हुए मिट्टी के बर्तन और कुछ अन्य नव–पाषाणिक सामग्रियाँ उपलब्ध हुई हैं । द्वितीय सांस्कृतिक काल में चाक पर निर्मित, चित्रित और सादे ब्लैक स्लिप्ड वेयर, चित्रित और सादे ब्लैक एंड रेड वेयर, भूरे रंग की पात्र परम्पराएं और लाल पात्र परम्पराओं के बर्तन उपलब्ध हुए हैं । कुछ पात्रों को आसंजन विधि से और कुछ को पक जाने बाद उत्कीर्णन विधि से अलंकृत किया गया है । जैस्पर, अगेट और स्टीएटाइट पर बने मनके और हड्डी के बने बाणाग्र भी उपलब्ध हुए है। इसीलिए इसे ताम्रपाषाणिक संस्कृति से समीकृत किया गया है। तीसरे सांस्कृतिक काल में यद्यपि एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) पात्र परम्पराएँ मिलने लगती हैं, लेकिन अन्य पूर्ववर्ती पात्र परम्पराएं भी चलती रहती हैं, एन0बी0पी0डब्लू (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) जमाव से युक्त तृतीय सांस्कृतिक काल को दो उपचरणों में विभाजित किया गया है, जिसके परवर्ती चरण में पकी मिट्टी की ईटों का प्रयोग दिखाई पड़ता है। इस चरण के धरातल के विभिन्न भागों से धान और गेहूँ के पके दाने और ढले सिक्के, हड्डी के बाणाग्र और तांबे तथा लोहे के अन्य उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं। यहाँ के चतुर्थ सांस्कृतिक काल में एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) नहीं मिलता । इस धरातल से कुषाण और अयोध्या मुद्राएं तथा वलयकूप प्राप्त होते हैं । पाँचवें सांस्कृतिक काल का सम्बन्ध मध्य काल से है ।

नरहन

नरहन पुरास्थल (अक्षांश 26^0 19′ उ0, देशान्तर 83^0 24′ पू0) गोरखपुर जनपद के बांसगाँव तहसील में घाघरा नदी के बायें तट पर स्थित है । 1984 से 1989 के बीच इस स्थल का विस्तृत उत्खनन बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो0 पुरूषोत्तम सिंह ने किया था (सिंह 1984: 120–122; 1994)। नरहन में दो मुख्य टीले हैं । प्रथम टीले का दो तिहाई भाग घाघरा नदी की कटान से पूर्णतः विनष्ट हो गया है और शेष बचे एक तिहाई भाग पर वर्तमान नरहन गाँव स्थित है। लेकिन गाँव के पश्चिमी दिशा में लगभग 350 X 250 मीटर का क्षेत्र पुरातात्विक अन्वेषण के लिए उपलब्ध है। प्रथम टीले पर किये गये उत्खनन से प्रथम दो सस्कृति के प्रमाण और द्वितीय टीले के उत्खनन में बाद की तीन संस्कृतियों के

प्रमाण उपलब्ध हुए हैं । यहाँ के प्रथम सांस्कृतिक काल का जमाव लगभग 1 मीटर के जमाव में मिलता है जो अन्य किसी भी स्थल की अपेक्षा ताम्रपाषाणिक संस्कृति के सम्बन्ध में अधिक मोटा है । यहाँ पर ब्लैक एंड रेड वेयर (कृष्ण लोहित पात्र परम्परा) पात्र परम्परा लगभग 97.7% है (रेखाचित्र 28) । चित्रित पात्र परम्परा के लिए यह स्थल विशेष उल्लेखनीय है (रेखाचित्र 29, 30)। यद्यपि इस सास्कृतिक काल की पात्र परम्परा और अन्य पुरा सामग्रियाँ ताम्रपाषाणिक के मिलने के कारण इस स्थल के उत्खननकर्त्ता पुरूषोत्तम सिंह ने इसे नरहन संस्कृति का नाम दिया है। नरहन संस्कृति के लोग बाँस–बल्ली से निर्मित झोपड़ियों में निवास करते थे जिसके प्रमाण स्तम्भ गर्त और बॉस–बल्ली के निशान से युक्त जली मिट्टी के टुकड़ों के रूप में मिलते हैं । दो क्रमिक फर्श और चूल्हे भी उत्खनन में प्राप्त हुए हैं । इस धरातल से बहुत से अनाजों के प्रमाण भी उपलब्ध हुए हैं जिनमें जौ (हर्डियम बुल्डार), गेहूँ (कई प्रजातियों–क्लब व्हीट, ब्रेड, व्हीट, ड्वार्फ व्हीट) और धान, दालों में मटर, मूँग, चना, खेसारी, तथा सरसों और बर्रे के प्रमाण मिलते हैं। इस धरातल से कटहल के प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं । यद्यपि इस स्थल के प्रथम निवासियों ने बड़े पैमाने पर कृषि को अपनाया था लेकिन जली हुई और काटने के निशान से युक्त पशुओं की हड्डियों से लगता है कि माँस भी इनके भोजन का अभिन्न अंग था । पशुओं की हड्डियों में बैल, भेड़, बकरी, हिरण और घोड़े की पहचान की गयी है । अन्य पुरासामग्रियों में मिट्टी के बर्तन के टुकड़े से बने हुए छिद्र युक्त और बिना छिद्र के डिस्क, हड्डी के बाणाग्र, पकी मिट्टी के बने हुए तकुए और गोले सम्मिलित हैं । पत्थर और स्टीयटाइट के एक–एक मनके भी प्राप्त हुए हैं । नरहन का इसके बाद का सांस्कृतिक अनुक्रम सोहगौरा की ही तरह है ।

इमलीडीह खुर्द

इमलीडीह खुर्द (सिंह, पी0 1994 120–122) (अक्षांश 26^0 30 '30'' उ0, देशान्तर 83^0 12' 5'' पू0) नामक पुरास्थल का उत्खनन भी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के पुरुषोत्तम सिंह द्वारा 1992 से 1995 तक किया गया । गोरखपुर जनपद में घाघरा की सहायक कआनो नदी के बायें तट पर स्थित इस स्थल के उत्खनन से तीन सांस्कृतिक कालों के प्रमाण प्राप्त हुए हैं । प्रथम सांस्कृतिक काल
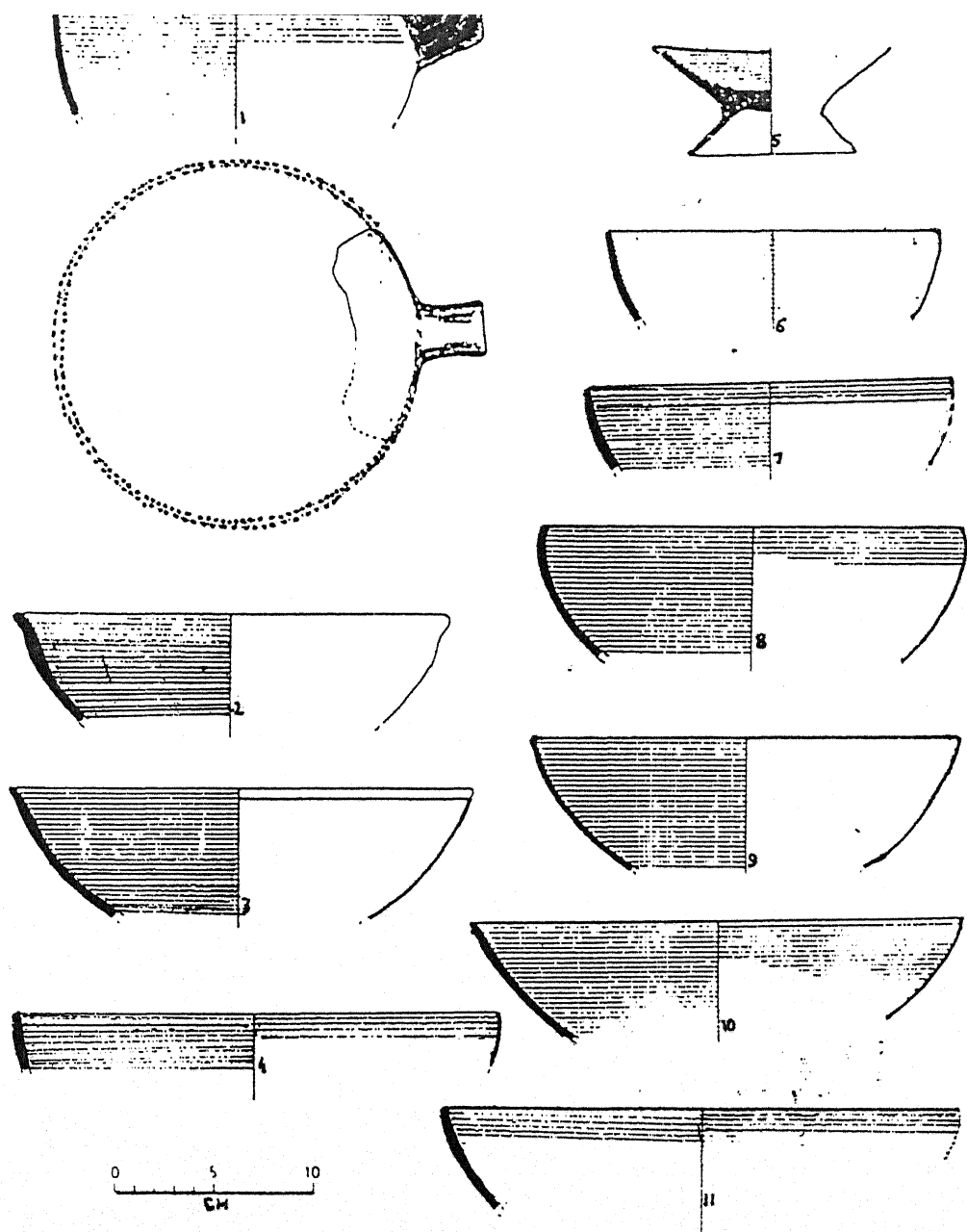
रेखाचित्र 28: नरहनः कृष्ण–लोहित परम्परा के पात्र
(पी0 सिंह के अनुसार)
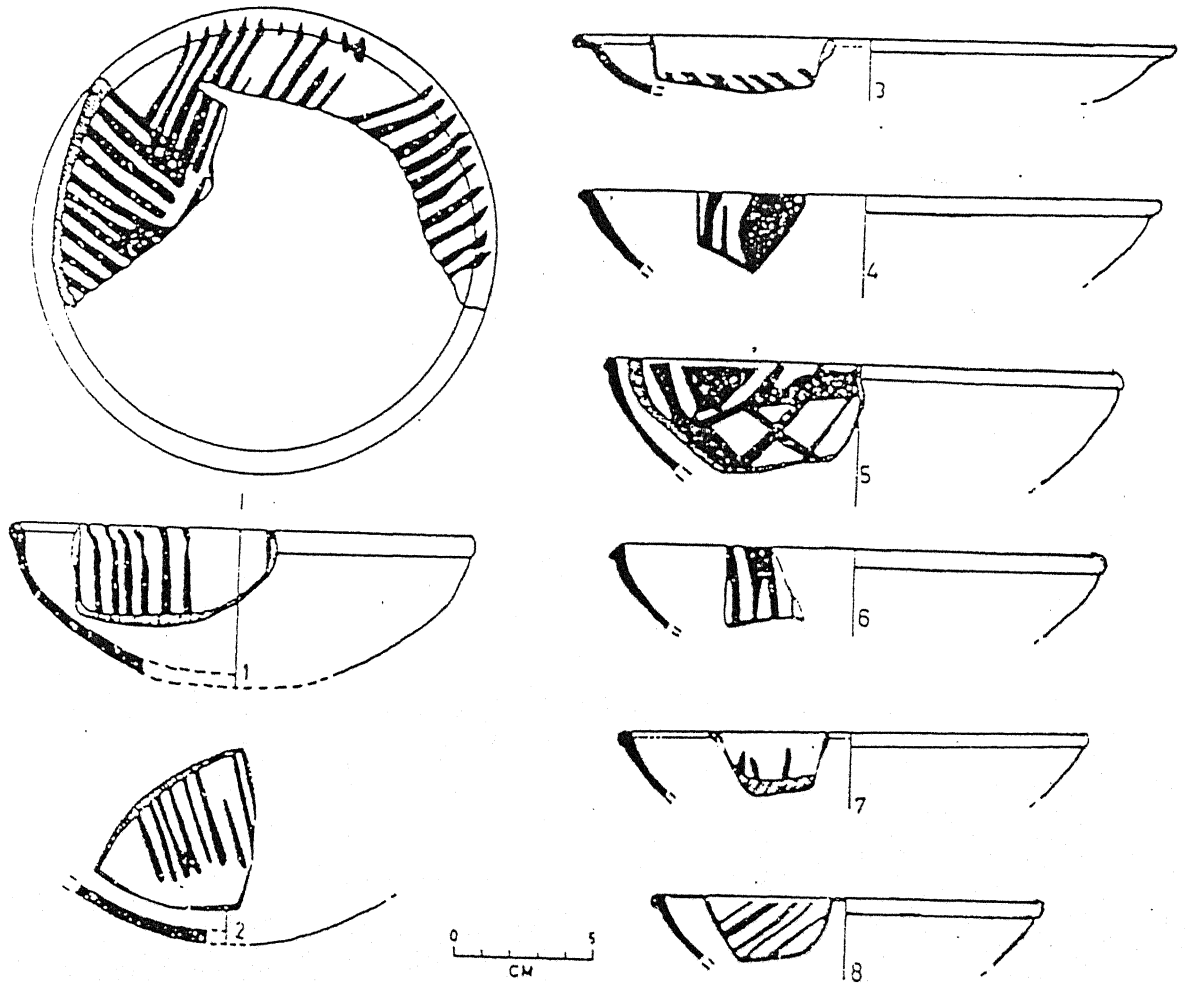
रेखाचित्र 29: नरहनः लाल और चित्रित काले पात्र खण्ड़
(पी० सिंह के अनुसार)
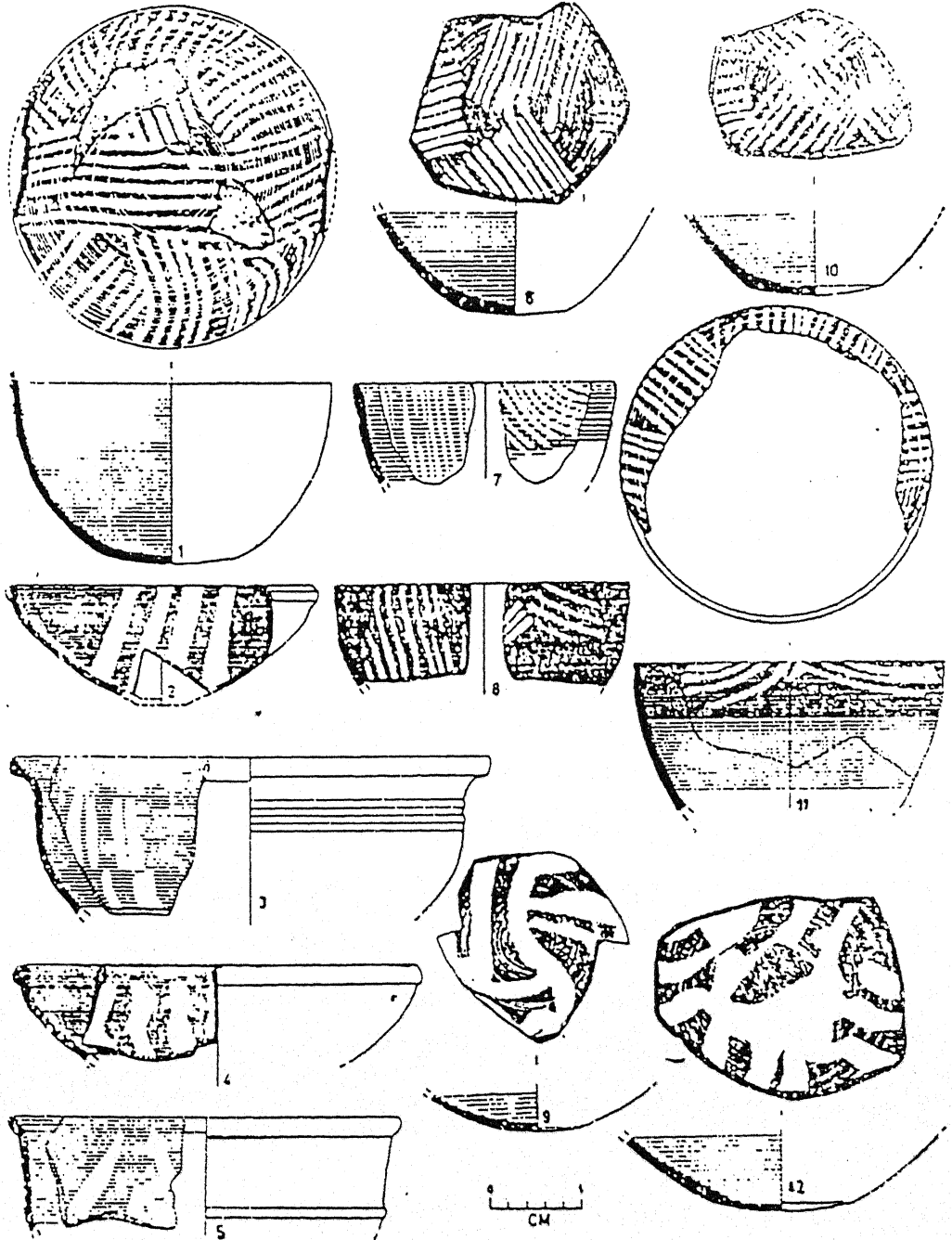
रेखाचित्र 30: नरहनः सफेद चित्रित तथा कृष्ण–लोहित पात्र प्रकार
(पी० सिंह के अनुसार)

से नवपाषाण कालीन पुरावशेषों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। जिनके आधार पर इस संस्कृति को मध्य गंगाघाटी के अन्य नवपाषाणिक पुरास्थलों से समीकृत किया जा सकता है। बाँस–बल्ली के निशान से युक्त जली मिट्टी के टुकड़े, मिट्टी के बने फर्श और चूल्हे प्राप्त हुए हैं । स्तम्भगर्त का साक्ष्य आवासीय झोपड़ियों के निर्माण की ओर इंगित करता है । कुछ मिट्टी की पतली दीवालों से बनी हुई गोलाकार संरचनाएं भी मिली हैं जिनका प्रयोग अनाज रखने के लिए किया जाता था। अन्य पुरावशेषों में स्टीयटाइट के लघु मनके, मिट्टी, अगेट और फ्यान्स के मनके, हड्डी के बाणाग्र और मिट्टी के बर्तनों के टुकड़ों से बने डिस्क को विशेष रुप से उल्लिखित किया जा सकता है । इस संस्कृति को नवपाषाणिक संस्कृति से सम्बंधित करते हुए उत्खननकर्त्ता ने प्राक् नरहन संस्कृति से अभिहित किया है । यहाँ से उपलब्ध पशुओं की बहुसंख्यक हड्डियाँ प्राप्त हुई है। इनका व्यवस्थित अध्ययन के पश्चात् पशुओं की पहचान की गयी है । इनमें मुख्य रुप से गाय, बैल, भेड़, बकरी, सुअर, हिरण और भेड़िया आदि की गणना की जाती है। मछली, घोंघे और कछुए के अस्थि अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। जिससे उनकी खाद्य सामाग्री में जलचरों को सम्मिलित किया जा सकता है । धान, जौ, गेहूँ, ज्वार, सांवा, बाजरा, मटर, खेसारी, मूँग, तिल आदि खाद्यान्नों के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

इमलीडीह का द्वितीय सांस्कृतिक काल ताम्रपाषाणिक संस्कृति से सम्बन्धित है जिसे उत्खननकर्त्ता ने नरहन संस्कृति का नाम दिया है । इस सांस्कृतिक काल के अवशेष नरहन के प्रथम सांस्कृतिक काल की ही तरह हैं ।

इमलीडीह का तीसरा सांस्कृतिक धरातल अधिक विकसित नहीं है क्योंकि इस स्थल का उपरिवर्ती भाग आधुनिक कृषि कार्यों से प्रायः विनष्ट हो गया है। इस धरातल से ब्लैक एंड रेड वेयर के पात्र नहीं मिलते हैं। लाल–पात्र–परम्परा (रेड वेयर) ब्लैक स्लिप्ड वेयर और कुछ एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) पात्र–पारम्पराओं के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं । इस स्थल के तृतीय सांस्कृतिक काल को नरहन के द्वितीय सांस्कृतिक काल के समकक्ष रखा है। तिथिक्रम की दृष्टि से इसके लिए 800 से 400 ई0 पू0 का समय निर्धारित किया गया है ।

भूनाडीह

यह पुरास्थल बलिया से 28 किलोमीटर उत्तर, बलिया सिकन्दरपुर सड़क पर जनवन से 2 किलोमीटर पूर्व बहेरा नाले के दाहिने तट पर स्थित है । चार एकड़ के क्षेत्र में विस्तृत यह स्थल एक मीटर ऊँचे टीले के रूप में है । वर्तमान आबादी वाले इस स्थल के पुरावशेष और स्तरीकरण काफी सीमा तक अस्त–व्यस्त हैं । बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के पुरुषोत्तम सिंह ने इस स्थल का उत्खनन किया और दो संस्कृतियों के प्रमाण प्रकाश में आये । प्रथम सांस्कृतिक काल को प्रथम 'ए' और प्रथम 'बी' दो चरणों में विभाजित किया गया है । प्रथम 'ए' संस्कृति के प्रमाण टीले के पश्चिमी भाग में दो मीटर X दो मीटर के खन्ती में किए गये उत्खनन से प्राप्त हुए हैं । इस चरण की पात्र–परम्परा इमलीडीह और सोहगौरा के प्रथम चरण की ही तरह है । जिसमें रस्सी के छाप वाली लाल पात्र–परम्परा, टोंटीयुक्त लाल बर्तन और अन्य पात्र प्रकार उपलब्ध हुए हैं । इस धरातल से झोपड़ियों के प्रमाण बाँस–बल्ली के निशान से युक्त जली मिट्टी के टुकड़ों के रूप में मिलते हैं । स्टीयटाइट के लघु मनके और मिट्टी के बर्तनों से बने डिस्क भी प्राप्त हुए हैं । उत्खाता ने इस संस्कृति को प्राक् नरहन संस्कृति के अर्न्तगत रखा जो नवपाषाणिक संस्कृति के अर्न्तगत परिगणनीय है । प्रथम 'बी' चरण से प्राक् नरहन अर्थात् नवपाषाणिक और ताम्रपाषाणिक संस्कृति के संक्रमण के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं । इस चरण के संरचनात्मक प्रमाण प्रथम 'ए' की ही तरह हैं । पात्र परम्परा में रस्सी की छाप वाले और सादे ब्लैक एंड रेड वेयर, ब्लैक स्पिल्ड वेयर और रेड वेयर के बर्तन मिलते हैं । प्रमुख पात्र–प्रकारों में साधार कटोरे, डिस आन स्टैंड आदि हैं । मिट्टी स्टीयटाइट और उपरत्नों के मनके तथा पाटरी डिस्क इस चरण में भी मिले हैं ।

द्वितीय सांस्कृतिक काल में भी झोपड़ियों के अवशेष उपलब्ध हुए हैं और शेष प्रमाण पूर्ववर्ती चरणों की ही तरह प्राप्त हुए हैं ।

धुरयापार

यह स्थल गोरखपुर से लगभग 46 किलोमीटर दक्षिण कुँआनों नदी के बायें तट पर पर स्थित है । लगभग 1.5 किलोमीटर के विस्तृत क्षेत्र में आवास के प्रमाण तीन छोटे गाँव जगदीशपुर, बाँसडीह, और धुरियापार में प्राप्त हुए हैं । नरहन में उत्खनन करते समय इस स्थल की खोज की गई थी। अप्रैल–मई 1991 में इस स्थल के सांस्कृतिक अवशेष को समझने के लिए 3 X 3 मीटर के वर्ग क्षेत्र में उत्खनन किया गया था । जिसमें पाँच सांस्कृतिक कालों के प्रमाण उपलब्ध हुए थे। प्रथम सांस्कृतिक काल में सफेद रंग से रेखीय चित्र युक्त ब्लैक एंड रेड वेयर, ब्लैक स्लिप्ड वेयर, ग्रे वेयर और रेड वेयर के बर्तन प्राप्त हुए थे । मिट्टी की गोलियाँ, मनके, हड्डी के बाणाग्र और कंघी तथा पाटरी डिस्क जैसे उपकरण नरहन संस्कृति (ताम्रपाषाणिक संस्कृति) की तरह हैं ।

द्वितीय सांस्कृतिक काल में एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) और उससे सम्बन्धित अन्य पात्र परम्पराएं मिली हैं । तृतीय सांस्कृतिक काल कुषाण और गुप्त काल से सम्बन्धित है । तृतीय सांस्कृतिक काल के बाद लगभग 400 वर्षो तक यह स्थल वीरान रहा । चौथा सास्कृतिक काल 900 से 1500 ई0 के मध्य रखा गया है जो मध्य काल से सम्बंधित है । अन्त में ब्रिटिश काल में पुनः यहाँ पर आबादी के प्रमाण मिलते हैं और यहाँ आज भी अ.बादी है। (सिंह 1996) ।

खैराडीह

यह स्थल बलिया जिले में बेलथरा रोड़ (अक्षांश 26° 10′ 30″ उ0, देशान्तर 85° 51′ 30″ पू0) से लगभग 8 किलोमीटर उत्तर–पूर्व दिशा में घाघरा नदी के दाहिने तट पर स्थित है । बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के पुरुषोत्तम सिंह ने इस स्थल का 1980–81 से लेकर 1985–86 के बीच 5 वर्षों तक उत्खनन किया जिससे तीन सांस्कृतिक कालों के प्रमाण प्राप्त हुए हैं । प्रथम सांस्कृतिक काल से चित्रित और सादे ब्लैक–एंड–रेड वेयर, ब्लैड स्लिप्ड वेयर, के बर्तन उपलब्ध हुए है। स्तम्भगर्त तथा बॉस–बल्ली के निशान से युक्त जली मिट्टी के टुकड़े और मिट्टी

की दीवाल के अवशेषों से प्रतीत होता है कि प्रथम चरण के लोग मिट्टी से निर्मित घरों और झोपड़ियों में निवास करते थे । मिट्टी की दीवाल की ऊँचाई और चौड़ाई क्रमशः 1.06 मीटर और 0.62 मीटर उपलब्ध हुई है । उल्लेखनीय है कि दीवाल अथवा स्तम्भगर्तो के साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि यह पूरे घर का आकार रहा होगा । इस चरण की पात्र–परम्परा चिरांद, ताराडीह, सेनुवार, नरहन, माँझी आदि स्थलों के चित्रित और सादे ब्लैक–एंड–रेड वेयर और ब्लैक स्लिप्ड वेयर से साम्य रखते हैं । इस धरातल से कुछ रस्सी की छाप वाले मिट्टी के बर्तन भी उपलब्ध हुए थे । अन्य पुरासामग्रियों में पुच्छल और साकेट युक्त हड्डी के बाणाग्र, पशुओं और पक्षियों की हड्डियाँ आदि भी उपलब्ध हुई हैं । कुछ हड्डियाँ जली हुई हैं और कुछ पर काटने के निशान बने हुए हैं । दो छिद्रों से युक्त साकेट युक्त ताँबे का बाणाग्र उपलब्ध हुआ है । इस चरण के लोग कृषि से परिचित थे जिसके प्रमाण धान की भूसी के रुप में मिट्टी के बर्तनों और जली मिट्टी के टुकड़ों से प्राप्त होते हैं । विभिन्न आकार के स्टीयटाइट के डिस्क के आकार के मनके, अगेट, कार्नेलियन, चर्ट और चल्सिडनी के मनके और कुछ मृण्मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई हैं।

द्वितीय चरण से एन0 बी0 पी0 डब्लू संस्कृति के मुख्यतः प्रारम्भिक चरण की पुरासामग्रियाँ उपलब्ध हुई हैं । इस चरण को प्रारम्भिक और परवर्ती दो चरणों में विभाजित किया गया है । तृतीय चरण ई0 के प्रारम्भिक शताब्दियों का है, जिसमें लाल पात्र परम्परा के बर्तन और कुषाण शैली में निर्मित मानव मृण्मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं ।

चिरांद

चिरांद (अक्षांश 25^0, 48′ उ0, देशान्तर 84^0 50′ पू0) बिहार के सारन जिले में छपरा से 11 किलोमीटर पूर्व घाघरा के तट पर स्थित है। जिसका उत्खनन बी0 पी0 सिन्हा और बी0 एस0 वर्मा ने 1962–63, 63–64 और 64–65 और पुनः 1968–69, और 69–70 और 70–71 में किया था । प्रथम तीन सत्रों में किये गये उत्खनन से तीन क्रमिक संस्कृतियाँ प्रकाश में आई थी। 1967–69 में किये

उत्खनन में इस स्थल के ऊपरी धरातल से चौथी संस्कृति प्रकाश में आई जो कल्चुरि राजवंश (1045 ई0) और पाल काल से सम्बन्धित है। 1969–70 के उत्खनन से नवपाषाणिक जमाव स्पष्टतः प्रकाश में आये। लेकिन 1970–71 के उत्खनन में यहाँ की नवपाषाणिक और ताम्रपाषाणिक जमाव से इन संस्कृतियों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है । प्रथम सांस्कृतिक काल का प्रमाण निम्नतम 3.50 मीटर के जमाव से उपलब्ध हुआ है जिसका सम्बंध नवपाषाण काल से है

जैसा कि इसके पहले के अध्याय में उल्लेख किया गया है कि इस स्थल पर नवपाषाण काल से ही आबादी प्रारम्भ हुई थी । यहाँ के द्वितीय सांस्कृतिक काल को दो उपकालों द्वितीय 'ए' और द्वितीय 'बी' में विभाजित किया गया है, जो ताम्रपाषाणिक संस्कृति से सम्बन्धित हैं । द्वितीय 'ए' चरण में सादे और चित्रित ब्लैक स्लिप्ड वेयर, ब्लैक–एण्ड–रेड वेयर तथा बर्निश्ड अथवा सादे लाल पात्र–परम्परा और भूरे पात्र–परम्परा के बर्तन मिलते हैं । चित्रण अभिप्रायों में डैस का सम्बन्ध लहरदार और सीधी रेखाओं से है । घड़ों को कंधे के पास चित्रित किया गया है । द्वितीय 'बी' सांस्कृतिक काल से लौह उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं। अन्य सास्कृतिक सामग्रियाँ द्वितीय 'ए' की ही तरह हैं । इस चरण से भी (द्वितीय बी) आवासीय झोपड़ियों के प्रमाण मिले हैं लेकिन उनका आकार अब बड़ा हो गया था । तृतीय सांस्कृतिक काल एन0 बी0पी0 डब्लू0 संस्कृति से सम्बन्धित है लेकिन इसमें पूर्ववर्ती ब्लैक स्लिप्ड वेयर और कृष्ण, लोहित पात्र–परम्परा के बर्तन मिलते हैं। एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृति अध्याय के अर्न्तगत इसका विवेचन अग्रिम पंक्तियों में है ।

माँझी

बिहार के सारन जिले में घाघरा नदी के बायें तट पर यह स्थल स्थित है। केन्द्रीय सरकार द्वारा संरक्षित इस स्थल का उत्खनन बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के टी0 एन0 राय ने 1983–84 और 84–85 में किया था (*इण्डियन आर्कियोलाजीः ए रिव्यू* 1983–84: 15–16, *इण्डियन आर्कियोलाजीः ए रिव्यू 1984–85:* 12–13)।

इस उत्खनन से प्राक् बुद्ध काल से लेकर मध्य काल तक के सांस्कृतिक अवशेष उपलब्ध हुए हैं । प्रथम चरण से ब्लैक–एंड–रेड वेयर, ब्लैक स्लिप्ड वेयर और रेड वेयर के पात्र उपलब्ध हुए हैं जो ताम्रपाषाणिक पात्र–परम्परा के अनुरूप हैं । द्वितीय सांस्कृतिक काल को द्वितीय 'ए', द्वितीय 'बी' और द्वितीय 'सी' तीन चरण में विभाजित किया गया है द्वितीय–ए उपचरण में प्रारम्भिक एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं, जिनमें बड़ी संख्या में पूर्णतः निर्मित और अर्द्धनिर्मित हड्डी के उपकरण, पत्थर के सार्पनर, ताबें की चूड़ियाँ और अस्पष्ट प्रकार का एक लौह उपकरण सम्मिलित हैं । द्वितीय 'बी' उपचरण से अधिक अच्छे प्रकार की सामग्रियाँ उपलब्ध हुई हैं, और द्वितीय 'सी' उपचरण से रूक्ष प्रकार के एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) प्राप्त हुए हैं । अन्य पुरा सामग्रियों में आहत सिक्के, बड़ी संख्या में हड्डी के उपकरण, डिस्क, मृण्मूर्तियाँ, शीशे की चूड़ियाँ, तांबे और लोहे के उपकरण, घोड़े की एक मृष्मूर्ति और ढक्कनयुक्त एक पाषाण मंजूषा सम्मिलित है। तृतीय सांस्कृतिक काल का समय शक–कुषाण काल से है, जिसमें पकी ईटों से निर्मित दीवालें प्राप्त हुई हैं । एक लम्बे अन्तराल के बाद चतुर्थ सांस्कृतिक काल का जमाव मिलता है, जिसमें कुछ ग्लेज्डवेयर (कांचलित पात्र–परम्परा) के बर्तन प्राप्त हुए हैं । इस आधार पर इसे मध्य युग से सम्बन्धित किया जा सकता है ।

मानेर

पटना जिले में स्थित मनेर का उत्खनन पटना विश्वविद्यालय के भगवान सहाय के निर्देशन में किया गया था (*इण्डियन आर्कियोलाजीः ए रिव्यू 1984–85: 11–12*)। इस उत्खनन से यहाँ पर तीन सांस्कृतिक कालों के प्रमाण प्राप्त हुए हैं । प्रथम सांस्कृतिक काल के प्रमाण पांचवें स्तर से उपलब्ध हुए हैं । जिसमें ब्लैक एंड रेड वेयर, रेड वेयर तथा कुछ ब्लैक वेयर के पात्र उपलब्ध हुए हैं । इस चरण से लघु पाषाण उपकरणों का एक कोर, ब्लेड, मिट्टी की गोलियाँ या गोले तथा पत्थर के मनके उपलब्ध हुए हैं जो ताम्र पाषाणिक संस्कृति से सम्बन्धित हैं। द्वितीय सांस्कृतिक काल एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृति से सम्बन्धित हैं जिसमें लोहे के उपकरण, मिट्टी और पत्थर के मनके, पकी मिट्टी का

बना हुआ थपुआ, पत्थर की गोलियाँ, सिल–लोढ़े और मानव और पशु मृण्मूर्तियाँ, ताँबे की चूड़ियाँ, चक्र, मापक सामग्री आदि प्राप्त हुए हैं । तृतीय संस्कृतिक काल एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृति के बाद का है जो पाल काल से समीकृत किया गया है ।

ओरियप

बिहार के भागलपुर जिले में अन्तीचक से दो किलोमीटर दक्षिण–पश्चिम दिशा में यह स्थल स्थित है । 1966–67 में बी0 पी0 सिन्हा और आर0 पी0 सिंह के द्वारा इसका उत्खनन किया गया, जिसके फलस्वरूप चार सांस्कृतिक कालों के प्रमाण प्राप्त हुए है (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू 1966–67:* 6–7)। प्रथम सांस्कृतिक काल में चित्रित और सादे ब्लैक स्लिप्ड वेयर और रेड वेयर के पात्र उपलब्ध हुए हैं। इनके साथ हड्डी के बाणाग्र, हड्डी की बनी हुई कटिया, तांबे की बनी चूड़ियाँ और लघु पाषाण उपकरण उपलब्ध हुए हैं। इस आधार पर इस सांस्कृतिक चरण को मध्य गंगाघाटी के ताम्रपाषाणिक संस्कृति से सम्बन्धित किया गया है। बिना किसी सांस्कृतिक व्यतिक्रम के इस स्थल पर द्वितीय सांस्कृतिक काल के प्रमाण मिलते हैं, जिसमें प्रारम्भिक एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृतिक से सम्बन्धित लोहे के उपकरण, हड्डी के बाणाग्र और अच्छे प्रकार के एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) ब्लैक स्लिप्ड वेयर, ग्रे वेयर, ब्लैक–एंड–रेड वेयर और रेड वेयर के पात्र उपलब्ध हुए हैं । इसके उपरान्त संभवतः यह स्थल काफी समय तक वीरान रहा, जिसके बाद पाल काल में यह पुनः आबाद हुआ जिसे तृतीय सांस्कृति काल नाम दिया गया है । यहाँ पर चतुर्थ सांस्कृतिक काल मध्य युग से सम्बन्धित था ।

चम्पा

यह स्थल भागलपुर से पाँच किलोमीटर पश्चिम में स्थित है, जिसका उत्खनन पटना विश्वविद्यालय के बी0 पी0 सिन्हा और आर0 पी0 सिन्हा ने 1969–70 और 710–71, 71–72 में किया (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू 1982–83:* 15–16)। बी0 नारायण और ए0 के0 सिंह ने इस स्थल पर 1974–75

और 76–77 में पुनः उत्खनन किया । इन उत्खननों से तीन सांस्कृतिक कालो के जमाव प्राप्त हुए है । 1974–75 में किये गये उत्खनन से रूक्ष ब्लैक–एंड–रेड वेयर के पात्र निम्न धरातल से उपलब्ध हुए थे, जिसे चिरांद के ताम्र पाषाणिक संस्कृति के समरूप माना गया है (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू 1974–75*: 8–9)। लेकिन अन्य उत्खननों से प्राप्त सांस्कृतिक सामग्री को जिन तीन कालों में विभाजित किया गया है उनमें प्रथम काल है एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृति के परवर्ती चरण जिसमें एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) ब्लैक–एंड–रेड वेयर, ब्लैक वेयर, ग्रे वेयर, और रेड वेयर के पात्र, लोहे और तांबे के उपकरण, मानव और पशु मृण्मूर्तियाँ, हड्डी के बाणाग्र, शीशे के मनके, आदि उपलब्ध हुए हैं । हाथी दाँत की एक नारी मूर्ति, एक चित्रित एन0 बी0 पी0 डब्लू0 पात्र खण्ड उल्लेखनीय हैं । इस काल से 40 X 25 X 7 सेंटीमीटर के आकार की पकी ईटों से बनी हुई एक दीवाल, वलयकूप तथा मिट्टी से निर्मित रक्षा प्राचीर प्राप्त हुई हैं । टी0 एन0 राय के अनुसार क्योंकि यह स्थल एन0बी0पी0डब्लू0 संस्कृति के मध्यवर्ती क्षेत्र में आता है और जैन तथा बौद्ध साहित्यों में बुद्ध और महावीर के समय के छः प्रमुख नगरों में इसकी गणना की जाती थी, अतः इस स्थल की और गहन खोजों से प्राचीन संस्कृति के प्रमाण मिल सकते हैं (राय 1983: 49)। इस स्थल के द्वितीय और तृतीय सांस्कृतिक काल क्रमशः गुप्त युग और मध्य युग से सम्बन्धित हैं ।

चेचर–कुतुबपुर

चेचर–कुतुबपुर (अक्षांश 25° 35′ उ0 देशान्तर 85° 20′ पू0) का उल्लेख नवपाषाणिक संदर्भ में पहले ही किया जा चुका है। यहाँ का प्रथम 'ए' सांस्कृतिक काल नवपाषाणिक संस्कृति से सम्बन्धित है। प्रथम 'बी' सांस्कृतिक काल का सम्बन्ध ताम्रपाषाणिक संस्कृति से है, इस चरण की पात्र परम्परा अन्य ताम्रपाषाणिक पात्र परम्पराओं की ही तरह हैं । यहाँ के प्रथम–सी सांस्कृतिक उपचरण से भी हड्डी के उपकरण और ब्लैक–एंड–रेड वेयर उपलब्ध हुए हैं जिसमें कुछ पात्रों पर तिरछे स्ट्रोक या बिन्दु सफेद रंग से चित्रित किये गये हैं । गेरू रंग के बने चित्र

इस चरण में भी मिलते हैं । इस स्थल से हड़प्पन परम्परा का स्टीयटाइट डिस्क आकार के लघु मनके भी उपलब्ध हुए हैं ।

द्वितीय सांस्कृतिक काल से एन0 बी0 पी0 डब्लू0 संस्कृति का प्रारम्भ होता है। इस चरण में भी पूर्ववर्ती ब्लैक–एण्ड–रेड पात्र–परम्परा चलती रहती है। एक–दो मीटर गहरे और पाँच मीटर चौड़े गड्ढ़े से पकी ईटें और लौह उपकरण तथा बड़े पैमाने पर पकी पकी ईटों से निर्मित संरचनाओं के प्रमाण मिलते हैं जिसे कुषाण काल से समीकृत किया गया है ।

सोनपुर

यह स्थल बिहार के गया जिले में बेला रेलवे स्टेशन से 4.2 किलोमीटर पश्चिम यमुना नदी के तट पर स्थित है। सर्वप्रथम इस स्थल का उत्खनन 1955–56 में के0 पी0 जायसवाल शोध संस्थान के विजयकान्त मिश्र द्वारा किया गया । दो वर्ष के उपरान्त इसी संस्थान के बी0 एस0 वर्मा ने 1959–60 से 1961–62 के बीच पुनः उत्खनन किया । 1970–71 में बी0 पी0 सिन्हा और लाला आदित्य नारायण ने इस स्थल पर पुनः उत्खनन किया और कई क्रमिक संस्कृतियों के प्रमाण प्राप्त हुए । प्रथम संस्कृति ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति से सम्बन्धित है । इस सांस्कृतिक काल में ब्लैक–एंड–रेड वेयर, ब्लैक स्लिप्ड वेयर और रेड वेयर के पात्र प्राप्त हुए है । ब्लैक–एण्ड–रेड वेयर के पात्र खण्ड पर रेखीय चित्र बनाये गये है । इस धरातल से हड्डी के बाणाग्र और तांबे की पिन प्राप्त हुई है । बाँस–बल्ली के निशान से युक्त जली मिट्टी से झोपड़ी का अनुमान किया जा सकता है । इसी सांस्कृतिक काल में लघु पाषाण उपकरणों में कोर, प्वाइन्ट, अर्द्ध चन्द्र और त्रिभुज जैसे उपकरण भी प्राप्त हुए हैं । ये उपकरण, अगेट, चर्ट और चाल्सिडनी जैसे पत्थरों पर निर्मित हैं। यहाँ के द्वितीय सांस्कृतिक काल से एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) और लौह उपकरण मिलते हैं ।

ताराडीह

नवपाषाणिक संस्कृति के संदर्भ में उल्लेख किया जा चुका है कि बिहार राज्य पुरातत्व विभाग के ए0 के0 प्रसाद द्वारा इस स्थल पर किये गये उत्खनन से

नवपाषाण काल से लेकर पाल काल तक के सांस्कृतिक अवशेष उपलब्ध हुए हैं । ताम्रपाषाणिक संस्कृति यहाँ का दूसरा सांस्कृतिक काल है । ताम्रपाषाणिक संस्कृति का जमाव लगभग 70 सेंटीमीटर आवासीय जमाव में प्राप्त होते हैं, जिसमें ब्लैक–रेड–वेयर ब्लैक स्लिप्ड वेयर और रेड वेयर पात्र परम्परा के बर्तन प्राप्त होते हैं । मिट्टी को पीटकर बनाये गये फर्श से ऐसा प्रतीत होता है कि इस संस्कृति के लोग बाँस–बल्ली और घास–फूस से बने झोपड़ियों में निवास करते थे। इस धरातल से तांबे की एक कटिया और कार्नेलियन का एक फलक उपलब्ध हुआ है। यहाँ का तीसरा सांस्कृतिक काल एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृति का है। जिसमें पात्र–परम्पराओं के अतिरिक्त अर्द्धरत्नों पर निर्मित मनके उपलब्ध हुए हैं। चतुर्थ सांस्कृतिक काल में कुषाणयुगीन पात्र परम्पराएं प्राप्त हुई हैं। इस धरातल से भी मिट्टी और उपरत्नों पर बने मनके, चूड़ियों के टुकड़े तथा थपुआ प्राप्त हुए हैं। छठें सांस्कृतिक काल से पाल युगीन अवशेष उपलब्ध हुए हैं (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू 1981–82:* 10–12, *इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू 1984–85*)।

सेनुवार

बिहार के रोहतास जिले में स्थित सेनुवार (अक्षांश 24^0 56′ उ0, देशान्तर 83^0 56′ पू0) के उत्खनन से भी नवपाषाणिक काल से लेकर ऐतिहासिक काल तक के अवशेष प्राप्त हुए हैं । इस स्थल के उत्खनन के प्रथम काल के प्रथम 'बी' उपचरण से नवपाषाणिक और ताम्रपाषाणिक संस्कृति के संक्रमण सम्बन्धी प्रमाण उपलब्ध हुए हैं । यहाँ का द्वितीय सांस्कृतिक काल विशुद्ध रूप से ताम्रपाषाणिक संस्कृति से सम्बन्धित है जो 2.30 सेंटीमीटर मोटा है । द्वितीय सांस्कृतिक काल के उपरिवर्ती जमाव और तृतीय सांस्कृतिक काल के प्रारम्भिक स्तरों– ताम्रपाषाणिक और लौहयुगीन संस्कृति के संक्रमण सम्बन्धी प्रमाण के लिए भी यह स्थल विशेष उल्लेखनीय है। ताम्रपाषाणिक धरातल से कई क्रमिक आवासीय फर्शों के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। ये फर्श 6 सेंटीमीटर से 3 सेंटीमीटर तक मोटे हैं जो मिट्टी को पीटकर बनाये गये हैं। फर्शों के समकालीन स्तरों से बाँस–बल्ली के निशान से युक्त जली मिट्टी के टुकड़े उपलब्ध हुए हैं । इनमें धान की भूसी मिली हुई है ।

यद्यपि उत्खनन में घरों का पूरा आकार प्रकाश में नहीं आया है, लेकिन घरों के प्राप्त कतिपय संकेतों/अवशेषों से ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी झोपड़ियाँ गोलाकार थी । गोलाकार मिट्टी की दीवालों से निर्मित संरचनाओं के भी प्रमाण उपलब्ध हुए हैं (सिंह 1989: 83–92)। ताम्रपाषाणिक सांस्कृतिक काल से जली मिट्टी से युक्त कुछ गोलाकार अथवा वर्गाकार गर्त उपलब्ध हुए हैं, जिनसे राख, कोयला और मिट्टी के बर्तन प्राप्त होते हैं । इन गर्तों का किस रूप में प्रयोग होता था यह निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता । यहाँ की ब्लैक–एण्ड–रेड वेयर और ब्लैक स्लिप्ड पात्र–परम्परा पर रेखीय चित्र बने हुए हैं । कुछ रस्सी के छाप वाले बर्तन भी प्राप्त होते हैं ।

धातु के उपकरणों में तांबे से बनी चूडियाँ, कान का कुण्डल और लटकन सम्मिलित हैं। लघुपाषाण उपकरणों में पुर्नगठित ब्लेड, भूथड़े ब्लेड, स्क्रेपर सम्मिलित हैं । जिनका निर्माण चल्सिडनी और चर्ट पर किया गया है। अन्य पाषाण उपकरणों में हथौड़े, सिल–लोढ़े हथगोले आदि सम्मिलित हैं । आभूषणों में चूडियाँ, अगेट, चल्सिडनी और फयांस के बने मनके, हड्डी के उपकरणों में छिद्रक, बाणाग्र और छेनी प्रमुख हैं । कुछ बाणाग्र पुच्छल और साकेटयुक्त हैं । उत्खनन में अनेक अनाज के दाने प्राप्त हुए हैं । उनके अध्ययन के आलोक में कहा जा सकता है कि इस संस्कृति के लोग करते थे धान, जौ, गेहूँ, ज्वार, मटर, मूँग, चना, सरसों आदि का प्रयोग खाद्यान्न के रूप करते थे। स्पष्टतः सेनुवार के ताम्रपाषाणिक मानव की जीविका मुख्यतः कृषि और पशुपालन पर निर्भर थी । शिकार इस समय भी जीविकोपार्जन का प्रमुख साधन था । मिट्टी के बर्तन तथा मनकों एवं अन्य उपकरणों के निर्माण को उद्योग के अन्तर्गत रखा जा सकता है ।

मध्य गंगाघाटी में ताम्रपाषाणिक संस्कृति की चारित्रिक विशेषता सादे और चित्रित ब्लैक–एंड–रेड वेयर प्राक् एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) के संदर्भ में ब्लैक–एंड–रेड वेयर पात्र–परम्परा को तीन वर्गो में विभाजित किया जा सकता है । प्रथम वर्ग में ऐसे स्थल सम्मिलित थे जहाँ ताम्र उपकरण, ब्लैक–एंड–रेड वेयर के पहले नव पाषाणिक संस्कृति में विद्यमान है । द्वितीय वर्ग के अर्न्तगत ऐसे स्थल है जहाँ ब्लैक–एंड–रेड से युक्त ताम्रपाषाणिक संस्कृति से

ही संस्कृति का प्रारम्भ होता है और उनके साथ लौह उपकरण नही मिलते और तीसरे वर्ग में ऐसे स्थल जहाँ प्राक् एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) धरातल से ब्लैक एंड रेड वेयर का चरण मिलता है । लेकिन इसके साथ लौह उपकरण भी प्राप्त हुए हैं । इन तीनों ही वर्ग में ब्लैक–एंड–रेड के उपरान्त एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं । प्रथम वर्ग के स्थल क्योंकि नवपाषाणिक जमाव के ऊपर है, इसलिए ऊँचाई पर स्थित थे। उदाहरण के लिए चिरांद, लहुरादेवा और इमलीडीह खुर्द तृतीय वर्ग के स्थल मुख्य नदियों अथवा सहायक नदियों के किनारे ऐसे क्षेत्रों में स्थित है, जहाँ उर्वरा भूमि उपलब्ध थी ।

ये सभी स्थल नदियों के तट पर स्थित हैं । बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के पुरूषोत्तम सिंह द्वारा कुआनों नदी घाटी में किये गये सर्वेक्षण से लगभग 34 प्राक् एन0 बी0 पी0 डब्लू0 के जमाव वाले स्थल प्रकाश में आये थे, जिसमें से 26 स्थल नदियों के किनारे हैं और सिर्फ 8 स्थल नदियों से दूर हैं । इसी तरह के प्रमाण कौशाम्बी के समीपवर्ती क्षेत्रों में जार्ज एरडसी को प्राप्त हुए हैं (एरडसी 1985: 71)। एरडसी को 1000 से 700 ई0 पू0 के बीच के 16 स्थल प्राप्त हुए थे, जिनमें से सभी नदियों के तट पर ही स्थित हैं । उल्लेखनीय है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश में ब्लैक–एंड–रेड वेयर (कृष्ण–लोहित पात्र परम्परा) के स्थानों की संख्या एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) के स्थलों से अधिक है । उत्खनित स्थलों से ऐसा प्रतीत होता है कि ताम्रपाषाणिक काल में अधिवास का क्षेत्र पूर्ववर्ती नवपाषाणिक काल की तुलना में अधिक था और परवर्ती एन0बी0पी0डब्लू0 संस्कृति की तुलना में कम (सिंह 1993: 160)।

विशिष्टताएँ

उत्खनित स्थलों से प्राप्त पुरासामग्रियों एवं समग्र सूचनाओं को समवेत रूप से विश्लेषित करते हुए मध्य गंगा घाटी की ताम्रपाषाणिक संस्कृति के विशिष्ट तत्वों का विवेचन निम्नरूप से किया जा सकता है ।

उत्खनन और सर्वेक्षण के परिणाम स्वरूप मध्य गंगा घाटी के प्रागैतिहासिक मानचित्र पर ताम्रपाषाणिक संस्कृति का स्वरूप उभरने लगा है । इस संस्कृति की पुरातात्विक सामग्री के अन्तर्गत चाक पर बनी हुई कई पात्र–परम्पराएं, पत्थर और हड्डियों पर बने हुए उपकरण, ताम्र उपकरण तथा लघु ब्लेड उद्योग के लघु पाषाण उपकरण सम्मिलित हैं। पात्र–परम्पराओं में लाल, काले लेप वाले तथा काले–और–लाल पात्र परम्परायें हैं जिनमें से अन्तिम दो को चित्रित भी किया गया है । लघु पाषाण उपकरणों में दन्तुर कटक ब्लेड भी सम्मिलित हैं । हड्डियों तथा मृगश्रृंगों के बने हुए बाणाग्र इस संस्कृति के अभिन्न अंग लगते हैं । बाणाग्र दो प्रकार के हैं– पुच्छल और छिद्र युक्त । अधिकांश बाणाग्रों का अनुभाग गोल है लेकिन कुछ तिकोने अनुभाग वाले बाणाग्र भी प्राप्त हुए हैं । बहुत से बाणाग्र निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं में प्राप्त हुए हैं । इस संस्कृति के लोग भी बाँस और लकड़ी की बनी झोपड़ियों में निवास करते थे । उपरत्नों और मिट्टी के बने मनके इन स्थलों में बहुतायत में मिले हैं, लेकिन ताम्र उपकरणों की संख्या बहुत कम है। बिहार के ओरियप से एक ताम्र चूड़ी का उल्लेख किया जा सकता है । मृण्मूर्तियों में चिरांद से उपलब्ध सिर रहित चपटी चिड़िया जिसे शरीर पर छिद्र करके सुसज्जित किया गया है । ओरियप से एक आदिम शैली में बनी नारी मूर्ति तथा प्रहलादपुर से उपलब्ध खिलौना गाड़ी विशेष उल्लेखनीय हैं ।

कृष्ण–लोहित काले–और–लाल और लाल–तथा–काले लेप की पात्र परम्परायें इस संस्कृति की चारित्रिक विशेषताएं मानी जाती हैं । उत्खनित स्थलों में इस संस्कृति के निचले धरातल में काले–और–लाल बर्तनों की संख्या अधिक है । चिरांद में कुछ बर्तनों पर क्रीम रंग का लेप किया गया है । बर्तन आकारों में घड़े, नांद, कटोरे और तश्तरियाँ सम्मिलित हैं । कृष्ण–लोहित पात्र–परम्परा के कुछ बर्तनों के भीतरी सतह पर सफेद या क्रीम रंग से चित्रण किया गया है । चित्रण अभिप्रायों में क्षैतिज अथवा तिरछी रेखाएं प्राप्त होती हैं । इन बर्तनों पर चित्रण के प्रमाण सोहगौरा, प्रहलादपुर, राजघाट, नहुष राजा का टीला, नरहन, इमलीडीह, लहुरादेवा, बनवारीघाट तथा गुलरिहवा घाट से प्राप्त हुए हैं ।

पात्रों के आकार में विविधता के प्रमाण लाल पात्र परम्परा में प्राप्त होते हैं। इन बर्तनों में कटोरे, आधार वाले कटोरे, थालियाँ, नांद, तीन पैर वाले तथा छिद्रयुक्त कटोरे और नांद, होंठदार कटोरे और नांद, बड़े और मध्यम आकार के घड़े तथा साधार तश्तरियाँ उल्लेखनीय हैं । चिरांद की नवपाषाणिक संस्कृति की तरह इस संस्कृति में भी टोंटीदार बर्तन प्राप्त हुए हैं ।

काले लेप वाले पात्र–परम्परा में बर्तनों के अधिक आकार नहीं मिलते हैं । कटोरे और थालियाँ ही प्रायः इस परम्परा के बर्तन हैं । संभवतः इस पात्र परम्परा के बर्तनों का प्रयोग खाने–पीने के लिये ही किया जाता था । इसी पात्र–परम्परा से परवर्ती काल में उत्तरी कृष्ण भार्जित पात्र परम्परा का विकास हुआ होगा । काले लेप वाली पात्र परम्परा के बर्तनों को भी सफेद या काले रंग से चित्रित किया गया है । चित्रण अभिप्राय के अन्तर्गत तिरछे और टेढ़ी तथा पड़ी रेखाएं ही प्राप्त होती हैं । चित्रित काले लेप वाले बर्तन चिरांद, सोनपुर, सोहगौरा, प्रहलादपुर, राजघाट, गुलरिहवा घाट तथा पूरे देवजानी से भी प्रतिवेदित किए गए हैं ।

प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा किये गये हाल के सर्वेक्षण से मध्य गंगा घाटी के प्रतापगढ़ जिले की पट्टी तहसील में लगभग 30 ताम्रपाषाणिक स्थल प्रकाश में आये हैं । अभी तक इनमें एक भी स्थल का उत्खनन नहीं किया गया है लेकिन इन स्थलों से लाल, काले, लेप वाले तथा काले और लाल पात्र–परम्पराओं के मिट्टी के बर्तन, दन्तुर कटक ब्लेड, क्रोड और फलक से युक्त लघु ब्लेड उद्योग के लघु पाषाण उपकरण, मिट्टी के टुकड़े, तांबे की अंगूठी तथा पत्थर के सिल–लोढ़े प्राप्त हुए हैं । इस क्षेत्र के प्रमुख स्थलों में भाँटी, भेवनी, गंगेहटी, कंजासराय, गुलानी, मन्दाह–2, पेलखवार, पूरे देवाजानी, सराय जमुआरी तथा शाल्हीपुर–2 का उल्लेख किया जा सकता है । ये स्थल इस क्षेत्र की मध्य पाषाणिक स्थलों की ही तरह धनुषाकार झीलों अथवा इन झीलों से निकलने वाली सई की सहायक नदियों के किनारे स्थित हैं।

उपलब्ध पात्र–परम्पराओं में काले एवं लाल रंग लेप युक्त के पात्र प्राप्त हुए हैं । कभी–कभी लाल पात्र–परम्परा के बर्तनों पर भी लेप किया गया है।

ब्लैक–एंड–रेड वेयर (कृष्ण लोहित पात्र परम्परा) के बर्तनों के भीतरी सतह पर काला तथा ऊपरी सतह पर लाल लेप है । काले लेप के कुछ बर्तनों के भीतरी सतह पर सफेद तथा बाहरी सतह पर काले रंग से चित्र बनाये गये हैं । चित्रण अभिप्रायों में खड़ी तथा तिरछी मोटी रेखाएं सम्मिलित हैं । इन स्थलों से पात्रों के जो आकार उपलब्ध हुए हैं उनमें कटोरे, आधार वाले कटोरे, होंठदार कटोरे, थालियाँ, नांद, पैर वाले छिद्रयुक्त नांद, बीकर और विभिन्न आकार के घड़े उल्लेखनीय हैं। लाल पात्र–परम्परा के कुछ बर्तनों की बाहरी सतह पर खड़ी या तिरछी रेखाएं उत्कीर्ण करके अलंकृत किया गया है और कभी–कभी आसंजन विधि से अंगुलियाँ दबा कर रस्सी की आकृति का अलंकरण भी बनाया गया है। उत्खनन के अभाव में मध्य गंगा घाटी के पश्चिमी क्षेत्र की इस संस्कृति के स्वरूप के बारे में अधिक विस्तृत ज्ञान नहीं हैं लेकिन पात्र प्रकारों, चित्रण अभिप्रायों और लघु पाषाण उपकरणों के आधार पर मध्य गंगा घाटी के सम्पूर्ण ताम्रपाषाणिक स्थलों से इस संस्कृति का एक ही स्वरूप आभाषित होता है ।

मध्य गंगाघाटी की यह संस्कृति पूर्व में निम्न गंगाघाटी और दक्षिण में विन्ध्य क्षेत्र की ताम्रपाषाणिक संस्कृतियों से कई सन्दर्भों में जुड़ी हुई प्रतीत होती है। निचली गंगा घाटी की ताम्रपाषाणिक संस्कृति के उत्खनित स्थल पाण्डुराजाढिबि, महिषदल और भरतपुर है । पश्चिमी बंगाल के वर्धमान जिले में स्थित पाण्डुराजाढिबि के उत्खनन (दास गुप्ता 1964) से हस्तनिर्मित भूरे या पीत लाल, काले और लाल, लाल और चमकीले लाल पात्र परम्परा के बर्तन प्राप्त हुए हैं । काले और सफेद रंग से काले और लाल तथा लाल पात्र परम्परा के बर्तनों को चित्रित किया गया है । बर्तन आकारों में कटोरे, नांद, थालियाँ, छिद्रयुक्त बर्तन तथा लम्बे गले के घड़े सम्मिलित हैं । अन्य सांस्कृतिक सामग्रियों के अन्तर्गत तांबे के मनके, चूडियाँ, नहन्नी, सुरमा–सलाई, कुल्हाड़ी, हड्डियों के बाणाग्र, पिन, कंघे, अर्द्धरत्नों के मनके और दन्तुर कटक ब्लेड से युक्त लघु पाषाण उपकरणों का उल्लेख किया जा सकता है ।

चमकीली लाल पात्र–परम्परा तथ पनारीदार टोंटी के बर्तनों के मध्य गंगा घाटी के अनुपस्थिति के आधार पर मध्य गंगा घाटी और निम्न गंगा घाटी की

संस्कृतियों को अलग–अलग मानने की सम्मति प्रस्तुत की गयी है (वर्मा 1969: 103–104)। लेकिन कुछ स्थानीय विभेदों को छोड़कर दोनों क्षेत्रों में एक ही संस्कृति का विस्तार मानना अधिक तर्कसंगत है (मिश्र 1970) ।

मध्य गंगा घाटी के दक्षिण विन्ध्य क्षेत्र में ताम्रपाषाणिक संस्कृति के प्रमाण कई स्थलों से प्राप्त हुए है । ककोरिया, कौड़िहार, कोलडिहवा, टोकवा, मघा आदि प्रमुख स्थल उल्लेखनीय हैं । ककोरिया की ताम्रपाषाणिक संस्कृति के लोग वृहद पाषाण समाधियों के भी निर्माता थे । इस क्षेत्र की पात्र–परम्पराएं भी मध्य गंगा घाटी की ही तरह हैं और यहाँसे पुच्छल तथा छिद्रयुक्त बाणाग्र भी अत्यधिक संख्या में प्राप्त हुए हैं । बर्तनों के आकार भी दोनों क्षेत्रों में एक ही जैसे हैं । लघु पाषाण उपकरण जिनमें दन्तुर कटक, ब्लेड भी सम्मिलित हैं, भी दोनों ही क्षेत्रों में प्राप्त होते हैं इस आधार पर कहा जा सकता है कि मध्य गंगा घाटी, निम्न गंगा घाटी तथा उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र की ताम्रपाषाणिक संस्कृति मूल रूप से एक ही संस्कृति का विस्तार है ।

मध्य गंगाघाटी के उत्खनित ताम्रपाषाणिक स्थलों से पर्याप्त कार्बन तिथियाँ प्राप्त हुई हैं (तालिका 7) । चिरांद से उपलब्ध कार्बन तिथियों के आलोक में इस संस्कृति को 1600 से 800 ई0 पू0 के मध्य रखा जा सकता है (मण्डल, डी0. 1972: 126)। टी0 एफ0 1028–1540±90 ई0 पू0, टी0 एफ0 444–715± 105 ई0 पू0 के आधार पर यह तिथिक्रम निर्धारित किया गया है। सोहगौरा से भी दो कार्बन तिथियों 330±110 ई0 पू0 और 1230±130 ई0 पू0 प्राप्त हुई हैं ।

तालिका 7: ताम्रपाषाणिक स्थलों से प्राप्त रेडियो कार्बन तिथियाँ

पुरास्थल	सैम्पल नं0	सी–14 तिथि	काल
सेनुवार		1770±110 ई0पू0 1500±110ई0पू0 1660±120ई0पू0 1440±120 ई0पू0	नवपाषाणिक–ताम्रपाषाणिक संक्रमण काल
झूँसी	पी0आर0एल0 2083	1340±90 ई0पू0	काल प्रथम (IA)

	पी0आर0एल0 2081	830±90 ई0पू0	(ताम्रपाषाणिक)
श्रृंगवेरपुर	पी0आर0एल0 669	750±134 ई0पू0	काल द्वितीय (IIA) (ताम्रपाषाणिक)
नरहन		1123±110 ई0पू0 1133±110 ई0पू0	काल प्रथम (IA) (ताम्रपाषाणिक)
खैराडीह	बी0एस0आई0एफ0 पी0आर0एल0 1049	1120±90 ई0पू0 1030±160 ई0पू0 940±150 ई0पू0	काल प्रथम (IA) (ताम्रपाषाणिक)
चिराँद	टी0एफ0 445 टी0एफ0 1030 टी0एफ0 1028 टी0एफ0 1029 टी0एफ0 336 टी0एफ0 444 टी0एफ0 334	1665±103ई0पू0 1585±103ई0पू0 1540±93 ई0पू0 1050±88 ई0पू0 770±98 ई0पू0 715±105 ई0पू0 845±125 ई0पू0	काल द्वितीय (IIA) (ताम्रपाषाणिक)
सोनपुर	टी0एफ0 376	635±103 ई0पू0	काल प्रथम (IA) (ताम्रपाषाणिक)
सोहगौरा	पी0आर0एल0 178 पी0आर0एल0 179	1375±113 ई0पू0 1235±134ई0पू0	काल द्वितीय (IIA) (ताम्रपाषाणिक)
मल्हर	बी0एस0 1623 बी0एस0 1614 बी0एस0 1593 बी0एस0 1590	1500±90 ई0पू0 4330±110 ई0पू0 1590±90 ई0पू0 1790±80 ई0पू0	
राजा नल का टीला	बी0एस0 1378 पी0आर0एल0 2047 बी0एस0 1299 बी0एस0 1300 पी0आर0एल0 2049 पी0आर0एल0 2046 पी0आर0एल0 2045	600±110 ई0पू0 940±90 ई0पू0 800±100 ई0पू0 1110±110 ई0पू0 1100±90 ई0पू0 1150±90 ई0पू0 1310±90 ई0पू0	

समीक्षा

उत्खनित स्थलों से उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर ताम्रपाषाणिक संस्कृति के स्थलों को प्रारम्भिक और परवर्ती दो वर्गो में विभाजित किया गया है (मिश्र और गुप्ता 1996: 27; मिश्र और मिश्र 2000: 14–22; मिश्र 2000: 66–85)। परवर्ती चरण के स्थलों में राजघाट प्रथम 'ए', प्रहलादपुर प्रथम 'ए', मोसिनडीह प्रथम 'ए', चिरांद तृतीय, माँझी प्रथम, ताराडीह तृतीय 'बी' और सेनुवार दो 'बी' को रखा गया है ।

ताम्रपाषाणिक स्थल मध्य गंगा घाटी में छोटी अथवा बड़ी नदियों के तट पर या धनुषाकार झीलों के किनारे स्थित हैं । इनके अधिवास स्थलों का विस्तार प्रायः छोटे अथवा मध्यम आकार का है। विस्तृत उत्खननों के अभाव में आवास नियोजन सम्बन्धी प्रमाण अपेक्षाकृत कम प्राप्त हुए हैं लेकिन बांस–बल्ली के निशान से युक्त जली मिट्टी के टुकड़े और गोलाकार झोपड़ियों के फर्शों के प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस काल में लोग झोपड़ियों में ही निवास करते थे, जिनकी दीवालों का निर्माण बाँस और बल्ली से किया जाता था और इसकें ऊपर मिट्टी का मोटा लेप लगाया जाता था । स्तम्भगर्त के प्रमाण भी ऐसा ही संकेत देते हैं। सेनुवार के उत्खनन से मिट्टी की दीवालों से घर बनाने का कुछ संकेत मिलता है। उल्लेखनीय है कि मध्य गंगा घाटी के दक्षिणवर्ती विन्ध्य क्षेत्र की ताम्रपाषाणिक संस्कृति के उत्खनित स्थलों ककोरिया और कोलडिहवा से भी मिट्टी के दीवालों के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं (मिश्र 1997)। इन फर्शों पर चूल्हे भी प्राप्त हुए हैं ।

मध्य गंगाघाटी के ताम्रपाषाणिक संस्कृति के पुरास्थल चाक पर बने हुए रेड वेयर, ब्लैक–एण्ड–रेड वेयर और ब्लैक स्लिप्ड वेयर से युक्त प्राप्त होते हैं । ब्लैक–एण्ड–रेड वेयर और ब्लैक स्लिप्ड वेयर के पात्रों पर हल्के सफेद, क्रीम, भूरे और कभी–कभी लाल रंग के भी बर्तनों के भीतरी और बाहरी सतह पर रेखीय चित्र बनाये गये हैं। लाल पात्र–परम्परा के बर्तनों पर काले रंग के चित्रण अभिप्राय मिलते हैं । इसके अतिरिक्त आसंजन विधि से उत्कीर्ण और रस्सी की छाप से बर्तनों को अलंकृत किया गया है । सोहगौरा और ताराडीह जैसे स्थलों से बर्तनों के पक जाने के बाद उत्कीर्ण करके अलंकरण बनाने के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

विभिन्न प्रकार के बर्तनों के आकार जिनमें छिछले और गहरे कटोरे, होंठयुक्त अथवा साधार कटोरे, तश्तरियाँ, नांद, छोटे अथवा बड़े गले के घड़े, हांडी, लोटों के अधार के घड़े, डिस ऑन स्टैण्ड, हैंडिल युक्त कड़ाही आदि उपलब्ध हुए हैं। बर्तनों के विभिन्न प्रकारों के अधार पर ऐसा लगता है कि इनका प्रयोग बड़े पैमाने पर किया जाता था । ये बर्तन पूर्ववर्ती तकनीक से बने हैं और अच्छी तरह से पके हुए हैं ।

मध्य गंगा घाटी में ताम्रपाषाणिक मानवों ने अपने उपकरणों के निर्माण के लिए तांबे, हड्डी, हिरण की सींग और पत्थरें का प्रयोग किया। उल्लेखनीय है कि तांबे का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हुआ है, क्योंकि तांबे को गलाने की भट्टी के स्पष्ट प्रमाण कहीं से नहीं मिले हैं। इसलिए ऐसा निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता है कि ये लोग तांबे के उपकरणों का निर्माण स्वयं करते थे अथवा ये उपकरण बाहर से लाये जाते थे। लघुपाषाण उपकरण तथा पत्थर के अन्य उपकरणों के लिए इस क्षेत्र का ताम्रपाषाणिक मानव विन्ध्य क्षेत्र पर निर्भर था। दोनों क्षेत्रों के ताम्रपाषाणिक संस्कृति के अन्य अवयवों से भी पारस्परिक आदान–प्रदान के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं (पाल 1995: 1319)। इस संस्कृति का मानव, मनके, लटकन, चूड़ियाँ, छल्ले कुण्डल आदि आभूषणों का प्रचुर प्रयोग करता था। चर्ट, चल्सिडनी, कार्नेलियन, क्वार्ट्ज और मिट्टी, हड्डी, सीप, फ्यांस और स्टीयटाइट एवं ताबें आदि के बने हुए मनके प्राप्त हुए हैं। कुछ स्थलों से निरक्षारण अनेक भी प्राप्त हुए हैं। क्योंकि लघुपाषाणिक उपकरणों की तरह इन स्थलों पर बने मनके भी निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं में मिलते हैं, इससे कहा जा सकता है कि इनका निर्माण इन्हीं स्थलों पर किया गया होगा। कई ताम्रपाषाणिक स्थलों पर आवासीय जमाव बहुत अधिक हैं (दो मीटर तक) । इससे लगता है कि इन स्थलों पर ताम्रपाषाणिक मानव लम्बे समय तक रहता रहा जो उनके स्थायी अधिवास का प्रमाण है। इन स्थलों से प्राप्त कुछ अस्थि अवशेषों और वानस्पतिक अवशेषों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मध्य गंगाघाटी का ताम्रपाषाणिक मानव कृषक और पशुपालक था। लेकिन उसे संभवतः मांसाहार के लिए जंगली पशु पक्षियों का आखेटक और मछली पकड़ने का कार्य करना पड़ता था। कृषि द्वारा उत्पादित

अनाजों में चावल, जौ, तीन प्रकार के गेहूँ, मटर, मूँग, सरसों तथा अन्य तिलहन सम्मिलित हैं। कटहल, अंगूर, और तुलसी जैसी वनस्पतियों के प्रमाण प्राप्त होते हैं। पशुओं में कूबड़युक्त बैल, भैंस, भेड़, बकरी, कुत्ता और सुअर के अतिरिक्त विभिन्न प्रजातियों के हिरण भी प्राप्त हुए हैं। मछली, कछुए और पक्षियों की हड्डियाँ भी प्राप्त हुई हैं।

पंचम अध्याय

लौह युगीन प्रारम्भिक ऐतिहासिक और एन0 बी0 पी0 डब्लू0 संस्कृति

प्रारम्भिक ऐतिहासिक कालीन संस्कृति का सम्बन्ध मध्य गंगा घाटी में लोहे के प्रथम प्रयोग से है, जो प्राक् एन0बी0पी0डब्लू0 (प्राक् उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड परम्परा) धरातल से कृष्ण–लोहित पात्र–परम्परा (ब्लैक–एंड–रेड वेयर) के साथ प्राप्त होती है। इस क्षेत्र की कृष्ण–लोहित पात्र–परम्परा मुख्यतः ताम्रपाषाणिक संस्कृति से सम्बन्धित है। यद्यपि इस संस्दृति के परवर्ती चरण से लोहे के प्रमाण मिलने लगते हैं, लेकिन संभवतः लोहे के प्रारम्भिक ज्ञान ने अभी उनकी अर्थव्यवस्था में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं किया था। धीरे धीरे इस क्षेत्र में लोहे के व्यापक प्रचलन ने सांस्कृतिक स्वरूप को पूर्णतः परिवर्तित करके एक नया आयाम प्रदान किया। यह विकसित लौह युग एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृति से सम्बन्धित है। ऐसा प्रतीत होता है कि एन0बी0पी0डब्लू0 संस्कृति की प्रमुख पात्र–परम्परा प्राक् एन0बी0पी0डब्लू (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) काल की कृष्ण लेपित पात्र–परम्परा (ब्लैक स्लिप्ड वेयर) से ही विकसित हुई । इस अध्याय में इस क्षेत्र की लौहयुगीन एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृति के स्वरूप का विवेचन अभीष्ट है ।

एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) मृदभाण्ड–परम्परा की संस्कृति भारतीय पुरातत्व के इतिहास में एक अत्यन्त उज्जवल अध्याय का प्रतिनिधित्व करती है। गंगा घाटी में इस पात्र–परम्परा के साथ द्वितीय 'नगरीय क्रांति' का इतिहास आरम्भ होता है । लोहे के औजार बनाने की तकनीक के दक्षिणी उत्तर प्रदेश और दक्षिण बिहार के लौह–अयस्क (आयरन ओर्स) से समृद्ध क्षेत्रों में पहुँच जाने के बाद व्यापक पैमाने पर लौह उपकरणों का निर्माण तथा

प्रयोग सम्भव हुआ। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लौह तकनीक का प्रभाव परिलक्षित होने लगा था। लौह तकनीक के व्यापक प्रचलन का प्रभाव कृषि कार्य में ही नहीं बल्कि घरेलू उद्योगों तथा वास्तु कला पर भी पड़ा। इस प्रकार एक अत्यन्त जटिल आर्थिक जीवन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई ।

सम्बद्ध मृदभाण्ड एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) पात्र–परम्परा के साथ–साथ जन–साधरण द्वारा प्रयुक्त मृदभाण्ड तथा दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली कई प्रकार की पात्र–परम्पराएं भी मिलती है । उदाहरण के तौर पर (1) मोटे गढन के अलंकृत धूसर मृदभाण्ड (थिक प्लेन ग्रे वेयर) (2) कृष्ण–लेपित मृदभाण्ड (ब्लैक स्लिप्ड वेयर) (3) लाल रंग के मृदभाण्ड (रेड वेयर), तथा (4) कृष्ण–लोहित मृदभाण्ड (ब्लैक–एंड–रेड वेयर) उल्लेखनीय हैं । बड़े–बड़े घड़े, मटके, तसले, नांद (ट्रफ्स) आदि बर्तन प्रकार इन पात्र–परम्पराओं में मुख्य रूप से मिलते हैं । इन मृदभाण्डों के नये–नये प्रकार लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकता को पूरा करते थे। एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) की तुलना में इन मृदभाण्डों की प्रचुरता इनमें सहज–सुलभ और उपयोगी होने का संकेत करती है। विभिन्न प्रकार के बर्तनों की बढ़ती हुई संख्या से जनसंख्या वृद्धि भी परोक्ष रूप से इंगित होती है ।

यद्यपि लोहे का प्रचलन प्राक् एन0बी0पी0 और चित्रित धूसर पात्र परम्परा के काल में लगभग 1000 ई0 पू0 में ही हो गया था लेकिन एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) काल में लोहे के व्यापक स्तर पर प्रयोग के संकेत मिलते हैं जिससे लौह–अयस्क को पिघलाने और प्राप्त लोहे को पीटकर उपकरण बनाने की तकनीक में प्रगति परिलक्षित होती है । चन्दौली जनपद में स्थित मल्हार, (तिवारी और अन्य 1999–2000) और इलाहाबाद में स्थित झूँसी (मिश्र और अन्य 1999–2000) के उत्खनन से लोहे की और अधिक प्राचीनता क्रमशः 1300 ई0पू0 और 1100 ई0पू0 तक चली गयी है (तिवारी 1998–99) । लोहे के उपकरणों के बड़े पैमाने पर उपयोग से तत्कालीन लोगों के आर्थिक जीवन में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए । प्रमुख लौह–उपकरणों में बाण–फलक, भाले के शीर्ष, बल्लम शीर्ष, बर्छी, कटार, चाकू, कुल्हाड़ी, हँसिया, खुरपी, कीले, बसूला, छेनी,

कड़ाही तथा दीपक आदि हैं । उत्खनन से प्राप्त लौह धातुमल धातु विगलन के संकेत देते हैं । जुताई के कार्य में लोहे के बने हुए फालों (आयरन प्लाऊ शेयर) के प्रयोग से गांगेय क्षेत्र की चूने से युक्त कड़ी जलोढक मिट्टी पर कृषि–कार्य अधिक आसान हो गया । लोहे के वर्म (ड्रिल्स), बसूले (एड्ज्स), छेनियों एवं रूखनियों के निर्माण से विभिन्न शिल्प–कार्यो विशेषकर लकड़ी की वस्तुओं के बनाने में विशेष प्रगति हुई । लोहे की लोकप्रियता के कारण तांबे का प्रयोग अपेक्षाकृत सीमित होता गया। तांबे का प्रयोग अब सिक्कों के निर्माण, अंजन–शलाकाओं, खिलौनों, मुद्रिकाओं तथा मनकों आदि के बनानें में किया जाने लगा । प्राक् मौर्य काल से ही काष्ठ–शिल्प के विकास में लौह उद्योग ने योगदान दिया और इस काष्ठ कला के अनुकरण पर ही पाषाण शिल्प विकसित हुआ ।

कृषि एवं पशुपालन इस काल में जीविका के प्रमुख साधन थे । काफी विस्तृत भू–भाग में खेती की जाने लगी थी । चावल, गेहूँ, जौ तथा दलहन आदि जीवन का प्रमुख आधार था । पशुपालन के क्षेत्र में भी इसी के साथ विकास हुआ। पालतू पशुओं में गाय–बैल, भैंस, भेंड, बकरी, घोड़े तथा सुअर आदि की गणना की जा सकती है । इन पशुओं की हड्डियाँ विभिन्न पुरास्थलों के उत्खनन से प्राप्त हुई हैं । समाज का काफी बड़ा हिस्सा संभवतः मांसाहारी था। पशुओं की कुछ हड्डियों पर काटने के निशान मिलते हैं । पशुओं को केवल भारवाहन के लिए ही नहीं पाला जाता था बल्कि घी, दूध, माँस के लिए भी उनकी उपयोगिता थी । मछुवारे के जाल को डुबाने के लिए प्रयुक्त मिट्टी की बनी हुई गोलियाँ (टेराकोटा नेट सिंकर्स) और मछली फंसाने की कटिया (फिश हुक) मछली पकड़ने का परोक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करती है । जंगली पशुओं जैसे हिरण आदि का शिकार भी किया जाता था । प्रारम्भिक एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) में मिलने वाली पुरासामग्रियाँ प्राक् एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) काल की पुरासामग्रियों से अधिक भिन्न नही हें लेकिन उत्कृष्ट पात्र परम्परा और उद्योगों तथा वाणिज्य क्षेत्र में विकास के लक्षण दिखाई पड़ते हैं ।

एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृति के मध्य चरणों में आते–आते यह परिवर्तन पुरासामग्रियों में स्पष्टतः परिलक्षित होने लगता

है। इस चरण की एक अन्य प्रमुख विशेषता सिक्कों के सर्वप्रथम प्रचलन को माना जा सकता है । आर्थिक जीवन में जटिलता आ जाने के फलस्वरूप वस्तु–विनिमय में पेरशानी होने लगी । आर्थिक आवश्यकताओं के बढ़ते दबाव से सिक्कों का चलन शुरू हुआ। ताम्र और रजत के बने हुए आहत सिक्के (पन्च मार्क्ड् क्वाइन्स) भारत के प्राचीनतम सिक्के माने जाते हैं । तांबे तथा चांदी से निर्मित लेख रहित ढली हुई मुद्राओं (अनइन्स्क्राइब्ड कास्ट क्वाइन्स) की गणना आहत मुद्राओं के समकालिक सिक्कों के रूप में की जा सकती है। सिक्कों के प्रचलन से एन0बी0पी0डब्लू0 पात्र परम्परा के काल में व्यापार–वाणिज्य के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई। व्यापारियों का उल्लेख छठीं शताब्दी ई0 पू0 के नगरीय समाज के एक अभिन्न अंग के रूप में तत्कालीन साहित्य में भी मिलता है ।

भवन निर्माण कला के क्षेत्र में भी इस काल में उल्लेखनीय प्रगति हुई । अधिकांश उत्खनन सीमित तथा सूच्यांक (इनडेक्स) प्रकार के हैं, इसलिए वास्तु कला के विषय में प्राप्त जानकारी अपूर्ण एवं एकांगी है । यद्यपि इस काल में भी मिट्टी, घास–फूस और बाँस–बल्ली के बने हुए कच्चे मकानों का निर्माण होता रहा तथापि भट्ठे में पकाई गई ईटों का प्रयोग भवनों के निर्माण के लिए अधिकाधिक मात्रा में होने लगा । इसके प्रमाण हस्तिनापुर (लाल 1954–55), अतंरजीखेड़ा (गौड़ 1983), मथुरा (जोशी और सिन्हा 1981), कौशाम्बी (शर्माः 1969), राजघाट (नारायन और सिंह 1977), उज्जैन तथा बहाल के उत्खननों से मिलते हैं । गढ़ी हुई लकड़ी से काष्ठ स्थापत्य भी निर्मित हुये । नगरों की सुरक्षा के लिए 'रक्षा प्राचीर' तथा 'परिखा' के निर्माण के प्रमाण अहिच्छत्र, कौशाम्बी, राजगृह तथा उज्जैन आदि से प्राप्त हुए हैं । रक्षा–प्राचीरों का निर्माण मिट्टी की बनी हुई मोटी दीवालों (भीटों) के रूप में किया जाता था । कभी–कभी रक्षा–प्राचीरों की बाहरी सतहों पर पकी हुई ईटें चुन दी जाती थी । इससे रक्षा–प्राचीर और अधिक मजबूत हो जाती है । इस काल के नगरों के कुछ भवनों में स्वच्छता तथा सफाई की दृष्टि से मृतिका–वलय–कूपों (टेराकोटा रिंग वेल्स) एवं सछिद्र घड़ों को जोड़कर सोख्ता गड्ढ़ों (सोकेज पिट्स) का निर्माण किया जाता था । स्वच्छता की ऐसी व्यवस्था कुछ खास घरों में ही मिलती है । कौशाम्बी में पकी ईटों की बनी

हुई टँकी और खुली नालियाँ तथा मिट्टी के पाइपों (पाट्री पाइप ड्रेन्स) की बनी हुई सार्वजानिक नालियाँ इस काल के स्तरों से मिली हैं (शर्मा 1980)। इस प्रकार के निर्माण कार्य सफाई एवं स्वच्छता को विशेष रूप से संदर्भित करते हैं । अनुमान किया जा सकता है कि समसामयिक जीवन में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता का विशेष महत्व था ।

एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृति के काल में मृण्मूर्तियों के निर्माण के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी । पूर्ववर्ती प्राक् एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) और चित्रित धूसर पात्र–परम्परा काल की मृण्मूर्तियों की तुलना यदि इस काल के मृण्मूर्तियों से की जाये तो यह भेद अधिक स्पष्ट हो जायेगा (हाथी, घोड़े, वृषभ, कुत्ते, भेड़ा, हिरण आदि पशुओं और कच्छप, सर्प, आदि सरीसृपों एवं चिड़ियों की हस्त–निर्मित मूर्तियाँ हैं । पशुओं की मृण्मूर्तियों का निर्माण अत्यन्त कुशलता के साथ किया गया है । आँखों को एक गोले (वृत्त) के अन्दर छेद करके बनाया गया है । पशुओं की मृण्मूर्तियों को छोटे–छोटे गोले (सर्किलेट्स) के ठप्पे लगाकर (पन्च), गहरे रेखांकन (डीप इनसाइज्ड लाइन्स) तथा किसी चीज से दबाकर बनायी गयी पत्तियों (इम्प्रेसड लीफ डिजाइन्स) के द्वारा अलंकृत किया गया है । अधिकांश मृण्मूर्तियाँ लाल रंग की हैं जिनके ऊपर गेरू के गहरे घोल का लेप (रेड स्लिप्ड) चढ़ाया गया है। धूसर तथा काले रंग की पशु–मृण्मूर्तियों के उदाहरण भी झूँसी, राजघाट, मथुरा, एवं वैशाली इत्यादि पुरास्थलों से मिले हैं। यह उल्लेखनीय है कि बक्सर से पीले रंग की पड़ी रेखाओं से अलंकृत पशु–मृण्मूर्तियों प्राप्त हुई हैं ।

पशुओं की मृण्मूर्तियों के अलावा मानव मृण्मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई हैं । प्रायः अधिकांश पशु–मृण्मूर्तियाँ हाथ से बनायी हुई मिलती हैं । मानव–मृण्मूर्तियों के साँचे में ढालकर (कास्ट) बनाये गये कतिपय नमूने भी मिले हैं । हस्त–निर्मित मानव मृण्मूर्तियों में हाथों और पाँवों का निर्माण स्टम्प अथवा डण्डे (स्टंप) के रूप में किया गया है । आँखों को एक छोटे से वृत्त अथवा केवल रेखांकन के द्वारा और बालों को प्रदर्शित करने के लिए सिर पर गहरी रेखाएँ खींच दी गई हैं तथा नाक बनाने के लिए मिट्टी को चुटकी से दबा दिया गया है । परवर्ती चरण में बड़े–बड़े

कर्णपटल (ईयरलोब्स) और उनमें चक्राकार कर्णफूल, गले में भारी कामदार हारावली आदि का निर्माण आसंजन विधि से किया गया है । स्त्री मृण्मूर्तियों के वस्त्रांलकरण पर्याप्त तथा लहराते हुए (फ्लोइंग) बनाये गये हैं ।

कुम्रहार के उत्खनन से प्राप्त कतिपय मृण्मूर्तियों को तन्वंगी, पृथुल नितम्ब और छोटे–छोटे पाँवों वाली बनाया गया है। इस मृण्मूर्ति मुखाकृति मानव (हूयमन फेस) की और शरीर पशु (एनीमल बाडी) का है । डीड्ढी को चुटकी से दबाकर इस प्रकार बनाया गया है जिससे वह दाढ़ी (बियर्ड) की भाँति प्रतीत हो । इस मृण्मूर्ति के पूरे शरीर को गोलाकार छापे लगाकर सजाया गया है। गर्दन के निचले भाग में एक छिद्र बना है जिसमें संभवतः एक डोरी डालकर इसको आगे–पीछे झुलाया जा सकता है । मृण्मूर्तियों का निर्माण खिलौनों के रूप में तो होता ही रहा होगा लेकिन इस बात की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है, कि इनमें से कुछ के निर्माण के पीछे धार्मिक विश्वासों की भी कतिपय भूमिका अवश्य रही होगी ।

मृण्मूर्तियों के अतिरिक्त एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) के स्तरों से प्राप्त लेखरहित सिक्के ढालने के साँचों का भी उल्लेख किया जा सकता है । मिट्टी की बनी हुई राजमुद्राएं (सील्स), राजमुद्रांक (सीलिग्स), कुम्भकार की थापी (पार्टस डैबर्स) और कुम्भकार के ठप्पे (पार्टस स्टेम्प) भी प्राप्त हुए है ।

एन0बी0पी0डब्लू (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) पात्र–परम्परा के लोगों ने अपनी परिष्कृत अभिरूचि का परिचय विभिन्न प्रकार के आभूषणों के निर्माण के माध्यम से दिया है। उदाहरण के लिए विभिन्न पुरास्थलों के उत्खन से एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) के स्तरों से माणिक्य के मनके और चूड़ियाँ,कड़े तथा अंगूठियाँ मिली हैं । तामड़ा (चर्ट), पत्थर, गोमेद (चैल्सिडनी) तथा काँच के बने हुए बेलनाकार, गोलाकार एवं त्रिभुजाकार मनके अधिक प्रचलित थे । चूड़ियाँ बनाने के लिए तांबे का विशेष रूप से उपयोग किया जाता था । इसके अतिरिक्त मिट्टी, काँच, हाथीदाँत, हड्डी आदि के बने हुए मनके, चूड़ियाँ और

अंगूठियाँ कलात्मक दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं । प्रसाधन सामग्री में अंजन–शलाकाएं, तांबे की बनी हुई पिनें, हड्डी और हाथीदाँत की बनी हुई कंघियाँ, नख–कर्तक (नेल कटर) एवं मृण्मय देह–मर्दक या झाँवा (टेराकोटा फ्लेश–रबर्स) आदि की भी गणना अन्य उल्लेखनीय पुरावशेषों में की जा सकती है । ये सभी पुरासामग्रियाँ नगरीय जीवन का स्पष्ट संकेत करती हैं ।

एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) पात्र–परम्परा के उत्खनित पुरास्थलों से बहुत बड़ी संख्या में हड्डी के बने हुए उपकरण प्राप्त हुए हैं। इनको पुराविदों ने बाण–फलक (ऐरो प्वाइंट्स) अथवा अस्थि निर्मित बेधक (बोन प्वाइंट्स) तथा लेखनी (स्टाइल्स) आदि नाम दिये हैं । बाण–फलक का पक्षियों आदि का शिकार करने में उपयोग होता रहा होगा । स्टाइल्स या लेखनी कहें लेखन के काम में आती रही होंगी । यद्यपि अभिलिखित लेख नहीं मिले हैं लेकिन सम्भव है कि परवर्ती काल में प्राप्त ब्राम्ही लिपि इस युग से नाशशील समाग्रियों पर लिखी गयी है ।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल (एन0बी0पी0डब्लू0 काल) में लोगों के सांस्कृतिक जीवन में पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी । जीवन अत्यन्त जटिल हो चुका था । 'नगरीय क्रान्ति' के प्रादुर्भाव के फलस्वरूप भौतिक जीवन काफी समृद्ध एवं समुन्नत् हो गया था ।

मध्य गंगाघाटी (पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार) में एन0बी0पी0 पात्र–परम्परा से सम्बन्धित प्राचीन तिथि वाले पुरास्थल मुख्यतः मध्य गंगा घाटी में दिखलायी पड़ते हैं (रेखाचित्र 31)। अतः यह प्रश्न सहज है कि क्या इस पात्र–परम्परा का उद्‌भव मध्य गंगा घाटी मे हुआ ? बींसवीं शती के छठे दशक में किसी पुराविद् को इस बात की जानकारी नही थी कि मध्य गंगा घाटी में एन0बी0पी0डब्लू0 से पहले कोई पात्र–परम्परा रही होगी । हस्तिनापुर (लाल 1951–52) के उत्खनन के बाद मध्य गंगा घाटी तथा उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र में विभिन्न पुरास्थलों पर जो उत्खनन कार्य हुए हैं, उनसे हमारी पुरातात्विक जानकारी में वृद्धि हुई है । इस क्षेत्र में ताम्रपाषाणिक
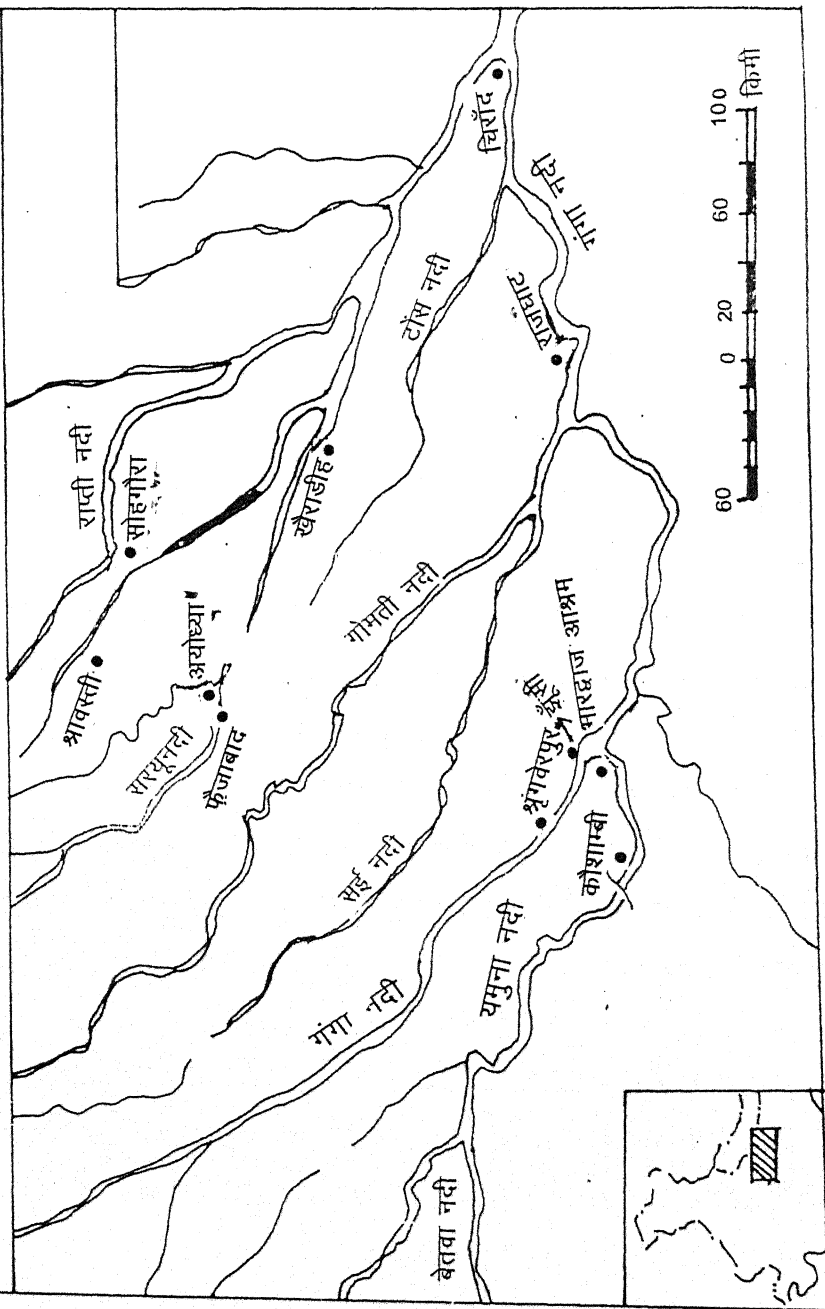
रेखाचित्र 31: मध्य गंगाघाटी के प्रमुख ऐतिहासिक उत्खनित स्थल

स्तरों से कृष्ण लेपित मृदभाण्ड मिलते हैं । ये पात्र एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) के पूर्ववर्ती स्तरों से प्राप्त होते हैं जो कालान्तर में एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) के स्तरों में भी मिल जाते हैं। इन दोनों पात्र परम्पराओं के पात्र–प्रकारों में भी साम्य हैं। उदाहरण के लिए तरह–तरह की थालियाँ और कटोरे दोनों पात्र–परम्पराओं में एक से हैं । इस आधार पर इस बात की प्रबल संभावना है कि मध्य गंगा घाटी में ही इस विशिष्ट पात्र परम्परा का उद्भव हुआ और यहीं से यह कला अन्य क्षेत्र में विकसित हुई । यही नहीं इस क्षेत्र के पुरास्थलों पर एन0 बी0 पी पात्र–खण्ड बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं, और समीपवर्ती उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र की कृष्ण लेपित पात्र परम्परा से भी सम्बन्धित बहुसंख्यक पुरास्थल दिखलायी पड़ते हैं, जहाँ लौह अयस्क उपलब्ध थे जिनका लौह तकनीक के विकास में अत्यधिक योगदान था ।

उत्तरी कृष्ण परिमार्जित मृदभाण्डों से सम्बन्धित अनेक पुरास्थल अभी तक खोज निकाले गये हैं और इनमें से कुछ पुरास्थलों पर उत्खनन भी हुआ है । ऐसे पुरास्थलों में उत्तर–प्रदेश के बहराइच जिले में स्थित श्रावस्ती के टीले का उत्खनन उल्लेखनीय है । यहाँ पर के0 के0 सिन्हा के नेतृत्व में उत्खनन हुआ है । सिन्हा का मत है कि एन0बी0पी0डब्लू (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) के वास्तविक महत्व को उसके सही पुरातात्विक परिप्रेक्ष्य में रखकर ही आंका जा सकता है । एन0बी0पी0डब्लू0 दो सर्वथा भिन्न सन्दर्भो में मिलती है : प्रथम आरम्भिक तथा द्वितीय परवर्ती सन्दर्भ में । इस आधार पर एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) का तिथिक्रम निर्धारित किया जा सकता है। एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) पात्र–परम्परा का प्रारम्भिक चरण कौशाम्बी, राजघाट (वाराणसी), श्रावस्ती, वैशाली तथा राजगिरि अयोध्या, श्रृंगवेरपुर, झूँसी, अगियापीर आदि स्थलों में प्राप्त होता है । इसका परवर्ती स्वरूप चरसद्दा, रोपड़, हस्तिनापुर, उज्जैन और नवादीटोली में मिलता है । आरम्भिक पुरास्थलों में इसकी तिथिक्रम 700 ई0पू0 तक जाता है जबकि सामान्य तिथिक्रम 500–300 ई0पू0 के मध्य निर्धारित किया जा सकता है । परवर्ती श्रेणी के पुरास्थलों जैसे रोपड़, हस्तिनापुर, कुम्रहार तथा उज्जैन में इसका प्रचलन लगभग 350 ई0पू0 के पहले नहीं हुआ ।

पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर एन0बी0पी0 पात्र–परम्परा का जो तिथिक्रम प्रस्तावित किया गया है, उससे पुराविद् सहमत नहीं हैं । इनमें से डी0 एच0 गार्डेन तथा आर0 ई0 एम0 व्हीलर के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । डी0 एच0 गार्डेन के अनुसार उपलब्ध पुरातात्विक साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में एन0बी0पी0डब्लू0 को 400 ई0 पू0 से पहले कदापि नहीं रखा जा सकता है । इसके व्यापक प्रचलन का काल चौथी नही बल्कि दूसरी शताब्दी ई0 पू0 प्रतीत होता है । व्हीलर की सम्मति है कि एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) पात्र–परम्परा के प्रचलन का काल पाँचवीं से दूसरी शताब्दी ई0 पू0 के मध्य माना जा सकता है । व्हीलर ने पाकिस्तान स्थित चरसद्दा और उदयग्राम से प्राप्त पुरातात्विक प्रमाणों के आधार पर 'उत्तर–पश्चिम के परिधीय क्षेत्र में एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) के प्रचलन का समय 320–150 ई0 पू0 के बीच तथा गंगा के मैदान में स्थित केन्द्रीय क्षेत्र के पुरास्थलों पर इस तिथि से कुछ शताब्दियों पहले इसके प्रचलन की सम्भावना व्यक्त की है ।

भारत, पाकिस्तान तथा नेपाल से कुल मिलाकर लगभग दो सौ से अधिक एन0 पी0 पात्र–परम्परा से सम्बद्ध पुरास्थल प्रकाश में आ चुके हैं जिनमें से लगभग आधे से अधिक पुरास्थल तो केवल गांगेय क्षेत्र में ही स्थित है । इनमें से कई पुरास्थलों पर समय–समय पर उत्खनन कार्य भी हुए हैं । उत्खनित पुरास्थलों में से लगभग एक दर्जन से अधिक पुरास्थलों के एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) स्तरों की रेडियों कार्बन तिथियाँ ज्ञात हैं ऐसे पुरास्थलों में रोपड़, हस्तिनापुर, राजघाट (वाराणसी), कुम्रहार, राजगिरि, बेसनगर, उज्जैन तथा कायथा आदि प्रमुख हैं । रेडियो कार्बन तिथियों के आधार पर एन0बी0पी0 मृदभाण्ड परम्परा के तिथिक्रम पर नये सिरे से विचार किया जाने लगा है। जिन पुरास्थलों से अपेक्षाकृत प्राचीन रेडियो कार्बन तिथियाँ उपलब्ध हुई हैं। वे हैं: अतरंजीखेड़ा, मथुरा, अयोध्या, कौशाम्बी, राजघाट और उज्जैन, झूँसी आदि।

रेडियों कार्बन तिथियों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि छठीं शताब्दी ई0 पू0 के मध्य तक यह पात्र–परम्परा अस्तित्व में आ चुकी थी । इलाहाबाद जिले की सोरांव तहसील में स्थित श्रृंगवेरपुर के पुरास्थल से एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी

कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) पात्र–परम्परा के सम्बन्ध में एक ताप–संदीप्तक (उष्मा दीप्ति) तिथि को 800 ई0 पू0 में रखने का आग्रह किया गया है। भारतीय पुरातत्व में ऊष्मा–दीप्ति के आधार पर निर्धारित तिथियाँ बहुत कम हैं। अन्य देशों के सन्दर्भ में भी अभी तक इस तरह की तिथि–प्रणाली प्रयोग के स्तर पर ही है । अतः श्रृंगवेरपुर की ऊष्मा–दीप्ति तिथि को अन्तिम रूप से एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) की प्राचीन तिथि के रूप में नहीं स्वीकार किया जा सकता है । अभी तक मथुरा से प्राप्त रेडियो कार्बन तिथि अपनी तरह की अकेली तिथि थी। लेकिन झूँसी आदि स्थलों से भी अब प्राचीन तिथियाँ मिलने लगी हैं अतः मध्य गंगाघाटी में जहाँ इस संस्कृति का अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियों के कारण उद्भव हुआ । इसके प्रारम्भ होने की तिथि को 700 ई0 पू0 के कुछ पहले रखा जा सकता है। जब तक कतिपय अन्य पुरास्थलों से भी एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) के स्तरों से छठीं शताब्दी ई0 पू0 के पहले की तिथियाँ न मिल जायें तब तक ये तिथियाँ विवाद की परिधि से परे नहीं म.नी जा सकती हैं ।

यह पात्र–परम्परा छठीं शताब्दी ई0 पू0 के पहले अस्तित्व में आ चुकी थी। यह पात्र–परम्परा कब तक चलती रही ?यह भी कुछ सीमा तक विवादास्पद है । यद्यपि इस बात के संकेत मिलते हैं कि द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 के पहले ही यह पात्र–परम्परा अपनी लोकप्रियता क्रमशः खोती जा रही थी, उस समय तक इसका प्रचलन बहुत सीमित हो गया था । इस बात की सम्भावना से इन्कार नही किया जा सकता है कि मध्य गंगा घाटी में कुछ ऐसे क्षेत्र रहे होंगे जहाँ यह पात्र–परम्परा बाद की शताब्दियों में भी चलती रही, उदाहरण के लिए चन्दौली जिले की चकिया तहसील में स्थित हेतिमपुर नामक स्थान से इस पात्र–परम्परा की रेडियो कार्बन तिथि प्रथम शताब्दी ई0 पू0 ज्ञात है लेकिन यह एकाकी तिथि है जिसे स्वीकार करने में पुराविदों को किंचित् संकोच होना स्वाभाविक है । इस बात की सम्भावना फिर भी बनी रह जाती है कि यह पात्र–परम्परा प्रथम शताब्दी ई0 पू0 तक कुछ क्षेत्रों में चलती रही हो ।

नदी है । जिनसे रक्षा–प्राचीर अर्द्ध–वृत्त बनाती है । कौशाम्बी में अभी तक चार विभिन्न क्षेत्रों में उत्खनन हुए हैं:

1– अशोक–स्तम्भ क्षेत्र,

2– घोषिताराम विहार क्षेत्र,

3– पूर्वी प्रवेश–द्वार के पास रक्षा–प्राचीर,

4– राजप्रासाद क्षेत्र ।

अशोक–स्तम्भ क्षेत्रः कौशाम्बी टीले के मध्यवर्ती भाग में जहाँ पर भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की ओर से एन0 जी0 मजूमदार ने उत्खनन कराया था, वहाँ पर अशोक का लेख–रहित एक पाषाण स्तम्भ मलबे में दबा हुआ मिला था । उसको उसी स्थान पर खड़ा कर दिया गया है । सन् 1949 तथा 1950 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने भी इसी क्षेत्र में उत्खनन कार्य कराया था । इस क्षेत्र में तीन संस्कृतियों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं:

1– चित्रित धूसर पात्र–परम्परा

2– उत्तरी काली चमकीली पात्र–परम्परा

3– उत्तर–एन0 बी0 पी0 पात्र–परम्परा

चित्रित धूसर संस्कृति के साक्ष्य छोटे से क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं । प्राप्त पात्र खण्ड़ो की संख्या भी बहुत सीमित है । उत्तरी काली चमकीली पात्र–परम्परा (एन0 बी0 वेयर) से सम्बन्धित निर्माण के आठ स्तर (स्ट्रक्चरल पीरियड्स) इस क्षेत्र से प्रकाश में आये हैं, जिनमें से प्रथम पाँच में भवन–निर्माण कार्य में मिट्टी तथा कच्ची ईटों के प्रयोग के साक्ष्य मिले हैं । ऊपरी तीन निर्माण स्तरों से जो साक्ष्य प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कालान्तर में भवनों का निर्माण पकी हुई ईटों से होने लगा था। एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) काल के प्राचीन मार्गों (रोडस), गलियों (लेन्स), नालियों तथा रिहायसी भवनों के विषय मे उल्लेखनीय जानकारी इस क्षेत्र के उत्खनन से प्राप्त हुई हैं इस क्षेत्र में एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) पात्र–परम्परा के बाद

भी लोग निवास करते रह जो मुख्यतः लाल रंग की पात्र–परम्परा का उपयोग करते थे । तृतीय काल की संस्कृति के काल–क्रम का निर्धारण कौशाम्बी से प्राप्त मित्र शासकों के सिक्के करते हैं। जिन्हें पुरालिपि एवं मुद्राशास्त्रीय साक्ष्यों के आधार पर द्वितीय शताब्दी ई0पू0 में रखने का आग्रह किया गया है। शक–पार्थियन तकनीक पर बनी मिट्टी की मूर्तियाँ तथा कुषाणों के सिक्के आदि तृतीय काल के ऊपरी स्तरों से मिले हैं। संभवतः इस क्षेत्र में आवास की निरन्तरता गुप्त काल तक चलती रही । इस क्षेत्र के उत्खनन से न केवल मिट्टी के बर्तनों के विषय में अपितु मिट्टी की मूर्तियाँ, सिक्कों तथा अभिलेखों के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण सूचनाएं मिली हैं ।

घोषिताराम विहारः क्षेत्र कौशाम्बी के टीले के पूर्वी भाग में घोषिताराम विहार के ध्वंशावशेष विद्यमान हैं । प्राचीन बौद्ध साहित्य में उल्लेख अनेक स्थानों पर किया गया है। प्राचीन बौद्ध साहित्य में इसका उल्लिखित परम्परा के अनुसार एक बार जब गौतम बुद्ध श्रावस्ती में वर्षावास कर रहे थे, तब कौशाम्बी के घोषित नामक सेठ ने अपने दो अन्य सेठ मित्रों कुक्कुट तथा पवरिया के साथ जाकर गौतम बुद्ध के दर्शन किये और उनको कौशाम्बी आने के लिए आमंत्रित किया था। घोषित सेठ के आमंत्रण पर तथागत कौशाम्बी आये थे। घोषित सेठ ने गौतम बुद्ध तथा भिक्षुओं को ठहराने के लिए जिस विहार का निर्माण कराया था । वह निर्माता के नाम पर घोषिताराम के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

घोषिताराम विहार का उत्खनन इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने सन् 1951 से 1956 के बीच में कराया था । घोषिताराम के उत्खनन के फलस्वरूप एक विहार प्रकाश में आया है जिसमें निर्माण के सत्रह स्तर (स्ट्रक्चरल पीरियड्स) प्रकाश में आये हैं । घोषिताराम के क्षेत्र में सम्पन्न हुए उत्खनन से पता चलता है कि कौशाम्बी के इस हिस्से में मानव के आवास की परम्परा उत्तरी काली चमकीली पात्र–परम्परा के प्रचलन के साथ प्रारम्भ हो गई थी क्योंकि इस क्षेत्र के सबसे निचले स्तरों से इस पात्र–परम्परा के पात्र खण्ड उपलब्ध हुए हैं ।

विहार के सन्दर्भ में उत्खनन से महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त हुई हैं । इसका निर्माण छठवीं शताब्दी ई0 पू0 के उत्तरार्द्ध में सम्पन्न हुआ था । निर्माण के विभिन्न

स्तरों को देखकर यह पता चलता है कि इसका पुर्निमाण विभिन्न समयों में होता रहा । उत्खनन के फलस्वरूप जो विहार प्रकाश में आया है वह विहार एवं चैत्य के मिले–जुले रूप में था । उसका प्रमुख प्रवेश–द्वार पश्चिम की ओर था । विहार के प्रवेश–द्वार के बगल में हारीति एवं कुबेर का एक चैत्यगृह प्रकाश में आया है, जिसमें हारीति, गजलक्ष्मी और कुबेर की मिट्टी की विशालकाय मूर्तियाँ स्थापित थीं। विहार के बीच में एक आंगन था जिसके उत्तरी एवं पूर्वी भागों में भिक्षु–भिक्षुणियों के रहने के लिए छोटे–छोटे कक्ष (कोठरियाँ) बने हुए थे जिनके आगे बरामदे थे । पश्चिम हिस्सा खुले मैदान के रूप मे था जहाँ भिक्षु इकट्ठा होते थे । विहार के प्रांगण में एक बहुत बड़ा वर्गाकार स्तूप था । इसका आकार 24.70 X 24.70 मीटर था । इसके अतिरिक्त एक अण्डाकार स्तूप था । तीन छोटे–छोटे स्तूपों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं ।

घोषिताराम विहार के उत्खनन से प्रस्तर की प्रतिमाएँ, मिट्टी की बहुसंख्यक मूर्तियाँ, सिक्के, अभिलेख तथा मुहरें मिली हैं। यहाँ की प्रस्तर प्रतिमाओं के अध्ययन से यह पता चलता है कि द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 में जिस समय भरहुत, साँची, तथा बोधगया में अमर कलाकृतियों का सृजन हो रहा था, कौशाम्बी का तक्षकार (मूर्तिकार) शान्त नहीं बैठा हुआ था। घोषितराम विहार से प्रस्तर की ऐसी कलाकृतियाँ मिली हैं जिन पर बुद्ध का प्रतीकों के माध्यम से अंकन किया गया है। यहाँ से स्तूप की प्रस्तर वेदिका के अनेक खण्डित अंश मिले हैं जिनमें से कुछ पर द्वितीय प्रथम शताब्दी ई0 पू0 की लिपि में लघु आकार के अभिलेख भी अंकित हैं । कौशाम्बी के घोषिताराम विहार से कुषाण काल की लेखयुक्त कतिपय ऐसी प्रतिमाएं मिली हैं जिनका निर्माण तो मथुरा में हुआ था लेकिन बौद्ध धर्म का एक प्रसिद्ध केन्द्र होने के कारण जिनकी स्थापना भिक्षुणी बुधमित्रा ने कौशाम्बी में करायी थी । गुप्त काल में जिस तरह मथुरा और सारनाथ में मूर्तिकला की अलग–अलग शैलियाँ थीं उसी तरह संभवतः कौशाम्बी गुप्त काल में एक कला केन्द्र था। यहाँ से प्रथम शताब्दी से लेकर पाँचवीं शताब्दी तक की प्रस्तर–मूर्तियाँ मिली हैं ।

घोषिताराम से मृण्मूर्तियाँ भी बड़ी संख्या में मिली है । इनमें मौर्य, शुंग तथा शक–पार्थियन कालों की मिट्टी की मूर्तियाँ अधिक संख्या में मिली हैं ।

शक–पार्थियन मृण्मूर्तियों में तिकोनी शिरावेश–भूषा से युक्त मातृदेवी तथा मृदंग वादक आदि की मिट्टी की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। ये ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में गांगेय क्षेत्र में व्याप्त विदेशी प्रभाव का दिग्दर्शन कराती है । गजलक्ष्मी तथा हारीति की आदमकद मृण्मूर्तियाँ आकार–प्रकार एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से अनुपम हैं ।

कौशाम्बी के घोषिताराम के उत्खनन से प्राप्त रजत एवं ताम्र आहत मुद्राएं (सिक्के) तथा लेख रहित ढले हुए सिक्के पाँचवीं–चौथी शताब्दी ईसवी पूर्व में प्रचलन में आये । इनके अलावा कौशाम्बी के स्थानीय सिक्के, कुषाण तथा मघ राजाओं के सिक्के उल्लेखनीय हैं । प्राचीन भारतीय इतिहास के अर्थिक तथा अन्य पक्षों पर इनसे प्रकाश पड़ता है । मणि–माणिक्य, मिट्टी तथा हड्डी के बने हुए मनके बहुत बड़ी संख्या में मिले हैं, जो तत्कालीन लोगों के सौंदर्य–बोध के साथ–साथ निर्माता शिल्पियों के हस्तलाघव के मूक साक्षी हैं ।

घोषिताराम से जो अनेक छोटे–छोटे अभिलेख मिले हैं उनमें से नन्दिशा का अभिलेख, आयागपट्ट, शतदल प्रदीपलेख, विहार की मुद्रा (सील) विशेष महत्वपूर्ण हैं । आयागपट्ट अभिलेख के अनुसार भदन्तधर के शिष्य भिक्षु फगल ने घोषिताराम में सभी बुद्धों की पूजा के लिए शिला स्थापित करायी थी (भयंतस धरस अंतेवासिस भिक्खुख फगलस, बुधावा से घोषितारामे सब बुधानां पुजाये शिला कारापिता)। घोषिताराम विहार चूँकि सभी साक्ष्यों के अनुसार कौशाम्बी में ही था इसलिए आयागपट्ट पर उल्लिखित अभिलेख से कौशाम्बी के समीकरण के सन्दर्भ में अब कोई विवाद नहीं रहा । यहाँ से मघ राजवंश के महाराज भद्रमघ के कई अभिलेख भी मिले हैं ।

घोषिताराम से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्य यह इंगित करते हैं कि छठवीं शताब्दी ईसवी के प्रथम दशक में यहाँ पर हूण आक्रमण हुआ । हूणों की लूट–पाट एवं आगजनी का शिकार घोषिताराम बौद्ध विहार भी हुआ । घोषिताराम के उत्खनन से मिट्टी की दो मुहरें (सील) मिली हैं । इनमें से एक पर तोरमाण नाम प्रति–मुद्रांकित (काउन्टर स्टक) है तथा दूसरी पर हूणराज उत्कीर्ण है । तोरमाण

का मध्य प्रदेश के सागर जिले में स्थित एरण नामक स्थान से एक अभिलेख मिला है जिसकी तिथि 510 ईसवी निर्धारित की गयी है । इस आधार पर घोषिताराम पर आक्रमण का समय सन् 510 से 515 ईसवीं के बीच अनुमानित किया जा सकता है।

कौशाम्बी की रक्षा–प्राचीरः कौशाम्बी में तीसरा उत्खनित क्षेत्र पूर्वी प्रवेश–द्वार के पास स्थित है । यहाँ पर उत्खनन कार्य सन् 1957–59 ईसवी के बीच में कौशाम्बी की रक्षा–प्रणाली के इतिहास के अध्ययन तथा मूल रक्षा–प्राचीर (परकोटे) और बाद के परिवर्तन–परिवर्द्धन की प्रकृति एवं प्राचीनता का पता लगाने के उद्देश्य से किया गया था । पूर्वी प्रवेश–द्वार के समीपवर्ती क्षेत्र में हुए उत्खनन से रक्षा–प्राचीर के अतिरिक्त सांस्कृतिक जमाव के सन्दर्भ में भी नवीन साक्ष्य उपलब्ध हुए हैं । कौशाम्बी के तीन ओर एक रक्षा–प्राचीर (परकोटा) थी जिसकी ऊँचाई आस–पास के सममतल मैदान से 9 से 10 मीटर के बीच में मिलती है । रक्षा–प्राचीर में उत्तर–पश्चिम तथा उत्तर–पूर्व में बने हुए बुर्जों (टावर्स) की ऊँचाई 21.35 मीटर तक है । परकोटे के तीन ओर गहरी खाई थी। परकोटे में पूर्व, उत्तर तथा पश्चिम दिशाओं में कुल मिलाकर ग्यारह द्वार थे जिनमे से पाँच मुख्य द्वार थे तथा छः गौण द्वार (सब्सीडियरी गेट्स) थे । उत्तर दिशा में एक तथा पूर्व और पश्चिम दिशाओं में दो–दो मुख्य द्वार थे । कौशाम्बी में इस क्षेत्र में जिन चार संस्कृतियों के साक्ष्य मिले हैं उनका काल–क्रम पुरातात्विक आधार पर निर्धारित किया गया है । इस काल–क्रम के अनुसार कौशाम्बी में रक्षा–प्राचीर या किलेबन्दी का प्रारम्भ लगभग 1023 ई0पू0 में हुआ । प्रथम खाई (मोट) तथा उसकी समकालिक सड़क का निर्माण लगभग 885 ई0 पू0 में, द्वितीय रक्षा–प्राचीर लगभग 535 ई0 पू0 में और रक्षक कक्षों की व्यवस्था की शुरूआत 325 ई0 पू0 में हुई थी। तृतीय रक्षा–प्राचीर 185 ई0 पू0 में चतुर्थ 45 ई0 पू0 में निर्मित हुई थी । पाँचवी रक्षा–प्राचीर का निर्माण लगभग 165 ईसवी में और विनाश लगभग 515 ईसवी में हुआ था । तृतीय रक्षा–प्राचीर का निर्माण मित्र राजवंश के शासन–काल में हुआ था और पांचवी रक्षा–प्राचीर का निर्माण मघ राजवंश के शासनकाल में हुआ था। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि कौशाम्बी की विभिन्न संस्कृतियों के

कालानुक्रम (क्रोनोलाजी) के सम्बन्ध में अनेक पुराविदों ने तरह–तरह की शंकाएँ उठायी हैं। इसी तरह रक्षा–प्राचीर के निर्माण तथा उनके काल–क्रम से भी असहमति व्यक्त की गई है ।

प्रथम और द्वितीय सांस्कृतिक काल का विवरण पिछले अध्याय में प्रसंगवश दिया गया है। कौशाम्बी के उत्खनन कार्य के संचालक स्वर्गीय जी0 आर0 शर्मा के अनुसार लेख–रहित ढले हुए सिक्कों का सर्वप्रथम प्रचलन नवीं शताब्दी ई0 पू0 (885–815 ई0 पू0) में हो गया था। आहत सिक्कों का चलन उसके बाद में हुआ परन्तु इन निष्कर्षों से अधिकांश विद्वान सहमत नहीं हैं । कौशाम्बी के लेख–रहित ढले हुए तांबे के सिक्कों का समय कतिपय विद्वान तीसरी शताब्दी ई0 पू0 मानते हैं।

तृतीय सांस्कृतिक काल– उत्तरी काली चमकीली पात्र–परम्परा से सम्बन्धित हैं। इससे आठ निर्माण–काल (9 से 16 तक) सम्बद्ध हैं। उत्तरी कृष्ण–मार्जित (ओपदार) मृदभाण्ड परम्परा इस पुरास्थल की वैभवपूर्ण स्थिति की सूचना देती हैं । इस संस्कृति का कालानुक्रम 605 ई0 पू0 के मध्य निर्धारित किया गया है ।

चतुर्थ सांस्कृतिक काल में सत्रहवें से लेकर पच्चीसवें निर्माण–काल (नौ) तक आते हैं। इस काल में उत्तरी काली चमकीली पात्र–परम्परा का पूर्ण अभाव मिलता है। लाल रंग की पात्र–परम्परा (रेड वेयर) इस काल की प्रमुख मृदभाण्ड परम्परा है। थाली, कटोरे, घड़े, कलश, मटके, कड़ाही, तसले तथा ढक्कन आदि प्रमुख पात्र–प्रकार हैं । इसका कालानुक्रम 45 ई0 पू0 से लेकर 85 ईसवीं के बीच निर्धारित किया गया है ।

राजप्रसाद क्षेत्रः कौशाम्बी का चतुर्थ उत्खनन यमुना नदी से लगे हुए टीले के दक्षिणी–पश्चिमी भाग में सन् 1960 ईसवी में सम्पन्न हुआ । इस उत्खनित क्षेत्र को 'राजप्रसाद क्षेत्र' के नाम से अभिहित किया गया है । यद्यपि इस बात का कोई अभिलेखिक साक्ष्य नहीं मिला है कि यहाँ पर राजपरिवार रहता रहा होगा लेकिन इसकी विशालता तथा निर्माण में पत्थरों के प्रयोग को देखकर यह अनुमान लगाया

गया है कि इसका निर्माण किसी विशिष्ट व्यक्ति के रहने के लिए किया गया होगा और इस तरह इस के 'राजप्रसाद' होने की संभावना व्यक्त की गई है ।

सम्पूर्ण राजप्रसाद क्षेत्र में ऐसा कहा जाता है कि प्रस्तर के छोटे–छोटे टुकड़े, प्लस्तर के अंश तथा उत्तरी काली चमकीली पात्र–परम्परा और उसके साथ सम्बद्ध अन्य पात्र–परम्पराओं के पात्र–खण्ड बिखरे पड़े थे । यहाँ पर दो छोटे किन्तु ऊँचे टीले स्थित थे जो 75 X 45 मीटर के क्षेत्र में फैले हुए थे । प्रस्तर–निर्मित इस राजप्रसाद की चहारदीवारी के उत्तरी तथा दक्षिणी पार्श्व समानान्तर हैं किनतु पूर्वी तथा पश्चिमी दिशाओं की दीवालें वक्ररेखीय (कर्बिलिनियर) हैं। इस तरह इसका आकार वृत्तायतकार (बेरल शेप्ड) है। उत्तर–पूर्वी, उत्तर–पश्चिमी तथा दक्षिण–पूर्वी पार्श्वों पर गोलाकार तीन बुर्ज (टावर्स) हैं। राजमहल के तीन ओर गहरी और 4.6 मीटर चौड़ी सूखी परिखा या खाई (ड्राई ड्रिच) थी जिसके साक्ष्य उत्तरी परकोटे की उत्तर दिशा में सीमित क्षेत्र से मिले हैं ।

उत्खनन से दीवालों के जो साक्ष्य मिले हैं वे राजमहल की निर्माण–सम्बन्धी वास्तुकला के विकास में चार अवस्थाओं का संकेत करते हैं जिनको दस उपकालों में विभाजित किया गया है। प्रारम्भिक काल में राजमहल की दीवाल के निर्माण में अनगढ़ पत्थरों का उपयोग किया गया था। इसका समय आठवीं से छठवीं शताब्दी ई0 पू0 के बीच में माना गया है। द्वितीय काल में भली–भाँति गढ़े हुए 60 X 53 X 20 सेंटीमीटर आकार के पत्थरों का उपयोग राजमहल के दरवाजों के निर्माण के लिए किया गया था। दीवालों की चिनाई में प्रयुक्त बाहरी पत्थर गढ़े हुए थे किन्तु भीतरी भाग में हर तरह के रोड़े भर दिये गये थे। इसका कालक्रम छठवीं शताब्दी ई0 पू0 से द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 के बीच में निर्धारित किया गया है ।

तृतीय काल में दीवालों का निर्माण ईटों से किया गया तथा दीवाल के अन्दर के भाग में पत्थर के टुकड़े जोड़े गये थे । इसका समय द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 से प्रथम शताब्दी ईसवी के बीच में माना गया है। चतुर्थ काल में बड़े पैमाने पर निर्माण कार्य हुआ। इस काल में दीवालों को बनाने के लिए ईटों तथा पत्थरों का

मिला–जुला प्रयोग किया गया था। पाषाण–खण्ड़ों के गढ़ने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया । बल्कि अनगढ़ पत्थरों का ही प्रयोग किया गया था। साबूत ईटों का अभाव मिलता है। टूटी–फूटी ईटों (ब्रिक–बैट्स) का प्रयोग दीवाल के निर्माण में मिलता है। निर्माण–सामग्री की कमजोरी को दूर करने के लिए मोटा प्लस्तर किया गया था। इस काल से मेहराब (आर्च) के प्रमाण मिले हैं। आमतौर पर यह समझा जाता था कि निर्माण की इस तकनीक का प्रयोग भारत में अरबों के आगमन से प्रारम्भ हुआ और वह समय आठवीं शताब्दी ईसवी (712 ईसवी) समझा जाता था लेकिन कौशाम्बी के राजमहल क्षेत्र के उत्खनन से उपलब्ध साक्ष्य यह इंगित करते हैं कि प्रथम तथा द्वितीय शताब्दी ईसवी में कुषाण काल में भारत में इस तरह के मेहराब बनने लगे थे । चतुर्थ काल का कालानुक्रम प्रथम शताब्दी के मध्य निर्धारित किया गया है। अनेक पुराविद् राजमहल के कालक्रम से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार राजमहल प्राचीन नहीं हैं (लाल 1979–80: 88–95)। वे इसको मध्यकाल में रखने के पक्ष में हैं।

कौशाम्बी के उत्खनन से दोआब के निचले क्षेत्र में मानव के आवास के साक्ष्य बारहवीं शताब्दी ई0 पू0 के सन्दर्भ में मिलते हैं। यहाँ पर आबादी कम से कम छठवीं शताब्दी ईसवी तक चलती रही। कौशाम्बी से रक्षा–प्राचीर के साक्ष्य मिले हैं जिस पर बने बुर्ज और कंगूरे तत्कालीन वास्तुकला के वैशिष्ट्य से परिपूर्ण हैं। प्रस्तर तथा मिट्टी की मूर्तियाँ, सिक्कें, अभिलेख, मुहरें, लोहे के बाणाग्र (ऐरो हेड्स) तथा अन्य लौह उपकरण एवं मनके यहाँ से प्राप्त उल्लेखनीय पुरावशेष हैं। कौशाम्बी प्राचीन काल में राजनीतिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र थी। उत्खनन से प्राप्त साक्ष्य साहित्यिक परम्परा की आंशिक रूप से पुष्टि करते हैं।

श्रृंगवेरपुर

श्रृंगवेरपुर (अक्षांश 25^0 26′ 10″उ0, देशान्तर 81^0 54′ 30″ पू0) नामक पुरास्थल इलाहाबाद जिले की सोरांव तहसील में इलाहाबाद–उन्नाव मार्ग पर उत्तर–पश्चिम दिशा में लगभग 36 किलोमीटर की दूरी पर गंगा के बायें तट पर

स्थित है। यहाँ पर लगभग 10 मीटर ऊँचा एक प्राचीन टीला है जिसके काफी बड़े भाग को गंगा नदी ने अपने प्रवाह मार्ग में आत्मसात कर लिया है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार वनवास के लिए अयोध्या से प्रयाग की ओर जाते समय राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ यहाँ पर एक रात व्यतीत किया था। दूसरे दिन निषाद राज ने उन्हें गंगा पार कराया और वे भारद्वाज के आश्रम में पहुँचे।

इस पुरास्थल का उत्खनन शिमला उच्च अध्ययन संस्थान और भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के संयुक्त तत्वाधान में बी0 बी0 लाल और के0 एन0 दीक्षित के निर्देशन में दिसम्बर सन् 1977 से 1982 तक हुआ।

श्रृंगवेरपुर के उत्खनन के फलस्वरूप जो पुरावशेष तथा पुरानिधियाँ मिली हैं उनको सात विभिन्न सांस्कृतिक कालों में विभाजित किया गया है । यहाँ के अधिकांश सांस्कृतिक कालों के बीच में सातत्य देखने को मिलता है।

श्रृगंवेरपुर का तृतीय सांस्कृतिक काल (700–250 ई0 पू0) उत्तरी काली परिमार्जित मृदभाण्ड परम्परा से सम्बन्धित है। द्वितीय एवं तृतीय कालों के मध्य अन्तराल के नहीं अपितु सातत्य के साक्ष्य मिले हैं ।

इस काल के पुरावशेषों में मृदभाण्डों के अतिरिक्त तांबे के तीन बड़े कलश, एक कछुल, नारी मृण्मूर्तियाँ, माणिक्य, मिट्टी, स्वर्ण के मनके, पशु मूर्तियाँ, तांबे और लोहे के उपकरण तथा आहत एवं लेख–रहित ढले हुए सिक्के विशेष उल्लेखनीय हैं। भवन निर्माण में इस काल के अन्तिम चरण में पकी हुई ईटों का उपयोग होने लगा था। स्वच्छता तथा सफाई के लिए लोग निजी घरों मे मृत्तिका वलय कूपों तथा सोख्ता गड़ढों का उपयोग करते थे।

पुरातात्विक आधार पर 600 ई0 पू0 से 300 ई0 पू0 के मध्य उत्तरी काली चमकीली पात्र–परम्परा का कालक्रम निर्धारित किया गया है । श्रृंगवेरपुर के उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा के स्तर से एकत्र किये गये एक नमूने की ऊष्मा दीप्ति तिथि 700 ई0 पू0 निर्धारित की गई है। यह नमूना मध्यवर्ती स्तर से एकत्र किया गया था। इसके आधार पर तृतीय काल के प्रारम्भ की तिथि 700 ई0 पू0 निर्धारित की गयी है। यह उल्लेखनीय है कि भारत के विभिन्न पुरास्थलों के सन्दर्भ

में उष्मा दीप्ति तिथियों की संख्या बहुत अधिक नही है। अन्य देशों के सन्दर्भ में भी अभी तक तिथि निर्धारण की यह प्रणाली प्रयोग के स्तर पर ही है । अतः इस तिथि पर निश्चयता की मुहर नहीं लगी है। लेकिन उल्लेखनीय है कि अब कुछ स्थलों से इतनी प्राचीन कार्बन तिथियाँ भी मिल रहीं हैं।

चतुर्थ काल (250 ई0 पू0 – 200 ई0) को दो उपकालों में विभाजित किया गया है। लाल रंग के मिट्टी के बर्तन, शुंग कालीन मृण्मूर्तियाँ तथा अयोध्या के शासकों के सिक्के मिले हैं। श्रृंगवेरपुर के मुख्य टीले के उत्तर–पूर्व में पकी ईटों से निर्मित आयताकार तालाब के साक्ष्य मिले हैं। यह तालाब उत्तर से दक्षिण की ओर लगभग 200 मीटर लम्बा है। उत्तर में जल के लिए प्रवेश–द्वार और दक्षिण में निकास–द्वार बना हुआ था। यह तालाब अपने किस्म का अद्वितीय उदाहरण है जिसमें नगर निवासियों के लिए पेयजल को साफ करने के लिए बहुत सुन्दर व्यवस्था थी। कुषाण काल में यहाँ के भवन पकी हुई ईटों के बनाये जाते थे। कुल मिलाकर इस सांस्कृतिक काल में आर्थिक समृद्दि का संकेत मिलता है।

पंचम काल (600–1300 ई0) का समय प्राप्त पुरावशेषों के आधार पर छठवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी ईसवी के बीच में निर्धारित किया गया है। इस काल के एक मृदभाण्ड में कतिपय आभूषण और गाहड़वाल राजवंश के शासक गोविन्द चन्द्र (1114–1154 ई0) के द्वारा चलाये गये चाँदी के तेरह सिक्के मिले हैं। श्रृंगवेरपुर का पुरास्थल तेरहवीं शताब्दी ईसवी के पश्चात् लगभग चार सौ वर्षो तक वीरान रहा। यहाँ पर अन्तिम बार सत्रहवीं–अट्ठारहवीं शताब्दी ईसवी में पुनः लोग आकर बसे। इस बात की पुष्टि यहाँ से प्राप्त पुरावशेषों से होती है।

प्रथम शताब्दी ईसवी के कुषाण कालीन पक्के तालाब को श्रृंगवेरपुर के उत्खनन की विशिष्ट उपलब्धि माना जा सकता है ।

झूँसी

झूँसी की (अक्षांश 25^0 26′ 10″ उ0, देशान्तर 81^0 54′ 30″ पू0) पहचान प्रतिष्ठानपुर से की गई है । इस स्थल की भौगोलिक स्थिति, परिवेश तथा पुरातात्विक अनुसंधानों के विषय में पूर्ववर्ती अध्यायों में चर्चा की गयी है । यहाँ के

उत्खनन से एन0 बी0 पी0 डब्लू0 संस्कृति का सम्बन्ध तृतीय संस्कृति काल से है । समग्र रूप से दृष्टिपात करने पर इस संस्कृति का जमाव 5.84 मीटर मिला है जिसमें इस संस्कृति से सम्बन्धित मृदभाण्ड जो विशिष्ट पात्र परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं, प्राप्त हुए हैं । इनमें एन0 बी0 पी0 डब्लू0 पात्र परम्परा कृष्ण लेपित पात्र परम्परा लाल रंग के बर्तन और अकस्मिक रूप कृष्ण लोहित पात्र परम्परा के बर्तन मिलते है । अधिकांश बर्तन चाक निर्मित हैं एवं चित्रण अभिप्राय इनके ऊपर मिलता है । झोपड़ी आवासीय उपयोग के लिए मिलती है । फर्श एवं पकी हुई ईटों का प्रयोग इसके मध्य चरण से उद्घाटित हुए हैं । वलय कूप इस काल की महत्वपूर्ण विशेषता है । ताम्रउपकरण हड्डी के उपकरण, बाणाग्र, उपरत्नों और मिट्टी पर बने मनके विशेष रूप से सांस्कृतिक काल में प्राप्त होते हैं । पशुओं की हड्डियाँ प्रभूत मात्रा में प्राप्त हुई हैं, जिसमें भेड़, बकरी, सुअर, भैंसें इत्यादि सम्मिलित है । इस धरातल के मध्य चरण से एक जला हुआ 10–20 सेमी मोटा जमाव प्राप्त हुआ है जिससे भंयकर अग्निकांड का साक्ष्य प्रस्तुत होता है । अनाज के जले हुए दाने प्रभूत मात्रा प्राप्त हुए हैं । अनाजों में गेहूँ, जौ, सरसों, धान इत्यादि उल्लेखनीय है । उपलब्ध साक्ष्यों से यह प्रमाणित होता है कि इस संस्कृति के लोग विभिन्न प्रजाति के पशुपालते थे । और विभिन्न प्रकार की फसलों की खेती करते थे खरीफ और रबी दोनों प्रकार की फसलें उगायी जाती थी । पकी हुई ईटों का प्रयोग इस संस्कृति के मध्य चरण से प्राप्त होने लगता है । अन्य पुरासामग्रियों में आहत और लेखरहित ढली हुई ताम्र मुद्राएं, कुछ प्रतीकों से युक्त मिट्टी की मुहरें और मुहरों की छाप, पशु मृण्मूर्तियों, लोहे के उपकरण, पुच्छल युक्त हड्डी के बाणाग्र, उपरत्नों के मनके और कटने के निशान से युक्त पशुओं की हड्डियाँ सम्मिलित हैं । झूँसी का उत्खनन एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृति के समय में पकी ईटों से निर्मित संरचनाओं की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं (मिश्रा एवं अन्य 1997; पाल और अन्य 2002; वर्मा 2002)।

भींटा

इलाहाबाद से लगभग 20 किलोमीटर दक्षिण में यमुना नदी के दाहिने तट पर भींटा नामक स्थल पर कई प्राचीन टीले विद्यमान हैं । इस स्थल का 1909–10 और 1911–12 में सर जान मार्शल ने उत्खनन किया था और इसकी रिपोर्ट भी प्रकाशित की थी (मार्शल 1911: 127) । लेकिन उस समय तक भारतीय पुरातत्व में उत्खनन की विधि विकसित नहीं थी और स्तरीकरण को उतना महत्व नहीं दिया जाता था । इसलिए जान मार्शल ने इस स्थल की पहचान प्राचीन सैन्य शिविर और व्यापारिक नगर के रूप में की थी । इस स्थल के उत्खनन से प्राक् मौर्य काल से लेकर गुप्त युग तक के पाँच सांस्कृतिक कालों के अवशेष प्राप्त हुए थे । उपलब्ध पुरातात्विक सामग्रियों में एन0 बी0 पी0 वेयर के बर्तन आहत और ढ़ले हुए सिक्के, आहत ढ़ले हुए जनपदों और कुषाणों की मुद्राएं, मृण्मूर्तियाँ तथा कुषाण एवं गुप्त काल की धार्मिक एवं व्यापारिक मुहरें उपलब्ध हुई थी (शर्मा 1953: 186)।

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण लखनऊ सर्किल द्वारा इस स्थल का पुनः उत्खनन प्रारम्भ हुआ है जिससे इस स्थल के स्तरीकरण और सांस्कृतिक विकास पर प्रकाश पड़ने की सम्भावना है ।

श्रावस्ती

लखनऊ से 160 किलोमीटर उत्तर–पूर्व दिशा में एक छोटा सा गाँव है, जो आधुनिक बौद्ध तीर्थ स्थलों में बोधगया और सारनाथ के उपरान्त तीसरा महत्वपूर्ण केन्द्र है। इस स्थल को सहेत–महेत नाम से जाना जाता है । गोंडा और बहराइच जनपदों की सीमा पर स्थित इस समय इस नाम से एक नये जनपद का निर्माण भी हुआ है । इस स्थल का उत्खनन भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा 1959 में डॉ0 के0 के0 सिन्हा ने किया था जिसकी रिर्पोट बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा 1967 में प्रकाशित की गई (सिन्हा 1967)। उत्खनन के परिणाम स्वरूप तीन सांस्कृतिक काल के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। प्रथम सांस्कृतिक काल एन0बी0पी0डब्लू0 उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृति से सम्बन्धित है । इस धरातल से कुछ पी0जी0डब्लू0 (चित्रित धूसर पात्र–परम्परा) के पात्र खण्ड प्राप्त हुए हैं, लेकिन ये

हस्तिनापुर के पी0 जी0 डब्लू0 से भिन्न हैं । इस सांस्कृतिक काल को 600 से 300 ई0 पू0 के मध्य रखा गया है । पात्र–परम्पराओं के अतिरिक्त शीशे और उपरत्नों के मनके, पशुओं की मृण्मूर्तियाँ, टेराकोटा डिस्क आदि उपलब्ध हुए हैं । इस धरातल से न तो कोई सिक्के मिले हैं न ही ईटों के भवन और संरचनाएं ही । उत्खनन कर्त्ता के अनुसार यह अनुपलब्धता सीमित उत्खनन क्षेत्र के कारण हो सकती है।

द्वितीय सांस्कृतिक काल के प्रारम्भ और प्रथम सांस्कृतिक काल के अन्त में समय का कोई स्पष्ट अन्तराल नहीं दिखाई पड़ता । लेकिन दोनों सांस्कृतियों के भौतिक अवशेषों में पर्याप्त परिवर्तन दिखायी पड़ता हैं । संभवतः द्वितीय सांस्कृतिक काल के लोगों की आवश्यकताएं बढ़ गई थीं और उनका वाह्य केन्द्रों से सम्पर्क बढ़ गया था। इस काल की पात्र–परम्परा मुख्यतः दैनिक उपयोग की है । इस चरण से प्राप्त हुई स्थानीय स्तर पर बने उपरत्नों के मनके, शीशे के मनके उपलब्ध हुए हैं। इसी चरण में नगर को मिट्टी की रक्षा प्राचीर से सुरक्षित किया गया था । इसके ऊपर पकी मिट्टी की ईटें लगाई गई थी ।

इस रक्षा प्राचीर का निर्माण कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित रक्षा प्राचीर के अनुरूप दिखाई पड़ता है । घरों का निर्माण पकी ईटों से किया गया है । मुहरें, सिक्के (लेख रहित ढ़ली हुई मुद्राएं, आहत मुद्राएं) और अयोध्या की स्थानीय मुद्राएं उपलब्ध हुई हैं। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी में इस चरण का अन्त हो जाता है और इसके बाद सिर्फ धार्मिक केन्द्र के रूप में ही इसकी पहचान/मान्यता सुरक्षित दिखायी पड़ती थी ।

तृतीय सांस्कृतिक काल के प्रमाण सीमित क्षेत्र में उपलब्ध हुए हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि नगर के रूप में यह स्थल वीरान हो गया था लेकिन प्राचीन अवशेषों के ऊपर कुछ क्षेत्रों में लोग रहते थे । तृतीय सांस्कृतिक काल को चतुर्थ पाँचवी शताब्दी ईसवी में रखा गया है । फाह्यान जब पाँचवी शताब्दी ईसवी के प्रारम्भ में यहाँ आया तब यह स्थल वीरान एवं आवास रहित था ।

नन्दिग्राम

अयोध्या से 16 किलोमीटर दक्षिण में नन्दिग्राम और उसके समीप के क्षेत्रों में कुछ उत्खनन किये गये थे (लाल 1989: 4–5)। तमसा नदी के तट पर स्थित नन्दिग्राम वाल्मीकि रामायण के अनुसार वह स्थान था जहाँ से भरत ने राम के वनवास के समय शासन किया था । यहाँ के उत्खनन से अयोध्या की ही तरह की प्राचीनता का प्रमाण प्रस्तुत करने वाली पुरासामग्रियाँ उपलब्ध हुई हैं । यद्यपि आजकल नन्दिग्राम तमसा के उत्तरी तट पर स्थित है लेकिन इसके दक्षिणी तट पर स्थित राहेट टीले के उत्खनन से महत्वपूर्ण पुरावशेष उपलब्ध हुए हैं (वर्मा 2000) ।

अयोध्या

अयोध्या में प्राचीन ध्वसांवशेष लगभग 4–5 किलोमीटर की परिधि में फैले हुए हैं जो समीपवर्ती धरातल से लगभग 10 मीटर ऊँचा है । इलाहाबाद विश्वविद्यालय के श्री विजय शंकर ने 1961–62 में अयोध्या के कई टीलों का सर्वेक्षण किया था और यहाँ की पुरातात्विक सम्पन्नता का संकेत दिया था । उन्हें सरयू नदी के तट पर 7.60 मीटर मोटे नदी के अनुभाग से एन0 बी0 पी0 पात्र–परम्परा के बर्तन उपलब्ध हुए हैं । रिंगवेल और सोकेज जार भी यहाँ पर विद्यमान थे (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू 1961–62:* 53)। इस स्थल की प्राचीनता तथा सांस्कृतिक अनुक्रम के निर्धारण के लिए 1969–70 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के ए0 के0 नारायण ने टी0 एन0 राय और पुरूषोत्तम सिंह की सहायता से उत्खनन किया था । सरयू नदी द्वारा काटे गये इसके प्राचीन अभुभागों में दीर्घकालीन आवास के प्रमाण मिलते हैं जो अयोध्या के प्राचीन स्थल के उत्तर भाग में आवासीय प्रमाण प्रस्तुत करते हैं । बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के पुरातात्विक दल ने यहाँ 3 स्थलों पर उत्खनन कार्य किया था– जैन घाट के समीप, लक्ष्मण टेकरी और नल टीला (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू 1969–70:* 40–41)। प्रथम दो स्थलों के उत्खनन में तीन सांस्कृतिक कालों का अनुक्रम प्राप्त हुआ था । यहाँ प्रथम और द्वितीय काल में सात्यता थी और तृतीय काल के पहले समय का एक अन्तराल था । तीसरे स्थल, जो अपेक्षाकृत निचले धरातल पर है के उत्खनन में केवल प्रथम सांस्कृतिक काल के प्रमाण उपलब्ध हुए थे। प्रथम

सांस्कृतिक काल में एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) मोटें ग्रे वेयर और इसकी समकालीन रेड वेयर के पात्र–खण्ड प्राप्त हुए हैं । इस काल की अन्य पुरासामग्रियों में पकी हुई मिट्टी का चक्र, गोलियाँ, पहिये, हड्डी के बने हुए बाणाग्र तथा तांबें, क्रिस्टल, शीशे और मिट्टी को बने हुए मनके उल्लेखनीय हैं । इस सांस्कृतिक काल के परवर्ती धरातल से भूरे रंग की 'मानव–मृण्मूर्तियाँ, कई पशु मृण्मूर्तियाँ और दो अयोध्या के सिक्के उपलब्ध हुए हैं । इस उत्खनन में कुछ लौह उपकरण भी प्राप्त हुए हैं । उल्लेखनीय हैं कि अयोध्या नगर की कुछ ताम्र मुद्राएं जिन पर प्रथम शताब्दी ई0 पू0 की ब्राह्मी लिपि में 'अजुघे' लिखा है, 1970–71 में भी मिली थी (*इण्डियन आर्कियोलाजीः ए रिव्यू 1970–71:* 63)। इस पुरातात्विक दल ने कुबेर टीले का भी गहन सर्वेक्षण किया था जिसकी पहचान–कनिंघम ने बौद्ध स्तूप से की थी । यहाँ 39 X 23 X 6 सेंटीमीटर के आकार के ईटों से निर्मित प्राचीन स्मारक के कई स्तर प्राप्त हुए थे ।

'आर्कियोलाजी ऑफ दी रामायण साइट्स' प्रोजेक्ट के अन्तर्गत सेन्टर आफ एडवान्स्ड स्टडी शिमला के बी0 बी0 लाल ने भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के के0 वी0 सौन्दरराजन तथा के0 एन0 दीक्षित के साथ सम्मिलित रूप से रामकथा से सम्बन्धित अयोध्या के 14 स्थलों का 1975–76, 1976–77 तथा 1979–80 ई0 में उत्खनन किया था (*इण्डियन आर्कियोलाजीः ए रिव्यू 1976–77:* 52–53)।

अयोध्या नगर के प्राचीन क्षेत्रों के दो प्रमुख स्थलों का उत्खनन कार्य 1976–77 में किया था – पहला राम जन्म भूमि टीला का और दूसरा हनुमानगढ़ी के पश्चिम में स्थित खुले हुए क्षेत्र में (*इण्डियन आर्कियोलाजीः ए रिव्यू 1979–80:* 76–77)। इसके अतिरिक्त सीता की रसोई–स्थल पर भी कुछ उत्खनन हुआ । उत्खनन में स्थल की प्राचीनता निर्धारण में कतिपय महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये। यहाँ पर सर्वप्रथम मानव आवासीय जमाव एन0बी0पी0 पात्र–परम्परा एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति का था जिसमें कई रंगो के साथ धुंधले काले रेग से चित्रित रेखीय चित्रों सें युक्त धूसर रंग के पात्र खण्ड भी उपलब्ध हुए हैं । अयोध्या में बी0 बी0 लाल द्वारा किये गये उत्खनन में निचले धरातल से पी0 जी0 डब्लू पात्र–परम्परा के जो पात्र–खण्ड उपलब्ध हुए हैं

उनका फैब्रिक (अनुभाग) मोटा है और उन पर धुँधले रेखीय चित्र बने हैं । ऐसे पात्र खण्ड कौशाम्बी के उत्खनन से भी उपलब्ध हुए हैं क्योंकि ये पात्र–खण्ड विशिष्ट (टिपिकल) चित्रित धूसर पात्र खण्डों से भिन्न हैं । इसलिए इन्हें पुरातत्वविद् चित्रित धूसर पात्र परम्परा की संस्कृति के स्थलों के अन्तर्गत नहीं रखते। (अग्रवाल डी0 पी0 1984)। उल्लेखनीय है कि श्रावस्ती, पिपरहवा, कौशाम्बी आदि पुरास्थलों के नमूने चित्रित धूसर पात्र–परम्परा की संस्कृति के परवर्ती चरण का प्रतिनिधित्व करते हैं । मथुरा, श्रावस्ती कौशाम्बी आदि स्थलों से प्राप्त तिथियों के आलोक में उत्खनन कर्ताओं ने जन्मभूमि के इस आवासीय जमाव की तिथि सातवीं शताब्दी ई0 पू0 निर्धारित की है । यह टीला तृतीय शताब्दी ई0 तक आबाद रहा जैसा कि कई निर्माणात्मक चरणों से प्रतीत होता है । प्रारम्भिक चरणों में लकड़ी, घास–फूस और मिट्टी के घरों का निर्माण किया जाता था, लेकिन बाद में पकी ईटों का प्रयोग किया जाने लगा । जन्म भूमि क्षेत्र के उत्खनन में ईटों से निर्मित एक विशाल दीवाल के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं जिसकी पहचान रक्षा–प्राचीर से की जा सकती है । इस विशाल दीवाल के ठीक नीचे कच्ची मिट्टी की ईटों से निर्मित एक संरचना उपलब्ध हुई है । इस चरण के ऊपरी धरातल में जिसे संभवतः तृतीय शताब्दी ई0 पू0 से प्रथम शताब्दी ई0 पू0 के मध्य के रक्षा–प्राचीर के परवर्ती चरण से सम्बन्धित किया जा सकता है । पकी मिट्टी के रिंग वेल प्राप्त हुए हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि रक्षा–प्राचीर एक गहरी खाई से युक्त थी, जो आंशिक रूप से प्राकृतिक मिट्टी में खोदी गई थी । इसी तरह हनुमानगढ़ी के पास के उत्खनन में भी एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) और परवर्ती कालों की संरचनायें ढाँचे, कई प्रकार के रिंग वेल जिसमें परवर्ती एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) काल में मिलने वाले वेज आकार के ईटों से निर्मित कुएं भी सम्मिलित हैं, प्राप्त हुए हैं । अयोध्या के प्राचीन टीलों के अधिकांश भाग संभवतः नदी द्वारा बहा दिये गये हैं । एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) जामव के ऊपर यहाँ गहरे लाल रंग का जला हुआ स्तर है । इस प्रमाण के आधार पर शुंग की द्वितीय राजधानी अयोध्या में पंतजलि द्वारा उल्लिखित इण्डो–यूनानी आक्रमण का संकेत मिलता है । इसी अग्निकांड के कारण अयोध्या

में एक युग का अन्त हुआ और एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति नष्ट हुई (शर्मा 1980)।

इस उत्खनन में बहुत सी महत्वपूर्ण पुरासामग्रियाँ उपलब्ध हुई थीं । इसमें लगभग आधा दर्जन मुहरे, 70 सिक्के और एक सौ से अधिक मृण्मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं । इसमें राजा वासुदेव की मिट्टी की मुहर विशेष उल्लेखनीय है । इस राजा के द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 के अयोध्या के सिक्के भी उपलब्ध हुए हैं । इसी काल से सम्बन्धित मूलदेव और एक भूरे रंग की कायोत्सर्ग मुद्रा में मानव मृण्मूर्ति (जो जैन केवलिन की प्रतीत होती है) उपलब्ध हुई है । चतुर्थ शताब्दी ई0 पू0 के धरातल से उपलब्ध यह मृण्मूर्ति संभवतः सम्पूर्ण भारतवर्ष में अपने प्रकार की सबसे प्राचीन नमूना हैं । पकी मिट्टी के बनी हुई बड़े आकार की धार्मिक मृण्मूर्तियाँ प्रथम शताब्दी ई0 के धरातल से हनुमानगढ़ी से अधिक संख्या में उपलब्ध हुई हैं जो अहिच्छत्र के उत्खनन से प्राप्त बी0 एस0 अग्रवाल द्वारा वर्णित तथाकथित विदेशी प्रकार की मृण्मूर्तियों की तरह है ।

प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल की महत्वपूर्ण खोजों में प्रथम द्वितीय शताब्दी ईसवी के धरातल से उपलब्ध राउलेटेड वेयर के पात्र–खण्डों का उल्लेख किया जा सकता है जो ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में अयोध्या में बड़े पैमाने पर व्यापार एवं वाणिज्य का संकेत करते हैं । यह व्यापार जलमार्ग से होता था । सरयू नदी का गंगा से छपरा में संगम होता है । गंगा नदी के मार्ग से अध्योध्या का सम्बन्ध पूर्वी भारत के ताम्रलिप्ति जैसे नगरों से था (देश पाण्डे 1969) । हाल के समय तक सरयू और गंगा नदियों द्वारा बड़ी आकार की नावों से व्यापार होता था । राउलेटेड वेयर की खोज से देश के अर्न्तवर्ती भागों से व्यापार एवं वाणिज्य का प्रमाण उपलब्ध हुआ है ।

इस उत्खनन में यहाँ गुप्तकाल के आवासीय जमाव प्राप्त हुए हैं । प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल के जमावों के बाद यहाँ के आवासीय जमाव में एक अन्तराल दिखाई पड़ता है । ग्यारहवीं शताब्दी ई0 के आस–पास यह स्थल फिर से

आबाद हुआ । ईटों और चूने से निर्मित मध्यकाल की एक फर्श इस धरातल से प्राप्त हुई है (*इण्डियन आर्कियोलाजीः ए रिव्यू 1976–77*: 52–53)।

1979–80 ई० में अयोध्या में 'आर्कियोलाजी ऑफ दी रामायण साइट्स' प्रोजेक्ट के अन्तर्गत सेन्टर आफ एडवान्स स्टडी शिमला के प्रो० बी० बी० लाल एवं पुरातत्व सर्वेक्षण के के० एन० दीक्षित के संयुक्त तत्वाधान में उत्खनन कार्य पुनः प्रारम्भ किया गया । इस वर्ष के उत्खनन का मुख्य उद्देश्य इस तथ्य का पता लगाना था कि क्या एन०बी०पी०डब्लू० (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) काल के पहले का कोई आवासीय जमाव अयोध्या में है या नहीं ?

इस उत्खनन से यह पता चला कि यहाँ का प्राचीनतम काल सातवीं शताब्दी ई० पू० के प्रारम्भ में एन०बी०पी०डब्लू० (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) के प्रथम चरण से सम्बन्धित किया जा सकता है और यह क्षेत्र पी०जी०डब्लू० के विस्तार क्षेत्र के बाहर था । प्रारम्भिक चरण में एन०बी०पी०डब्लू० (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) पात्र–परम्परा के बर्तन पतले अनुभाग वाले, अच्छी तरक पके हुए, चमकदार पालिश से युक्त और काले ब्लैक, स्टील ग्रे, इण्डिगो सिल्वरी, सुनहरे आदि विभिन्न रंगों के हैं । कुछ बर्तनों के प्रकार ऐसे हैं जो इसी चरण में मिलते हैं। एन०बी०पी०डब्लू० (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) के साथ मिलने वाली पात्र–परम्परा के प्रकारों में प्रथम चरण से मध्यवर्ती और परवर्ती चरणों में परिवर्तन दिखायी पड़ता है । मृण्मूर्तियों में विकास के चिन्ह परिलक्षित होते हैं । ये अधिक संख्या में उपलब्ध हुए हैं । उल्लेखनीय अन्य पुरासामग्रियों में जैस्पर, अगेट, चल्सिडनी के बने हुए और लगभग सभी धरातलों से मिलने वाले विभिन्न प्रकार के वाट अथवा बेलनाकार टुकड़े और राक क्रिस्टल और दूसरे उपरत्नों वाले पत्थर पर पक्षियों और पशुओं के आकार में बने हुए लटकनों का उल्लेख किया जा सकता है। एन०बी०पी०डब्लू० (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) काल में ही पकी ईटों के मकानों से युक्त नगर नियोजन, पकी मिट्टी के रिंग वेल आदि उपलब्ध हुए हैं लेकिन ये इस संस्कृति के प्रथम चरण से सम्बन्धित नहीं है ।

लगभग द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 में एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) काल के अन्त के बाद अयोध्या लगातार शुंग, कुषाण और गुप्त युग से मध्यकाल तक आबाद रहा । शुंग काल की पकी ईटों की बनी हुई एक दीवल प्रकाश में आयी हैं । इसी प्रकार गुप्त कालीन एक मकान के प्रमाण भी उपलब्ध हुए हैं । इस स्थल से उपलब्ध गुप्तकालीन मिट्टी के बर्तन श्रृंगवेरपुर और भरद्वाज आश्रम से उपलब्ध बर्तनों के सदृश है (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू 1979–80:* 76–77)।

गनवरिया/पिपरहवा

बस्ती जनपद में स्थित गनवरिया और पिपरहवा स्थलों का उत्खनन 1970–71 से 1976–77 तक भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के के0 एम0 श्रीवास्तव ने किया था (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू 1970–71* से *1976–77*)। पिपरहवा जहाँ एक बड़ा बौद्ध तीर्थ स्थल है, के उत्खनन से 'कपिलवस्त' से अंकित मुहरें उपलब्ध हुई हैं, जिसके आधार पर इसकी पहचान शाक्य राजधानी कपिलवस्तु के रूप में की गयी है । लगभग सात मीटर मोटे यहाँ के आवासीय जमाव को चार सांस्कृतिक कालों में विभाजित किया गया है–प्रथम सांस्कृतिक काल जिसे आठवीं शताब्दी ई0 पू0 से छठीं शताब्दी ई0 पू0 के बीच रखा गया है, से कुछ धूसर पात्र–परम्परा (ग्रे वेयर), कृष्ण लेपित पात्र–परम्परा (ब्लैक स्लिप्ड वेयर) और लाल पात्र–परम्परा (रेड वेयर) के पात्र प्राप्त हुए हैं । इस काल के आवासों का निर्माण मिट्टी से किया गया है । उत्खनन में मिट्टी, शीशे और उपरत्नों के मनके तथा कुछ शीशे की चूड़ियाँ भी प्राप्त हुई थी । कोई अन्य पाषाण उपकरण नहीं मिला था, लेकिन लोहे और तांबे की सामग्रियाँ प्राप्त हुई थीं । पहली बार यहाँ से लोहे का फाल प्राप्त हुआ। द्वितीय सांस्कृतिक काल जिसे छठीं शताब्दी ई0 पू0 से द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 के मध्य रखा गया है, से एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति के प्रमाण मिले हैं । बड़े पैमाने पर संरचनात्मक क्रिया कलापों के प्रमाण उपलब्ध होते हैं । इस काल के परवर्ती चरणों से कई कमरों और बरामदों से युक्त बड़े और छोटे घर प्राप्त हुए हैं । पशु और मानव मृण्मूर्तियों के अतिरिक्त मिट्टी के मनके, चूडियाँ, थपुआ, गाड़ी का पहिया और खिलौना गाड़ी

आदि प्राप्त हुए हैं । उपरत्नों और शीशे के मनके इस चरण से भी प्राप्त होते हैं । इसके परवर्ती चरण से सिक्के भी उपलब्ध हुए हैं । तृतीय सांस्कृतिक काल से शुंग कालीन और चतुर्थ सांस्कृतिक काल से कुषाण युग के अवशेष प्राप्त हुए हैं (श्रीवास्तव 1986)।

लखनेश्वरडीह

उत्तर–प्रदेश के बलिया जनपद में स्थित इस (अक्षांश देशान्तर) स्थल का सीमित क्षेत्र में एम0 एम0 नागर द्वारा 1956–57 में उत्खनन किया गया था । जिससे पत्थर और पकी मिट्टी की सामग्रियाँ तथा एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) के पात्र खण्ड प्रतिवेदित किये गये हैं । क्योकि प्रकाशित विवरणों में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए इस स्थल को लौह काल के किस चरण से सम्बद्ध किया जाये यह निश्चित नहीं है (*इण्डियन आर्कियोलाजीः ए रिव्यू 1956–57:* 29)।

सूसीपार

बलिया जनपद में स्थित सूसीपार स्थल का भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के बी0 आर0 मणि ने अभी हाल में पुरातात्विक अन्वेषण प्रारम्भ किया । यहाँ से एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) और पूर्व एन0बी0पी0डब्लू (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) के पात्र–खण्ड प्राप्त हुए हैं । विस्तृत रिपोर्ट के प्रकाशन के अभाव में सम्पूर्ण जानकारी दे पाना संभव नहीं है ।

बक्सर

चरितर वन के नाम से स्थानीय रूप में विख्यात बक्सर (अक्षांश 25^{0} 35′ उ0, देशान्तर 84^{0} 1′ पू0) बिहार के शाहाबाद जनपद में स्थित है । इस स्थल का उत्खनन 1963–64 और 65–66 (*इण्डियन आर्कियोलाजीः ए रिव्यू 1963–64:* 8;*इण्डियन आर्कियोलाजीः ए रिव्यू 1965–66:* 11) में लाला आदित्य नारायण ने बी0 पी0 सिन्हा के निर्देशन में किया था । यहाँ के प्रथम सांस्कृति काल से एन0बी0पी0डब्लू0, (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) ब्लैक–एण्ड–रेड वेयर, रेड वेयर, लौह उपकरण, हड्डी के बाणाग्र, सुरमा लगाने की सलाई, आहत सिक्के, नारी

और पशु मृण्मूर्तियाँ तथा उपरत्नों पर बने मनके प्राप्त हुए हैं । अधिकांश मृण्मूर्तियाँ आदिम शैली में प्राप्त होती है। द्वितीय सांस्कृतिक काल में ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी से सम्बन्धित पुरासामग्रियाँ उपलब्ध हुई हैं, जिनमें कुषाण शैली में निर्मित मृण्मूर्तियाँ, मिट्टी के बर्तन सम्मिलित हैं। कई मुहरें, मनके, लोहे के उपकरण और एक बड़ी दीवाल भी प्राप्त हुई थी। द्वितीय सांस्कृतिक काल के उपरान्त यह स्थल काफी समय तक वीरान रहा। मध्य युग में यहाँ पुनः अधिवास के प्रमाण तृतीय सांस्कृतिक काल से मिलते हैं जिनमें जहाँगीर और शाहजहाँ के कुछ चाँदी के सिक्के और कांचलित पात्र–परम्परा के बर्तन सम्मिलित हैं ।

उपलब्ध विवरणों से स्पष्ट है कि यह स्थल परवर्ती एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) चरण से सम्बन्धित है लेकिन 1963–64 के उत्खननों (*इण्डियन आर्कियोलाजी ए रिव्यू 1963–68*) से कुछ प्राचीन धरातल का भी संकेत मिलता है ।

पाटलिपुत्र

प्राचीन पाटलिपुत्र, पटना (अक्षांश 25^{0} 37′ उ0, देशान्तर 85^{0} 10′ पूर्व) की वास्तविक पहचान के सम्बन्ध में पटना के कई स्थलों का उत्खनन किया गया । अलेक्जेण्डर कनिंघम ने 1880 के आस–पास यहाँ के कुछ टीलों पर उत्खनन किया लेकिन इससे कुछ खास उपलब्धि नहीं हुई (वाडेल 1892, 1903; अल्टेकर और मिश्र 1959) । वाडेल ने बुलन्दी बाग, छोटी पहाड़ी, तापी मण्डी, और कुम्रहार के उत्तर पूर्व में महराजकुण्ड तथा रामपुर, बहादुरपुर और पृथ्वीपुर में उत्खनन किये। कुछ स्थलों पर उन्हें लकड़ी की शहतीरों और लकड़ी की अन्य सामग्रियाँ उपलब्ध हुई थीं । तिथिक्रम की दृष्टि से महत्वपूर्ण एक अशोक स्तम्भ का टुकड़ा भी उपलब्ध हुआ था । पी0 सी0 मुखर्जी (मुखर्जी 1898) ने लहानीपुर में किये गये छोटे उत्खनन से आहत सिक्के और चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के सिक्के प्राप्त किये। 1912–13 में बी0 बी0 स्पूनर (आर्कियोलजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया– एनुवल रिर्पोट 1912–13: 53) ने बुलन्दीबाग और कुम्रहार का उत्खनन किया । बुलन्दीबाग के उत्खनन में लकड़ी की शहतारें, लेखरहित और ढ़ली हुई मुद्राएं, मानव मृण्मूर्तियाँ

और एक रथ का पहिया प्राप्त हुआ। कुम्रहार में मौर्य युगीन स्तम्भ युक्त हाल कुषाण और गुप्त कालीन आहत सिक्के प्राप्त हुए हैं । 1926–27 में बुलन्दीबाग का पुनः उत्खनन किया गया था, जिसमें लकड़ी और ईटों के अवशेष प्राप्त हुए लेकिन इन उत्खननों से मौर्य युग के पहले के कोई भी अवशेष उपलब्ध नहीं हुए। अतः 1955–56 में (सिन्हा और नारायन 1955–56), के0 पी0 जायसवाल शोध संस्थान की ओर से अनन्त सदाशिव अल्तेकर के नेतृत्व में बी0 के0 मिश्र ने उत्खनन कार्य प्रारम्भ किया। उत्खनन से प्राप्त सांस्कृतिक जमाव को पाँच सांस्कृतिक कालों में विभाजित किया गया। प्रथम चार सांस्कृतिक कालों में क्रमबद्धता है, जो 600 ई0 पू0 से लेकर 600 ई0 के मध्य रखे गये हैं। पाँचवा सांस्कृतिक काल 1600 ई0 के प्रारम्भ का है।

प्रथम सांस्कृतिक काल से 600 ई0 पू0 से लेकर 150 ई0 पू0 के बीच के अवशेष प्राप्त हुए है जिसे एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति का नाम दिया गया है । द्वितीय सांस्कृतिक काल 150 ई0 पू0 100 ई0 के बीच का है जिसमें एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) अवनति के प्रमाण दिखाई पड़ते हैं। तृतीय सांस्कृतिक काल 100 ई0 से 300 ई0 के बीच का है इसमें में एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) का प्रयोग पूर्णतः समाप्त हो जाता है। प्रकाशित विवरणों के आधार पर इस स्थल के एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति के दो चरणों की पहचान की जा सकती है। यहाँ का प्रथम सांस्कृतिक काल प्रारम्भिक प्राक् संरचनात्मक चरण के एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति से सम्बन्धित है और द्वितीय सांस्कृतिक काल परवर्ती एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति का है। पाटलिपुत्र के ही अन्तर्गत कंकणबाग में भी पुरातत्वविदों ने उत्खनन कार्य किये थे। यहाँ सीवर लाइन खोदते समय मौर्य युगीन मृण्मूर्तियाँ एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) और कुछ काष्ठ स्तम्भों के अवशेष उपलब्ध हुए थे (*इण्डियन आर्कियोलाजीः ए रिव्यू 1970–71*: 62–64)। अतएव विस्तृत उत्खनन न हो पाने के कारण इसे भी

एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) और परवर्ती एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति से सम्बद्ध किया गया ।

बैशाली

वैशाली, बसाढ (अक्षांश 25^0 58′ उ0, देशान्तर 80^0 11′ पूर्व) को उत्तरी बिहार में पूर्व के मुजफ्फरपुर जिले के बसाढ़ गाँव से समीकृत किया गया है । अब वैशाली नाम से एक नया जिला बन गया है। रामायण और महाभारत ग्रन्थों में भारत के प्राचीन नगरों में इसकी गणना की गई है। लिच्छवियों की राजधानी, महावीर का जन्म स्थान और अशोक स्तम्भ की यहाँ पर उपलब्धि के कारण यह स्थल पुरातात्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। बुद्ध की मृत्यु के 150 वर्ष बाद द्वितीय बौद्ध संगीति का आयोजन भी यहाँ पर हुआ था। 1903–04 में ही टी0 ब्लाच (*आर्कलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया– एनुवल रिर्पोट 1903–04:* 81) ने और 1913–14 में बी0 बी0 स्पूनर (*आर्कलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया– एनुवल रिर्पोट 1913–14: 98*) ने इस स्थल का उत्खनन किया और बाद में 1950 में वैशाली संघ द्वारा इस स्थल पर एक छोटे स्तर का उत्खनन किया गया था (कृष्णदेव और मिश्र, 1961)। 1957–58 और 1961–62 के बीच के0 पी0 जायसवाल शोध संस्थान द्वारा उत्खनन कार्य किया गया (सिन्हा और राय 1969)। यहाँ पर जिन क्षेत्रों में उत्खनन कार्य किया उनमें प्राचीन तालाब, स्तूप, राजा विशाल का गढ़, धीमेन का तल्ला, चक्रनदास, गिरिया और लालपुरा प्रमुख हैं। लालपुरा से यहाँ के प्रमुख सांस्कृतिक जमाव प्राप्त हुए हैं जिसे 500 ई0 पू0 से लेकर 500 ई0 तक के चार सांस्कृतिक कालों में विभाजित किया गया है।

प्रथम सांस्कृतिक काल प्रथम ए और प्रथम बी दो उपचरणों में विभाजित है। प्रथम ए उपकरण में ब्लैक–एंड–रेड वेयर, रेड वेयर, एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा), हड्डी के बाणाग्र, लोहे के उपकरण आदि प्राप्त हुए हैं। कई धूसर पात्र (ग्रे वेयर) भी उपलब्ध हुए हैं। जिनमें से कुछ पर काले रंग के चित्र बनाये गये हैं । इस चरण से किसी भी संरचना के प्रमाण नहीं मिलते। प्रथम बी उपचरण 300 से 150 ई0 पू0 के मध्य रखा गया है जिसमें एन0बी0पी0डब्लू0

(उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) और ग्रे वेयर चलती रहती है तथा पकी ईटों की बनी दीवालों और उपरत्नों के मनके, नाग की मृण्मूर्तियाँ मिलती हैं।

द्वितीय सांस्कृतिक, काल जिसे 150 से 100 ई0 के मध्य रखा गया है, में एन0 बी0 पी0 डब्लू0, आहत और ढ़ली हुई मुद्राएं पूजार्थक फलक आदि उपलब्ध हुए हैं। तृतीय और चतुर्थ सांस्कृतिक काल जो क्रमशः 200 से 300 ई0 और 300 से 500 ई0 के मध्य के हैं, में पकी ईटों से बनीं संरचनाएं, मिट्टी की मुहरें और गुप्त काल की प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। वैशाली के उत्खननों में एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति के प्रारम्भिक और परवर्ती दोनों चरणों के प्रमाण प्राप्त होते हैं (सिन्हा 1969)।

चिरांद

चिरांद नामक पुरास्थल (अक्षांश 25^0 48′ उ0, देशान्तर 84^0 50′ पू0) के प्रकाश में आने एवं उसके उत्खनन का विस्तृत विवरण पूर्ववर्ती अध्यायों में प्रस्तुत किया जा चुका है। इसका प्रथम सांस्कृतिक काल नवपाषाण कालीन संस्कृति से सम्बन्धित तथा द्वितीय सांस्कृतिक काल ताम्रपाषाण युगीन संस्कृति से। प्रस्तुत अध्याय में केवल तृतीय सांस्कृतिक काल का सम्बन्ध सन्दर्भगत है अतः यहाँ केवल उसी का उल्लेख समीचीन है। चिरांद का तृतीय सांस्कृतिक काल एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा) संस्कृति से सम्बन्धित है। लेकिन पूर्ववर्ती ब्लैक स्लिप्ड वेयर और कृष्ण, लोहित पात्र–परम्परा के बर्तन इस चरण में भी मिलते हैं। अन्य पुरासामग्रियों में नवपाषाणिक कुल्हाड़ियाँ, शूर्मा लगाने की सलाई, पत्थर की गोलियाँ, सिल–लोढ़े, मिट्टी की खिलौना–गाड़ी, पशुओं और मानवों की मृष्मूर्तियाँ, लोहे के चाकू, हड्डी का बाणाग्र और कुछ आहत और ढले हुए ताम्र मुद्राएं सम्मिलत हैं। इस चरण के ऊपरी धरातल से पकी ईटों से निर्मित दीवाल भी उपलब्ध हुई हैं। इन ईटों का आकार 46 X 25 X8 मीटर है । एक निवास गर्त में दफनाया हुआ एक पशु कंकाल भी उपलब्ध हुआ था। मिट्टी का एक मुखौटा भी इस धरातल से उपलब्ध हुआ है। चतुर्थ सांस्कृतिक काल ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों से सम्बन्धित हैं।

राजगिरि

पटना से लगभग 100 किलोमीटर दक्षिण–पूर्व स्थित राजगिरि (25^0 1′ उ0 अक्षांश, $85^0$30′ पू0 देशान्तर) का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है । यह मगध की राजधानी थी तथा बिम्बिसार और अजातशत्रु के समय में महत्मा बुद्ध यहाँ कई बार आये थे । इस स्थल का उत्खनन अमलानन्द घोष ने 1950 में किया था और इसके सांस्कृतिक जमाव को चार सांस्कृतिक कालों में विभाजित किया (घोष 1950: 86)।

प्रथम सांस्कृतिक काल को पाँचवी शताब्दी ई0 पू0 के पहले माना गया है। द्वितीय सांस्कृतिक काल से एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति के प्रमाण मिलने लगते हैं । यहाँ से दाह संस्कार के बाद शवाधान के प्रमाण मिलते हैं । तृतीय और चतुर्थ सांस्कृतिक कालों को प्रथम शती ई0 पू0 से प्रथम शती ई0 के बीच रखा गया है ।

1953–54 में डी0 आर0 पाटिल ने यहाँ पुनः उत्खनन किया जिससे बौद्ध विहार और अन्य प्रमाण उपलब्ध हुए । 1961–62 और 1962–63 में रघुवीर सिंह ने यहाँ पर पुनः उत्खनन किया । जिससे एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) के प्रमाण उपलब्ध हुए। इन उत्खननों से एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति के प्रारम्भिक और परवर्ती दोनों चरणों के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं ।

अफसढ

बिहार के नेवादा जनपद में स्थित अफसढ़ का उत्खनन 1973–74 से लेकर 1983–84 के बीच पी0 सी0 प्रसाद द्वारा किया गया । यहाँ के सांस्कृतिक जमाव दो चरणों में विभक्त किये गये हैं । प्रथम में एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) ब्लैक वेयर, ब्लैक–एंड–रेड वेयर और एक लोहे के उपकरण, हाथी दाँत और मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं । द्वितीय चरण से परवर्ती गुप्त काल के शिवमंदिर के अवशेष मिले हैं। अफसढ़ को एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति के परवर्ती चरण के अन्तर्गत रखा गया है ।

चन्दहाडीह

उत्तरी बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में स्थित चन्दाडीह स्थल का उत्खनन 1977–78 में किया गया। उत्खनन से प्राप्त महत्वपूर्ण सामग्रियों में एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) और ग्रेवेयर के पात्र एवं इस संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए हैं (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू 1977–78:* 15)।

कटरागढ़

बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में स्थित कटरागढ़ स्थल का उत्खनन 1975–76 से लेकर 1979–80 तक किया गया। जिसके परिण.म स्वरूप एन0बी0पी0डब्लू0, (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) काले रंग से चित्रित धूसर पात्र (ग्रे वेयर और रेड वेयर) प्राप्त हुए हैं। परवर्ती सांस्कृतिक जमाव से शुंग कुषाण और पाल काल के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। इस स्थल के उत्खनन के विस्तृत विवरण अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू 1975–76:* 15 से 1979–80)।

बलिराजगढ़

उत्तरी बिहार के दरभंगा से 80 किलोमीटर उत्तर–पूर्व स्थित (अक्षांश 26^0 31′ उ0, देशान्तर 86^0 7′ पू0) स्थल पर 1962–63 में रघुवीर सिंह और एस0 मुखर्जी द्वारा किये गये उत्खनन से रक्षा प्राचीर के नीचे के जमाव से एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) के पात्र खण्ड उपलब्ध हुए हैं। यहाँ की रक्षा प्राचीर के तीन चरणों के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं, जिसका निर्माण द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में किया गया था और जो पाल युग तक उपयोग में आई। अन्य पुरा सामग्रियों में सिक्के, हड्डी की सामग्रियाँ और कुछ शुंगकालीन मृण्मूर्तियों सम्मिलित हैं (*इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू 1962–63* से *इण्डियन आर्कियोलाजी: ए रिव्यू 1974–75*)।

उक्त महत्वपूर्ण उत्खनित के स्थलों के विवरण से स्पष्ट है कि अधिकतर उत्खनन उर्ध्वाधर विधि से किया गया है जिससे स्थलों का सांस्कृतिक अनुक्रम और स्तरीकरण ही स्पष्ट हुआ है । इन संस्कृतियों के अन्य पक्षों पर बहुत कम

प्रकाश पड़ा है । गंगा घाटी के अधिकांश पुरास्थल ऊँचे टीले के रूप में मिलते हैं, जिन पर यदि बड़े क्षेत्र में उत्खनन किया भी जाये तो निचले धरातल पर पहुँचते पहुँचते उत्खनन का क्षेत्र सीमित हो जाता है । फिर भी उपलब्ध अवशेषों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मध्य गंगा घाटी में प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग की एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति के स्थल पूर्ववर्ती सांस्कृतिक जमाव के ऊपर मिलते हैं । ऐसे स्थल बहुत कम हैं जहाँ एन बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कति के ब्लैक–एंड–रेड वेयर और ब्लैक स्लिप्ड वेयर के साथ मिलने लगते हैं । लेकिन लोहे के व्यापक प्रचलन से यक्त एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति के प्राम्भिक चरण से जो सांस्कृतिक अवशेष उपलब्ध हुए उनके आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय समाज प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल में भी संभवतः प्राचीन परम्पराओं का पूर्णरूप से परित्याग नहीं कर सका था ।

मकानों का निर्माण एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति के प्रारम्भिक चरण में बाँस–बल्ली और घास–फूस की झोपड़ियों से अथवा मिट्टी की दीवारों से किया जाता था । एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति के परवर्ती चरण में ही नगरीकरण के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। आवास स्थल की विकसित प्रक्रिया में, मध्य और जिसमें पकी ईटों के मकान, मुद्राएं आदि से युक्त परवर्ती स्थल बड़ी नदियों के तट पर स्थित हैं । सहायक नदियों पर जो स्थल हैं भी उनका आकार छोटा है । जैसा कि आर0 एस0 शर्मा ने उल्लिखित किया है कि गंगा घाटी में कई स्थलों पर निवास का प्रारम्भ एन0 बी0 पी0 डब्लू0 काल से ही होता है । इस युग में इन स्थलों पर निवास क्षेत्र में भी वृद्धि हुई । उदाहरण के लिए, प्रहलादपुर, खैराडीह और गनवरिया (शर्मा 1983: 100) आदि स्थलों पर पहले आवास स्थल टीले के सीमित क्षेत्र में था, लेकिन एन0बी0पी0डब्लू0 संस्कृति के समय यह क्षेत्र बढ़ गया । उदाहरण के लिए इसी तरह के प्रमाण एन0बी0पी0डब्लू0 (उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र–परम्परा) संस्कृति के समय में ऊपरी गंगा घाटी के अतरंजीखेड़ा (गौड़ 1983: 243) तथा कानपुर (लाल 1984: 174) में किये गये उत्खननो से प्राप्त हुए हैं । जार्ज एरडसी ने मध्य गंगा

घाटी में कौशाम्बी और समीपवर्ती क्षेत्रों में पुरातात्विक अन्वेषण किया और इनको भी इसी तरह के प्रमाण उपलब्ध हुए (एरडसी, जार्ज 1985: 71, 1988)। इस संस्कृति के स्थलों के विस्तरण में स्पष्ट परिवर्तन दिखाई पड़ता है । इस समय पूर्ववर्ती काल की अपेक्षा नदियों से दूर भीतरी भागों में भी इनका विस्तार दिखलाई पड़ता है। उदाहरण के लिए सुल्तानपुर जनपद में बहुत से स्थल, तालाबों और झीलों के किनारे प्राप्त हुए हैं (कुमार 1989: 192–197; 1990), जबकि गोमती जो अपेक्षाकृत इस क्षेत्र की बड़ी नदी हैं, के तट पर इस संस्कृति के महत्वपूर्ण स्थल नहीं प्राप्त हुए हैं । इसका कारण संभवतः इस नदी की भंयकर बाढ़ अथवा इसका बार–बार अपना प्रवाह मार्ग परिवर्तित करना हो सकता है । इस युग में एक स्थल की दूसरे से दूरी भी कम हो जाती है । कहा जा सकता है कि एन0बी0पी0डब्लू0 संस्कृति के आवास स्थलों के विस्तार और स्थलों की संख्या में वृद्धि संभवतः आर्थिक सम्पन्नता के कारण मानव जनसंख्या में वृद्धि का संकेत करता है।

उपर्युक्त सभी संस्कृतियों का पुरातत्व ने जो स्वरूप प्रस्तुत किया है वह प्रारम्भ में आदिम कबीलों की आखेटक और संग्रहक अर्थव्यवस्था की संस्कृति है, जिसके पुनर्निमाण में वर्तमान काल की जनजातियों की जीवन शैली बहुत सहायक है। यद्यपि गंगा के मैदान में इतनी तीव्रगति से सांस्कृतिक विकास हुआ कि अधिकांश जनजातियाँ पिछले कुछ दशकों में ही अपने सांस्कृतिक स्वरूप में परिवर्तन कर चुकी हैं। यह नवपाषाणिक, ताम्रपाषाणिक और प्रारम्भिक ऐतिहासिक संस्कृतियों का जीवन में देखा जा सकता है । आधुनिक काल में प्रचलित विभिन्न ग्रामीण उद्योग, कृषि शिल्प आदि आज भी प्राचीन काल की तकनीक पर आधारित है।

षठम् अध्याय

उपसंहार

भारतवर्ष का प्रत्येक अंचल सांस्कृतिक विरासत एवं परम्पराओं से समृद्ध है। इन सांस्कृतिक परम्पराओं के मूर्त अवशेष यत्र–तत्र सर्वत्र विस्तीर्ण हैं। साहित्य, मनीषियों, इतिहासकारों एवं पुराविदों द्वारा नित्यप्रति अन्वेषण के परिणाम–स्वरूप नवीन सामग्री निरन्तर उद्घाटित हो रही है । इससे पुरातात्विक साक्ष्यों की संख्या में निरन्तर अभिवृद्धि हो रही है । इन सामग्रियों के व्यवस्थित अध्ययन से महत्वपूर्ण एवं अभीष्ट निष्कर्षों को असानी से प्राप्त किया जा सकता है । ऐसी स्थिति में उपेक्षित एवं अप्रकाशित पुरास्थलों की खोज, अभिलेखों, प्रतिमाओं तथा अन्य पुरासामग्रियों का विवरण और प्रकाशन एवं उनके सापेक्षिक महत्व का प्रतिपादन अपरिहार्य हो गया है ।

गंगा का मैदान उत्तर में हिमालय और दक्षिण में विन्ध्य पर्वत श्रृंखला के मध्य में स्थित है । गंगा के मैदान को तीन प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है :

(1) ऊपरी गांगेय मैदान या गंगा–यमुना–दोआब जो मोटे तौर पर पूर्व में इलाहाबाद तक फैला हुआ है ।

(2) मध्य गांगेय मैदान जो मोटे तौर पर पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार के राजमहल पहाड़ियों तक फैला है ।

(3) निम्न गांगेय मैदान जो पश्चिम बंगाल और डेल्टा तक है ।

मध्यपाषाण काल में सम्पूर्ण मध्य गांगेय मैदान का भूभाग संस्कृतियों के उद्भव और विकास की गाथा से परिपूर्ण है । इसके पश्चिमी क्षेत्र में विगत चार दशकों में हुये पुरातात्विक अन्वेषणों ने इस क्षेत्र को न केवल भारत के अपितु, विश्व के पुरातात्विक मानचित्र पर प्रतिष्ठित कर दिया है ।

मध्य गांगेय मैदान में दक्षिण के विन्ध्य क्षेत्र से मानव का प्रब्रजन सर्वप्रथम प्रातिनूतन काल के अंत में हुआ । इस प्रथम संस्कृति को अनुपुरापाषाण संस्कृति का नाम दिया गया है जो उच्चपुरापाषाण और मध्यपाषाण के संक्रमण को द्योतित करती है ।

उस समय गंगा का मैदान आज जैसा नहीं था, अभी निर्माणाधीन था। उसमें झीलें थीं और उस क्षेत्र में वे जानवर थे जो अब उस क्षेत्र में नहीं मिलते, जैसे हाथी, गैंड़े, दरियाई घोड़े, आदि । यह क्षेत्र लोगों को पसन्द आया होगा तभी उन्होंने इस क्षेत्र में रहने का फैसला किया होगा। लेकिन उनके सामने एक समस्या थी, वे अब भी उपकरण पत्थर के ही बनाते थे यह सुविदित है कि गंगाघाटी में पत्थर नहीं थे। उपकरणों के निर्माण की दिशा में एक नया प्रयोग प्रारम्भ हुआ और अब हड्डियों के भी उपकरण बड़ी संख्या में बनने लगे। प्रतापगढ़ जनपद के सदर एवं पट्टी, इलाहाबाद जनपद में करछना, फूलपुर, हंडिया एवं सोरांव तहसीलों के भू–भागों में अनेक स्थलों से मध्यपाषाण युग से जुड़े लघु पाषाण उपकरण एवं अन्य पुरासामग्रियाँ प्राप्त हुई हैं। गंगाघाटी के इस क्षेत्र में वैसे तो मानव के प्रवेश की कहानी उच्च पुरापाषाण काल के परवर्ती चरण में लगभग 15 हजार ई0 पू0 के आस–पास ही प्रारम्भ हो गयी थी लेकिन मध्य पाषाण काल तक आते–आते यह प्रक्रिया प्रबल होती दिखायी देती है। प्रारम्भ में संभवतः विन्ध्य क्षेत्र से गंगा घाटी की ओर मनुष्य का आना और कुछ महीनों के बाद विन्ध्य क्षेत्र की ओर पुनः लौट जाना ॠतुनिष्ठ प्रब्रजन रहा होगा। लेकिन धीरे–धीरे तत्कालीन मानव ने गंगा घाटी में ही रहने का निर्णय ले लिया। इस तरह प्रारम्भ हुआ उनकी अस्थायी बस्तियों का सिलसिला, कब्रों की कहानी आदि। प्रतापगढ़ जनपद में स्थित सरायनाहर राय, महदहा एवं दमदमा के साक्ष्य इस संदर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

मध्य गंगा घाटी में प्रथम मानव संस्कृति के प्रमाण प्रातिनूतन काल के अन्त और नूतनकाल के प्रारम्भ के अनुपुरापाषाण (इपीपैलियोलिथिक) संस्कृति से सम्बन्धित हैं, जो स्पष्टतः विन्ध्य क्षेत्र से आकर गंगा के मैदान को अपना उपनिवेश बनाने वाली प्रथम संस्कृति है। एक बार इन दोनों मैदानी और पठारी क्षेत्रों का जो पारस्परिक सांस्कृतिक सम्पर्क प्रारम्भ हुआ वह निरन्तर बना रहा और दोनों क्षेत्रों

की संस्कृतियों के पारस्परिक आदान–प्रदान में वस्तुतः भारतीय संस्कृति को पुष्ट आधार प्रदान किया।

प्रातिनूतन काल के अन्त में जलवायु में हुए परिवर्तन के कारण विन्ध्य क्षेत्र के मानव को गंगा के मैदान में आने के लिए बाध्य होना पड़ा। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में यह आगमन अल्पकालिक और ऋृतुनिष्ठ था। उपकरण निर्माण के लिए पत्थर लेकर विन्ध्य क्षेत्र का मानव मैदान में आता था, यहीं उपकरण निर्माण करता और शिकार तथा संग्रह में उनका प्रयोग करता और कुछ दिनों के बाद पुनः वापस चला जाता। यही कारण है कि अनुपुरापाषाण काल के सभी स्थलों (इलाहाबाद में अहिरी, और कुढा, वाराणसी में गढ़वा और प्रतापगढ़ में सुलेमान कुढ़ा, साल्हीपुर एवं मन्दाह) पर दीर्घकालिक आवास के प्रमाण नहीं प्राप्त होते हैं। जैविक अवशेष भी ऐसे स्थलों से कम मिले हैं। चिकनी कडी मिट्टी में ऐसे स्थलों पर चर्ट पर ही उपकरण मिलते हैं। इस संस्कृति के स्थलों को शिविर स्थल के अन्तर्गत रखा गया है, जो यायावर मानव के अल्पकालिक आवास क्षेत्र थे। उत्खनन के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता है कि ये झोपड़ी जैसे घर बनाते थे या नहीं। लेकिन विन्ध्य क्षेत्र में जैसा कि चोपानीमाण्डो के उत्खनन से पता चलता है कि एक दूसरे के सन्निकट गोलाकार झोपाड़ियाँ इस संस्कृति के लोग बनाते थे (मिश्र और अन्य 1980)।

नूतन काल में उपयुक्त जलवायु का आविर्भाव हुआ। प्राकृतिक सम्पदा में सम्पन्नता आई। तकनीकी विकास के कारण लघु पाषाण उपकरणों का धनुष–बाण के लिए प्रयोग और भोजन में वन्य अन्न का प्रयोग सिल–लोढ़े से पीसकर खाद्यान्नों का भोजन में उपयोग आदि कारणों से मध्य पाषाण काल में मानव जीवन अपेक्षाकृत बेहतर हुआ और जनसंख्या में तीब्र वृद्धि हुई। अब गंगा के मैदान के जिस क्षेत्र की पाषाण युगीन मानव ने खोज की थी, उसकी प्राकृतिक सम्पन्नता के कारण इस क्षेत्र को भी बड़े पैमाने पर आबाद किया गया, जिसके प्रमाण लगभग 200 से अधिक मध्यपाषाणिक स्थलों के रूप में मिलते हैं। ये स्थल यहाँ की प्राचीन धनुषाकार झीलों अथवा इन झीलों से निकलने वाली नदियों के तट पर स्थित हैं। उल्लेखनीय है कि अधिवासों के निर्माण के लिए मध्य पाषाण काल से ही ऐसे भू

भागों का चयन किया गया जो कुछ ऊँचाई पर स्थित थे जहाँ बाढ़ का पानी आसानी से नहीं पहुँचता था। स्थल चयन की यह परम्परा हमें परवर्ती ऐतिहासिक काल तक निरन्तर दिखाई पड़ती है। मध्य पाषाणिक मानव अपने आवासों का निर्माण गोलाकार अथवा अण्डाकार झोपड़ियों के रूप में करता था। सरायनाहर राय, महदहा और दमदमा नामक मध्य पाषाणिक स्थलों के उत्खननों से प्रमाणित होता है कि कुछ ऐसे स्थल हैं, जहाँ इस संस्कृति के लोग स्थायी रूप से निवास करने लगे थे। यद्यपि उनकी अर्थव्यवस्था आखेट और संग्रह पर ही आधारित थी। जंगलों और घास के मैदानों में प्रचुर मात्रा में विभिन्न प्रजाति के हिरण, बारहसिंहा, सुअर और खरगोश जैसे शाकाहारी जानवर थे। इन स्थलों के उत्खनन से हाथी, गैंडे, और भैंसे जैसे बड़े जानवरों के प्रमाण भी मिले हैं। नदियों और झीलों में मछली, कछुए, और घोंघे तथा विभिन्न प्रजाति के पक्षी पाये जाते थे जिनके अवशेष उपर्युक्त स्थलों की खुदाइयों से प्राप्त हुए हैं। इस तरह की खाद्य सामग्री की प्रचुरता ने ही संभवतः मध्यपाषाणिक मानव को स्थायी आवास के लिए प्रेरित किया। झोपड़ियों के स्तम्भगर्त सरायनाहर राय से मिले हैं लेकिन बांस–बल्ली के निशान से युक्त जली मिट्टी के टुकड़े इनके फर्शों पर नहीं उपलब्ध हुए हैं।

स्तम्भगर्त के प्रमाण केवल सरायनाहर राय के सामुदायिक झोपड़ी के फर्श और चोपनीमाण्डो के फर्शो से प्राप्त हुए हैं। ये फर्श कई परतों में प्राप्त होती हैं और कभी–कभी ये फर्श जले हुए रूप में मिलते हैं। लगता है कि इन्हीं फर्शों के ऊपर आग जलाई जाती थी। फर्श के भीतर और बाहर अनेक संख्या में गोलाकार गर्त चूल्हे प्राप्त हुए हैं, जिनका प्रयोग खाद्य सामग्री को पकाने के लिए विशेषतः पशुओं का माँस भूनने के लिए किया जाता था। फर्शो और गर्त चूल्हों के सन्निकट ही मध्यपाषाणिक मानव शवाधान प्रक्रिया करता था। आवास क्षेत्र के अन्दर ही शवाधान बनाने के पीछे मृतक के प्रति उसके स्नेह और आदर का बोध होता है। संभवतः उसके मन में अपने मृतकों के मृत्योपरान्त जीवन की कोई परिकल्पना रही होगी। पूर्व और पश्चिम अथवा पश्चिम–पूर्व दिशा में विस्तीर्ण शवाधान संभवतः सूर्य के प्रति उसके विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। मध्यपाषाणिक अधिवास प्रक्रिया से सम्बन्धित विभिन्न पुरावशेषों के अध्ययन के द्वारा मध्यपाषाणिक संस्कृति के विविध

पक्षों पर प्रकाश पड़ा है जिसे मध्यपाषाणिक पुरातत्व के रूप में विभिन्न भारतीय और विदेशी विद्वानों ने महत्ता प्रदान की है।

गंगा घाटी की मध्यपाषाणिक संस्कृतियों के विस्तार क्षेत्र में ताम्रपाषाणिक संस्कृति के प्रमाण हमें मिले हैं। लेकिन अभी तक नवपाषाणिक संस्कृति का एक भी प्राथमिक स्थल इस क्षेत्र से नहीं प्राप्त हुआ है। मध्यपाषाणिक संस्कृति इस क्षेत्र में कृषि और पशुपालक नवपाषाणिक संस्कृति के रूप में क्यों विकसित नहीं हुई? यह भी गंगाघाटी के पुरातत्व का अहम अनुत्तरित प्रश्न है। हो सकता है कि अभी तक नवपाषाणिक स्थल की खोज होना बाकी है, जो परवर्ती जमावों के नीचे दबे हैं या यह भी हो सकता है कि जनसंख्या के दबाव के कारण मनुष्य द्वारा अथवा नदियों की बाढ़ विभीषिका से ऐसे स्थल विनष्ट हो गये हों। लेकिन मध्य गंगा घाटी के पूर्वी भाग में (पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में) नवपाषाणिक संस्कृति के प्रमाण प्राप्त हुये हैं। पुरातात्विक प्रमाण ऐसा संकेत देते हैं कि जिस प्रकार मध्य गंगाघाटी के पश्चिमी भाग की मध्यपाषाणिक संस्कृति को विन्ध्य क्षेत्र की मध्यपाषाणिक संस्कृति ने जन्म दिया उसी प्रकार पूर्वी क्षेत्र की नवपाषाणिक संस्कृति को भी विन्ध्य क्षेत्र की नवपाषाणिक संस्कृति ने अंकुरित और पल्लवित किया। नवपाषाण काल में ऐसे भू–भागों को आवास के लिए चुना गया जहाँ बिना किसी प्रयास के कृषि के लिए उपयुक्त उर्वरा भूमि उपलब्ध थी। मध्य गंगाघाटी के लगभग सभी नवपाषाणिक स्थल एक बार आबाद हो जाने बाद फिर वीरान नहीं हुए। इसलिए निम्नतम धरातल पर स्थित नवपाषाणिक संस्कृति के जमाव बड़े पैमाने पर उत्खनित नहीं किये जा सके फिर भी अधिवास सम्बन्धी जो प्रमाण उपलब्ध हुए हैं उससे प्रतीत होता है कि गोलाकार अथवा अण्डाकार झोपड़ियाँ बनायी जाती थीं। लकड़ी के स्तम्भ गर्त्तों पर निर्मित इन झोपड़ियों के चारों ओर बाँस–बल्ली अथवा घास–फूस की दीवाल बनायी जाती थी जिस पर गीली मिट्टी का मोटा लेप लगाया जाता था। महगड़ा के उत्खनन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक घर में दो या दो से अधिक झोपड़ियाँ थी जिनका अलग–अलग कार्यों के लिए प्रयोग होता था। कुछ का उपयोग आवास अथवा रसोई के रूप में और कुछ का उपकरण निर्माण के लिए अथवा कुटीर उद्योगों के लिए किया जाता था। कड़ी मिट्टी को

पीटकर बनाये गये उसके फर्शों पर प्राप्त विभिन्न प्रकार की सामग्रियों के विश्लेषण से इस प्रकार के निष्कर्ष निकाले गये हैं। यद्यपि परवर्ती काल में कृषि द्वारा उत्पादित बहुत से अनाजों के प्रमाण नवपाषाणिक धरातल से मिले हैं और कई प्रकार के पालतू पशुओं की हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं। लेकिन समीपवर्ती जंगलों से वन्य पशुओं और वनस्पतियों का संग्रह तथा जलाशयों का मछली इत्यादि के लिए प्रयोग किया जाता था। आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के आविर्भाव के बावजूद पूर्ववर्ती आखेटक–संग्रहक अर्थव्यवस्था का पूर्णतः परित्याग नहीं किया जा सका था।

ताम्रपाषाणिक संस्कृति काल में सांस्कृतिक स्वरूप नवपाषाणिक संस्कृति से अधिक भिन्न नहीं था। यद्यपि तकनीकी विकास के बहुत से लक्षण – चाक पर बने हुए बर्तनों अथवा तांबे पर बने हुए उपकरणों के रूप में देखे जा सकते हैं लेकिन इनकी अर्थव्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता। चित्रित पात्र–परम्पराओं, बिन्दुओं से अलंकृत हड्डी के पुच्छल और साकेट (छिद्र) युक्त बाणाग्र तथा मृण्मूर्तियों और मनके उनके कलात्मक पक्ष पर प्रकाश डालते हैं। लेकिन इनके घर/आवास अधिकांशतः गोलाकार झोपड़ियों के रूप में मिलते हैं। मिट्टी की दीवालों से बने हुए घर ताम्रपाषाणिक संस्कृति के संदर्भ में कुछ स्थलों से प्राप्त हुए हैं। इमलीडीह और चिरांद जैसे स्थलों के उत्खनन से बहुत से चौड़े मुँह वाले चूल्हे प्राप्त हुए हैं।

यद्यपि चित्रित और सादी, ब्लैक एंड रेड वेयर और ब्लैक स्लिप्ड वेयर पात्र–परम्परा से युक्त ताम्रपाषाणिक संस्कृति के अन्तिम चरण में इस क्षेत्र के मानव का लोहे से परिचय हो गया था, जिसके प्रमाण प्राक् एन0बी0पी0डब्लू0 संस्कृति के कई स्थलों से भी प्राप्त हुए हैं। लेकिन लोहे के इस ज्ञान से भी प्रारम्भ में उनकी अर्थव्यवस्था में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हो सका। इनकी सांस्कृतिक परम्परा में कोई बड़ा परिवर्तन एन0बी0पी0डब्लू0 संस्कृति के प्रारम्भिक चरण में भी नहीं दिखाई पड़ता। इसका कारण संभवतः भारतीय परम्पराबद्धता ही रही होगी। एन0बी0पी0डब्लू0 संस्कृति के मध्य और परवर्ती चरण से हमें पहली बार सांस्कृतिक प्रक्रिया में क्रान्तिकारी परिवर्तन के प्रमाण मिलते हैं, जब पकी ईटों से निर्मित

मकान, वलय कूप, आहत और ढली हुई लेख रहित मुद्राएं अथवा अन्य सामग्रियाँ उपलब्ध होती हैं।

मध्य गंगा का मैदान जलवायु की दृष्टि से बहुत विषम क्षेत्र है। ग्रीष्म ऋृतु में सहनशक्ति से अधिक गर्मी, शीत ऋृतु में कड़ाके की ठण्ड और वर्षा ऋृतु में नदियों में विभीषिका उत्पन्न कर देने वाला बाढ़ का यह क्षेत्र अपने में विशिष्ट है। लेकिन इसके बावजूद भूमि की उर्वरता और जैविक सम्पदा की सम्पन्नता के कारण ही यह क्षेत्र मध्यपाषाणिक काल से लेकर आधुनिक काल तक निरन्तर सांस्कृतिक विकास में संलग्न रहा। जैसा कि चिरांद के उत्खनन से प्रतीत होता है कि यहाँ के स्थलों पर बार–बार प्राकृतिक आपदा के प्रमाण मिलते हैं लेकिन मनुष्य ने इन स्थलों का परित्याग नही किया अपितु उसने हर आपदा के बाद नये मार्ग पर चलने का सहज प्रयास किया। इसीलिए सांस्कृतिक परम्पराओं के मूल स्वरूप में सांस्कृतिक परिवर्तन के साथ बड़ा बदलाव नहीं दिखलाई पड़ता है। विन्ध्य की मध्यपाषाण संस्कृति ने वहाँ की नवपाषाणिक संस्कृति को जन्म दिया और विन्ध्य की नवपाषाण संस्कृति से गांगेय मैदान की संस्कृति अभिन्न रूप से जुड़ी है। नवपाषाण और ताम्रपाषाण काल में मध्य गांगेय मैदान को जो सांस्कृतिक रूप मिला वह कमोवेश आज भी जारी है, लेकिन अधिशेष उत्पादन और प्राकृतिक सम्पदा की सम्पन्नता से आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन इसी युग से प्रारम्भ हो गया था जिसकी परिणति धार्मिक और कलात्मक विकास में हुई और इस क्षेत्र में नगरक्रांति हुई।

मानव समाज के विकास में विशेषतः भारतीय सन्दर्भ में जहाँ पर सम्पूर्ण जीवनचक्र मानसूनी वर्षा पर निर्भर करता है, उपयुक्त परिवेश पर निर्भर है । मौर्य युगीन भारत में बिना दृढ़ कृषि आधार के सम्पन्न नहीं हो सकता और इस सन्दर्भ में उपयुक्त परिवेश ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था जिससे मौर्यकाल के इतिहास को हम अत्यधिक गौरवमय इतिहास के रुप में देखते हैं जबकि भारतीय प्रतिभा का सर्वोत्तम विकास हुआ और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई (धावलिकर 2000–2001: 84)।

स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र (मध्य गांगेय मैदान) में किये गये पुरातात्विक अनुसंधानों के फलस्वरूप प्रागैतिहासिक संस्कृतियों से लेकर ऐतिहासिक काल तक की संस्कृतियों का अविछिन्न क्रम प्रकाश में आया है। एक संस्कृति का विकास कैसे दूसरी संस्कृति में हुआ इसके भी प्रमाण भूतात्विक और पुरातात्विक अध्ययनों से प्राप्त हुए हैं । विन्ध्य क्षेत्र (दक्षिणी मिर्जापुर, दक्षिणी इलाहाबाद) ने गांगेय क्षेत्र (प्रतापगढ़, कौशाम्बी और उत्तरी इलाहबाद) की संस्कृतियों के उद्भव और विकास के मूल स्रोत के रूप में काम किया है। इसलिए पुरातात्विक और ऐतिहासिक दृष्टि से इस क्षेत्र का अद्वितीय महत्व है। लेकिन इस क्षेत्र के पुरातत्व में अभी भी कई पक्ष धुँधले हैं, जैसे पाषाण–युगीन संस्कृतियों के अधिवास परम्परा का सम्पूर्ण ज्ञान अभी तक नहीं हुआ है। प्रारम्भिक नूतन काल का सम्पूर्ण ज्ञान अभी तक नहीं हुआ। आखेटक और संग्रहक अर्थव्यवस्था वाली मध्यपाषाणिक संस्कृति किस प्रक्रिया से कृषि एवं पशुपालक प्रधान नवपाषाणिक संस्कृति के रूप में परिवर्तित हुई? नवपाषाणिक संस्कृति ने ताम्रपाषाणिक संस्कृति को किस प्रक्रिया से विकसित किया और ताम्रपाषाणिक संस्कृति कैसे प्रारम्भिक लौह युगीन ऐतिहासिक संस्कृति के रूप में विकसित हुई। इस दृष्टि से नवीन वैज्ञानिक विधियों के आलोक में अनुसंधान अपेक्षित है। संभव है मध्य गांगेय मैदान में भी विकसित सांस्कृतिक परम्पराओं की प्राचीनता सिन्धु और अन्य नदी घाटियों की तरह और पहले चली जाय। इन विभिन्न सांस्कृतिक कालों में पठारी पहाड़ी क्षेत्र तथा मैदानी क्षेत्र एक दूसरे से निरन्तर सांस्कृतिक सम्पर्क में रहे। इस सांस्कृतिक सम्पर्क का दोनों क्षेत्रों की संस्कृतियों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अग्रवाल, डी0 पी0, 1984, आर्क्यला*जी आफ इण्डिया,* नई दिल्ली, ~~पृ0 253~~ ।

अग्रवाल, डी0 पी0 और शीला कुसुमगर, 1974, *प्रीहिस्टारिक क्रोनोलाजी एण्ड रेडियो कार्बन डेटिंग इन इण्डिया,* नई दिल्ली ।

अल्टेकर, ए0 एस0 और वी0 मिश्रा 1959, *रिपोर्ट आन कुम्रहार एक्सकैवेसन्स (पटना, 1951–55),* पटना ।

अंसारी, शाहिदा, 2001, *प्रिहिस्टारिका सेटेलमेंट पैटर्न आफ साऊथ–सेन्ट्रल गंगा वैली: एन इथनो आर्क्यलाजिकल पर्सपेक्टिव,* पी0एच0डी0 उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, दक्कन कालेज पोस्ट ग्रेजुएट रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पुणे ।

आर्कलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया– एनुवल रिपोर्ट 1903–04: 81 ।

आर्कलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया– एनुवल रिपोर्ट 1909–10: 40 ।

आर्कलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया– एनुवल रिपोर्ट 1913–14: 98 ।

आलूर, के0 आर0, 1980, फानल रिमेंस फ्राम दी विन्ध्याज एण्ड दि गंगा वैली, जी0 आर0 शर्मा, वी0 डी0 मिश्र, डी0 मण्डल, बी0 बी0 मिश्र और जे0 एन0 पाल कृत *विगनिंग्स आफ एग्रीकल्चर,* में, इलाहाबाद: डिपार्टमेन्ट ऑफ एन्शियन्ट हिस्ट्री, कल्चर एण्ड आर्कियोलॉजी, यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद, पृष्ठ 201–227 ।

आलूर, के0 आर0 1990. *स्टडीज इन इण्डियन आर्कियोलॉजी एण्ड पैलियन्थोलॉजी,* धारवाड़: श्रीहरि प्रकाशन ।

इण्डियन आर्क्यालाजी : ए रिव्यू 1982-83, नई दिल्ली ।

इण्डियन आर्क्यालाजी : ए रिव्यू 1983-84, नई दिल्ली ।

इण्डियन आर्क्यालाजी : ए रिव्यू 1984-85, नई दिल्ली ।

इण्डियन आर्क्यालाजी : ए रिव्यू 1985-86, नई दिल्ली ।

इण्डियन आर्क्यालाजी : ए रिव्यू 1986-87, नई दिल्ली ।

इण्डियन आर्क्यालाजी : ए रिव्यू 1997-98, नई दिल्ली ।

एर्थार्ड, एस और के0 ए0 आर0 केनेडी 1965, *एक्सकैवेशन एट लंघनाज, 1944–63, भाग III : द ह्यूमन रिमेन्स पूनाः दक्कन कालेज ।*

एरडसी, जार्ज, 1985, सैटेलमेंट आर्क्यालाजी आफ दि कौशाम्बी रीजन, *मैन एण्ड इनवायरनमेण्ट,* अंक 9, पृष्ठ 66-79 ।

एरडसी, जार्ज, 1988, *आर्बनाइजेशन इन अर्ली हिस्टारिक इण्डिया,* आक्सफोर्ड : बी0 ए0 आर0 ।

क्रुक, एस0 एफ0 और आर0 एफ0 हाइजर, 1968, रिलेशनसिप्स एमन्ग हाउसेज, सेटेलमेंट एरियाज एण्ड पापुलेशन इन एबोरिजन्स, कैलिफोर्निया, के0 सी0 चांग द्वारा सम्पादित *सेटेलमेंट आर्क्यालाजी,* कैलिफोर्निया, पृ0 79-116 ।

क्रुक, डब्लू0 1896, दि ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आफ दि नार्थ–वेस्टर्न प्राविंसेज एण्ड अवध, अंक 1-5, कलकत्ता ।

कनिंघम, ए0 1872, *आर्क्यालजिकल सर्वे आफ इण्डिया,* अंक XI, शिमला ।

कनिंघम, ए0 1875-76 और 1877-78, *आर्क्यालजिकल रिपोर्ट,* वाल्यूम II, दिल्ली।

का, आर0 एन0 1979, द नियोलिथिक कल्चर ऑफ कश्मीर, *एसेज इन इण्डियन प्रोटोहिस्ट्री,* (सम्पादक डी0 पी0 अग्रवाल एवं डी0 के0 चक्रबर्ती) पृ0 219–228 ।

काजले, एम0 डी0, 1990. सम इनटील आबजरवेशन आन पेलियोबोटेनिकल एवीहेन्स फार मीसोलिथिम प्लाण्ट, इकोनामी फ्राम एक्सकैवेशन एट दमदमा, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश, *इन एडेप्टेशन एण्ड अदर एसेस* (एन0 सी0 घोष एण्ड एस0 चक्रवर्ती सम्पादक), पृ0 98–102, शान्तिनिकेतनः विश्व–भारती ।

काजले, एम0 डी0, 1996. प्लान्ट रिसोरसेस एण्ड डाइट एमंग द मीसोलिथिक हण्टरस एण्ड फोरेजरस, *बायोआर्कियोलाजी आफ मीसोलिथिक इण्डियाः ऐन इन्टीग्रेटेड अप्रोच,* कोलोकियम XXXIII, द इण्टरनेशनल यूनियन' ऑफ प्रीहिस्टोरिक एण्ड प्रोटोहिस्टोरिक साइनसेज (जी0 ई0 अफनास' अव, एस0 वाल्यूम, जे0 आर0 लुकास एण्ड एम0 तोसी सम्पादक), पृ0 251–253 फोर्ली : ए0 बी0 ए0 सी0 ओ0 एडीजोनी ।

कुमार रबीन्द्र, 1989, *आर्क्यलाजी आफ मिडिल गोमती बेसिन विद स्पेशल रिफरेन्स टू सुल्तानपुर डिस्ट्रिक्ट,* पी0 एच0 डी0 उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, वाराणसीः बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय ।

कुमार रबीन्द्र, 1990, डिस्पर्सल आफ सेटेलमेंट इन द मिडिल गोमती बेसिन, एन आर्क्यालाजिक इन्वेस्टीगेशन, *इण्डोपेसिफिक प्री–हिस्ट्री,* पृष्ठ 192-197, फोर्लीः एवी0ए0सी0ओ0 एडिजिओनी।

केनेडी, के0 ए0 आर0, 1996, स्केल्टल एडाप्टेसन्स आफ मेसोलिथिक हण्टर–फोरेजर्स आफ नार्थ इण्डियाः महदहा एण्ड सरायनाहर राय कम्पेयर्ड, *बायोआर्कियोलाजी आफ मीसोलिथिक इण्डियाः ऐन इन्टीग्रेटेड अप्रोच,* कोलोकियम XXXIII, द इण्टरनेशनल यूनियन' ऑफ प्रीहिस्टोरिक एण्ड

प्रोटोहिस्टोरिक साइनसेज (जी0 ई0 अफनास' अव, एस0 वाल्यूम, जे0 आर0 लुकास एण्ड एम0 तोसी सम्पादक), पृष्ठ 291–331 फोर्ली : ए0 बी0 ए0सी0ओ0 एडीजोनी ।

केनेडी, के0 ए0 आर0, 2000. *गॉड–एप्स एण्ड फासिल–मेनः पैलियो एन्थ्रोपोलोजी आफ साउथ एशिया,* अन्न अरबोरः द यूनीवर्सिटी ऑफ मिसीगन प्रेस ।

केनेडी, के0 ए0 आर0, और ए0 ए0 एलगार्ट 1998, *साउथ एशियाः इण्डिया एण्ड श्रीलंका होमिनिड रिमेन्शः एन अपडेट,* आर0 ओरबन और पी0 सेमल (सम्पादक), ब्रुसेल्सः एन्थ्रोपोलोज ऐट प्रीहिस्टरी, इन्टीट्यूट रायल डेस साइन्सेज नेचुरेलेस डबेलिजिक ।

केनेडी, के0 ए0 आर0, एन0 सी0 लोवेल और सी0 वी0 बरो 1986, *मेसोलिथिक ह्यूमन रिमेंस फ्राम द गैंगेटिक प्लेनः सरायनाहर राय,* साउथ एशिया प्रोग्राम आकेजनल पेपर्स एण्ड थीसिस, इथाकाः कारनेल यूनिवर्सिटी, ।

केनेडी, के0 ए0 आर0, सी0 बी0 बरो और एन0 सी0 लोवेल, 1986a, मेसोलिथिक ह्यूमन रिमेंस फ्राम द गंगेटिक प्लेन, सराय नाहर राय, *पुरातत्व,* अंक 15, पृष्ठ 1-55 ।

केनेडी, के0 ए0 आर0, जे0 आर0 लुकास आर0 एफ0 पेस्टर, टी0 एल0 जान्स्टन, एन0 सी0 लोवेल, जे0 एन0 पाल, बी0ई0 हेम्फिल और सी0 बी0 बरो 1992, *ह्यूमन स्केल्टल रिमेंस फ्राम महदहाः ए गंगेटिक मेसोलिथिक साइट,* साउथ एशिया प्रोग्राम आकेजनल पेपर्स एण्ड थीसिस नं0 11, साउथ एशिया प्रोग्राम, इथाकाः कारनेल यूनिवर्सिटी, ।

केनेडी, के0 ए0 आर0 और सी0 वी0 बरो, 1992, मार्फोमेट्रिक एनालिसिस के0 ए0 आर0 केनेडी आदि द्वारा लिखित *ह्यूमन स्केल्टन रिमेंस फ्राम महदहाः ए*

गंगेटिक मेसोलिथिक साइट में, कोरनेल यूनिवर्सिटी साऊथ एशिया प्रोग्राम आकेजनल पेपर्स एण्ड थेसिस 11 पृष्ठ 61-138।

कृष्णदेव और वी0 मिश्र, 1961, *वैशाली एक्सकैशन 1950*, वैशाली ।

गुप्ता, पी0 (सम्पादक) 1965, *पटना म्यूजिम कैटलाग ऑफ एन्टीक्यूटीज,* पटना ।

गौड़, आर0 सी0 1983, *इक्सकैवेसंस एट अतरंजीखेड़ाः अर्ली सिविलिजेसन ऑफ दि अपर गंगा बेसिन,* दिल्लीः मोतीलाल बनारसी दास ।

घोष, ए0 1950, राजगीर, *एंशियेन्ट इण्डिया,* नं0–7, पृ0 86 ।

चक्रवर्ती एम0 व मुखर्जी डी0, 1971, *इण्डियन ट्राइब्स,* कलकत्ता ।

चतुर्वेदी, एस0 एन0, और प्रेम सागर 1997, अर्ली पाटरी फ्राम सोहगौरा, *इण्डियन प्रीहिस्ट्री 1980* सम्पादक वी0 डी0 मिश्रा एवं जे. एन0 पाल पृ0 300–302 इलाहाबादः प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, विश्वविद्यालय इलाहाबाद ।

चतुर्वेदी, एस0 एन 1980. एक्सकैवेशंस एट सठियाँव– फाजिलनगर, डिस्ट्रिक्ट देवारिया एण्ड एक्सप्लोरेसंस इन द डिस्ट्रिक्स ऑफ गोरखपुर एण्ड बस्ती ऑफ उत्तर पद्रेश, *हिस्ट्री एण्ड आर्कयालाजी,* वाल्यूम I 339–340

चतुर्वेदी, एस0 एन 1985. एडवांस ऑफ विन्ध्यन नियोलिथिक एण्ड चाल्कोलिथिक कल्चर्स टू द हिमालयन तराईः एक्सकैवेशंस एण्ड एक्सप्लोरेसंस इन सरयूपार रीजन ऑफ उत्तर प्रदेश, *मैन एण्ड इनवायरेन्मेंट,* IX : 101–108 ।

जोगलेकर, पी0 पी0 वी0डी0 मिश्र और एम0 सी0 गुप्ता 2002, *एनीमल फाना फ्राम महदहा,* इलाहाबादः प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।

जोशी आर0 वी0 1978, द स्टोन कल्चर्स आफ सेन्ट्रल इण्डियाः रिपोर्ट ऑफ द एक्सकैवेसन्स आफ दि राक शेल्टर एट आदमगढ़, एम0 पी0, पूना : डेकन कालेज ।

जोशी, एम0 सी0 और ए0 के0 सिन्हा 1981, पुरातात्विक साक्ष्य और प्राचीन मथुरा की खोज, *उत्तर प्रदेश* (पुरातत्व पर विशेषांक), मई ।

तिवारी, राकेश 1998-99, एन्टीक्यूटी ऑफ आयरन इन साउथ ईस्टर्न उत्तर प्रदेश, *भारती* अंक 25 भाग–I & II पृ0 124–137 ।

तिवारी, आर0 और आर0 के0 श्रीवास्तव 1996-97, इक्शकैवेशंस एट राजानल का टीला, डिस्ट्रिक्ट सोनभद्र, यू0पी0: प्रिलिमिनरी आवजरवेशन, *प्राग्धारा* नं0 7, पृ0 77-96 ।

तिवारी, आर0 और आर0 के0 श्रीवास्तव 1997-98, इक्शकैवेशंस एट राजानल का टीला (96-97), डिस्ट्रिक्ट सोनभद्र, यू0पी0: प्रिलिमिनरी आवजरवेशन, *प्राग्धारा* नं0 8, पृ0 992-106

तिवारी, राकेश, आर0 के0 श्रीवास्तव एवं के0 एस0 सारस्वत, के0 के0 सिंह 1999–2000. इक्शकैवेसन एट मल्हार डिस्ट्रिक्ट चन्दौली, उत्तर पद्रेश, 1999: ए प्रिलीमिनरी रिपोर्ट, *प्राग्धारा* अंक 10 पृ0 69–98 ।

तिवारी, राकेश, आर0 के0 श्रीवास्तव एवं के0 के0 सिंह, 2001–2002. इक्शकैवेसन एट लहुरादेव, डिस्ट्रिक्ट सन्त कबीर नगर, उत्तर पद्रेश, *पुरातत्व* अंक 32 पृ0 54–59 ।

थापर, बी0 के0 1975–76: प्राब्लम्स ऑफ द नियोलिथिक कल्चर्स इन इण्डिया, पुरातत्व 7: 61–65 ।

थामस, पी0 के0, पी0 पी0 जोगलेकर, वी0 डी0 मिश्रा, जे0 एन0 पाण्डेय एवं जे0 एन0 पाल, 1996, फोनल इविडेंस फार द मेसोलिथिक फूड एकोनमी आफ द गंगेटिक प्लेन विथ स्पेशल रिफरेंश टू दमदमा, *कोलोकियम 33, बायोआर्क्यलाजी आफ मेसोलिथिक इण्डिया: एन इन्टेग्रेटेड अप्रोच,* फोरली इटली, इण्टरनेनशल, यूनियन आफ प्रीहिस्टारिक एण्ड प्रोटोहिस्टारिक सांइसेज के 13 वें अधिवेशन की प्रोसीडिंग, पृष्ठ 255-266 ।

थामस, पी0 के0, पी0 पी0 जोगलेकर, वी0 डी0 मिश्र, जे0 एन0 पाण्डेय और जे0 एन0 पाल 1995, ए प्रिलिमिनरी रिपोर्ट आफ द फानल रिमेंश फ्राम दमदमा, *मैन एण्ड इनवारनमेंट* अंक 20 (1) : 29-36 ।

दास गुप्ता, पी0 सी0, 1964, *एक्सकैवेशन ऐट पांडुराजारढिबि,* कलकत्ता ।

देश पाण्डे एम0 एन0, 1969, रोमन पाटरी, *पाटरीज इन एंशियन्ट इण्डिया,* सम्पादक वी0 पी0 सिन्हा, पटना ।

दत्ता, पी0 सी0 1971. अर्लियस्ट इण्डियन ह्यूमन रिमेन्स फाउण्ड इन ए लेट स्टोन एज साइट, *नेचर* 223: पृ0 500–501 ।

दत्ता, पी0 सी0, 1973, द अर्लियस्ट स्केल्टन रिमेंस आफ ए लेट स्टोन एज मैन फ्राम इण्डिया, एन्थ्रोपोलॉजी 11: 249-53 ।

दत्ता, पी0 सी0, 1984, सराय नाहर राय मैनः द फार्स्ट एण्ड ओल्डेस्ट ह्यूमन फासिल रिकार्ड इन साऊथ एशिया, *एन्थ्रोपोलॉंजी* 22: पृ0 35-50 ।

दत्ता, पी0 सी0, ए0 पाल, और बी0 सी0 दत्ता, 1971, सराय नाहर राय: ए लेट स्टोन एज साइट इन द प्लेन आफ गंगा, *जरनल आफ द इन्डियन एन्थ्रोपालॉजिकल सोसाइटी,* अंक 6 पृ0 15-28 ।

दत्ता, पी0 सी0, ए0 पाल और और जे0 एन0 विश्वास, 1972, लेट स्टोन एज ह्यूमन रिमेंस फ्राम सराय नाहर राय: द अर्लीयस्ट स्केल्टन एवीडेन्स आफ मैन इन इण्डिया, *बुलेटिन आफ द एन्थ्रोपोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया,* अंक 21, पृष्ठ 114-38

दत्ता, पी0 सी0 और ए0 पाल, 1972, अर्लीयस्ट इण्यिन ह्यूमन स्केल्टन फाइन्ड एण्ड दि इस्टीमेशन आफ स्टेचर, *करेंट साइंस* अंक 41, पृष्ठ 334-35 ।

दुबे अनिल कुमार, 1997, *मध्यगंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया: जौनपुर जिले के विशेष सन्दर्भ में,* डी0 फिल0 उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।

दुबे, दयाशंकर, 1942, *श्रीगंगा रहस्य,* पृष्ठ 40–45 ।

धवलिकर, एम0 के0 2000–2001. कल्चरल इकोलाजी आफ नार्दन इण्डिया *पुरातत्व, अंक* 31, पृ0 84–91 ।

नागर, मालती, 1997, फिशिंग एण्ड फिशिंग गेयर, ट्राइबल्स आफ द बस्तर, *इण्डियन प्रीहिस्ट्री* 1980, पृ0 210–217 ।

नागर, मालती, और वी0 एन0 मिश्र, 1989, हन्टर–गैदरर्स इन ऐन अग्रेरियन सेटिंग: दि नाइन्टीन्थ सेंचुरी सिचुएशन इन दि गंगा प्लेन्स, *मैन एण्ड इनवायरमेन्ट,* अंक 13, पृष्ठ 66-78।

नागर, मालती, और बी० एन० मिश्र, 1990, दि कर्न्जस–ए हन्टिंग–गैदरिंग कम्युनिटी आफ दि गंगा वैली, उ०प्र०, *मैन एण्ड इनवायरमेंट,* अंक 15, पृष्ठ 71-78 ।

नारायण, एल० ए०, 1970, नियोलिथिक सेटिलमेन्ट एट चिरांद, *जर्नल आफ बिहार रिसर्च सोसायटी,* अंक 56 (1) पृष्ठ 1-35 ।

नारायण, ए० के० और टी० एन० राय 1968, *इक्सकैवेसन्स एट प्रहलादपुर,* वाराणसी ।

नारायण, ए० के० और टी० एन० राय, 1976, *इक्सकैवेसन्स एट राजघाट* भाग–1 बी०एच०यू० वाराणसी,

नारायण ए० के० और टी० एन० राय, 1977, *इक्सकैवेसन्स एट राजघाट भाग–2,* बी० एच० यू० वाराणसी ।

नारायण, ए० के० और पुरूषोत्तम सिंह, *इक्सकैवेसन्स एट राजघाट* भाग–3, बी० एच० यू० वाराणसी ।

नारायण ए० के० और पी० के० अग्रवाल, *इक्सकवेसन्स एट राजघाट*–4, बी० एच० यू० वाराणसी ।

नेगी, जे० एस०, नहुष का टीला, 1975, *के० सी० चट्टोपाध्याय मेमोरियल वाल्यूम,* पृष्ठ 56-58 ।

पाल, जे० एन० 1977, नव पाषाणिक संस्कृतियाँ डा० राधाकान्त वर्मा द्वारा लिखित *भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतियाँ* पृ० 278–279 ।

पाल, जे० एन०, 1980, प्रतापगढ़ जनपद में पुरातात्विक अन्वेषण, *मानव,* अंक 2-3।

पाल, जे० एन०, 1984, इपीपैलियोलिथिक साइट्स इन प्रतापगढ़ डिस्ट्रिक्ट, उत्तर प्रदेश, *मैन एण्ड इनवायरमेंट,* अंक 8 पृष्ठ 28-38 ।

पाल, जे० एन०, 1985, सम न्यू लाइट आन द मेसोलिथिक वरियल प्रेक्टिस आफ द गंगा वैली: इवीडेन्स फ्राम महदहा, *मैन एण्ड इनवाइरनमेण्ट,* अंक 9, 28-37 ।

पाल, जे० एन० 1986, *आर्क्यालाजी ऑफ सर्दन उत्तर प्रदेश:* सेरामिक इन्डस्ट्रीज आफ नार्दन विन्ध्याज, इलाहाबाद, स्वाभा प्रकाशन, इलाहाबाद।

पाल, जे० एन० 1986a, माइक्रोलिथिक इंडस्ट्री आफ दमदमा, *पुरातत्व नं0* 16, पृ0 37–38 ।

पाल, जे० एन०, 1988, मेसोलिथिक डबल वरियल्स फ्राम रिसेंट इक्सकैवेसन्स एट दमदमा, *मैन एण्ड इनवाइरनमेंट,* अंक 12 पृष्ठ 115-122 ।

पाल, जे० एन०, 1989, फरदर इक्सकैवेसन्स एट दमदमा: 1987, *डाइमेन्संस इन इण्डियन आर्क्यलाजी,* (सम्पा0) एस0 के0 पाण्डेय और के0 एस0 रामचन्द्रन, नई दिल्ली, पृष्ठ 42-45।

पाल, जे० एन० 1990. ह्यूमन बूरियल प्रैक्टिस ऐट मीसोलिथिक दमदमा, इन *आर्कियोलाजिकल पर्सपेक्टिवस ऑफ उत्तर प्रदेश,* भाग–1 (राकेश तिवारी सम्पादक) पृ0 59–65 लखनऊ : यू0 पी0 स्टेट आर्कियोलाजिकल आर्गेनाइजेशन

पाल, जे० एन० 1992a, मेसोलिथिक ह्ययूमन बरियल्स इन द गंगेटिक प्लेन, नार्थ इण्डिया, *मैन एण्ड एनवायरनमेण्ट,* वाल्यूम 17 (2): 35-44 ।

पाल, जे० एन०, 1992b, बरियल प्रेक्टिसेस एण्ड आर्क्यालाजिकल रिकवरी, *ह्ययूमन स्केल्टन रिमेंस फ्राम महदहा: ए गंगेटिक मेसोलिथिक साइट,* के0 ए0 आर0

केनेडी, जे0 आर0 लुकास, आर0 एफ0 पास्टर, टी0 एल0 जान्सटन, एन0 सी0 लोवेल, जे0एन0पाल, बी0 इ0 हेमफिल और सी0वी0 वरो कृत, साउथ एशिया अकेजनजल पेपर्स एण्ड थीसिस न0 13, कोरनेल यूनिवर्सिटी, इथाका, पृष्ठ 25-60 ।

पाल जे0 एन0 1992c, ह्ययूमन बरियल प्रैक्टिसेस एट मेसोलिथिक दमदमा, आर्क्यलाजिकल प्रर्सपेक्टिव *आफ उत्तर प्रदेश एण्ड फयूचर प्रासपेक्ट्स* पार्ट । (सम्पा0) राकेश तिवारी, स्टेट आर्क्यलाजिकल आर्गनाइजेशन, उत्तर प्रदेश लखनऊ, पृ0 59-65

पाल,. जे0 एन0, 1994, मेसोलिथिक सेटेलमेन्ट इन. द गंगा वैली, *मैन एण्ड इनवाइनमेण्ट,* वाल्यूम 19 (1-2) पृष्ठ 91-101 ।

पाल, जे0 एन0 1995, चाल्कोलिथिक विन्ध्याज *प्राग्धारा,* अंक 5, पृष्ठ 13-19 ।

पाल, जे0 एन0, 1996, लिथिक यूज वियर एनलिसिस एण्ड सगसिस्टेंस एक्टिविटीज एमंग द मेसोलिथिक पीपुल आफ नार्थ इण्डिया, *कोलोकियम 33, बायो आर्क्यलाजी आफ मेसोलिथिक इण्डिया: एन इन्टेगरेटेड अप्रोच,* फोरली इटली, इण्टरनेनशल, यूनियन आफ प्रीहिस्टारिक एण्ड प्रोटोहिस्टारिक सांइसेज के 13 वें अधिवेशन की प्रोसीडिंग, पृष्ठ 267-277।

पाल, जे0 एन0 1998. मीसोलिथिक डबल बरियल्स्र फाम दमदमा, *मैन एण्ड इनवायरमेन्ट* XIII 111: 115–22 ।

पाल, जे0 एन0 2000, मेसोलिथिक एण्ड नियोलिथिक सोसाइटीज आफ द विन्ध्याज एण्ड द मिडिल गंगेटिक प्लेन, *सोसल हिस्ट्री एण्ड सोसल थ्योरी* (सम्पा0) वी0 डी0 मिश्र और जे0 एन0 पाल, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, पृष्ठ 7-13 ।

पाल, जे0 एन0 2002, मेसोलिथिक गैंगेटिक प्लेन, *मेसोलिथिक इण्डिया* (सम्पादक वी0डी0 मिश्र एवं जे0 एन0 पाल), पृ0 288–305, इलाहाबादः प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।

पाल, जे0 एन0, ओ0 पी0 श्रीवास्तव, अनामिका राय, एम0 सी0 गुप्ता 2002. झूँसीः आर्कलाजिकल एण्ड हिस्टारिकल इम्प्लीकेशन एज रीवील्ड फाम द एक्सकैवेसन्स एट एंसियन्ट प्रतिष्ठानपुर, *इलाहाबादः एस्पेक्ट्स ऑफ हिस्टोरिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल* पृ0 1–14

पाण्डेय, जे0 एन0 1983, *पुरातत्व विमर्श,* इलाहाबाद।

पाण्डेय, जे0 एन0, 1985, *सेटिलमेण्ट पैटर्न एण्ड लाइफ इन द मेसोलिथिक पीरियड इन उत्तर प्रदेश,* डी0 फिल0 उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।

पाण्डेय, जे0 एन0 1988, *पुरातत्व विमर्श* (द्वितीय संस्करण), इलाहाबाद ।

पाण्डेय, जे0 एन0 1990. मीसोलिथिक इन द मिडिल गंगा वैली, *बुलेटिन ऑफ द डेक्कन कालेज रिसर्च इन्स्टीट्यूट* 49: 311–16 ।

पाण्डेय, जे0 एन0, 1996, बरियल प्रैक्टिसेज एण्ड फनरेरी प्रेक्टिसेज आफ मेसोलिथिक इण्डिया, *कोलोकियम 33, बायो आर्क्यलाजी आफ मेसोलिथिक इण्डियाः एन इन्टेगरेटेड अप्ररोच,* फोरली इटली, इण्टरनेनशल, यूनियन आफ प्रीहिस्टारिक एण्ड प्रोटोहिस्टारिक सांइसेज के 13 वें अधिवेशन की प्रोसीडिंग, पृष्ठ 279-290 ।

पार्जिटर, एफ0 ई0, 1913, *पुराण टैक्सट्स आफ दि डायनेस्टीज आफ दि कलि एज,* आक्सफोर्ड ।

पार्जिटर, एफ0 ई0, 1962, *एन्सियन्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रैडिसन,* दिल्ली ।

पाण्डेय, ए0 बी0, 1960, *अर्लीमेडिवल इण्डिया,* इलाहाबाद ।

पन्त, आर0 के0 1979. माइक्रोबियर स्टडीज ऑन बुर्जहोम नियोलिथिक टूल्स, *मैन एण्ड इनवायरनमेण्ट* : III 11—17 ।

पन्त, आर0 के0 1979a. फक्शनल स्टडीज ऑन स्टोन ब्लेड्सः माइक्रोवियर पैटर्न्स, *मैन एन इनवायरमेन्ट* III : 83—85 ।

पन्त, डी0 डी0 और रेखा पन्त, 1980, प्रिलिमिनरी आवजरवेशन आन पोलेन फ्लोरा आफ चोपनी माण्ड़ो (विन्ध्याज) एण्ड महदहा (गंगा वैली) *बिगनिंग्स आफ एग्रीकल्चर,* जी0 आर0 शर्मा, वी0 डी0 मिश्र, डी0 मण्डल, बी0 बी0 मिश्र और जे0 एन0 पाल, पृष्ठ 229-30 ।

पन्त, पी0 सी0 एण्ड वी0 जायसवाल 1991. *पैसराः द स्टोन एज सैटेलमेन्ट आफ बिहार,* दिल्लीः अगम कला प्रकाशन ।

प्रसाद, ए0 के0, 1980-81, इक्शकैवेशन्स एट ताराडीह, *पुरातत्व,* अंक 12, पृष्ठ 138-139 ।

प्रसाद, ए0 के0, 1997, ए नोट आन द हैविट्स आफ द नियोलिथिक पिपुल आफ द बिहार, *इण्डियन प्रीहिस्ट्री,* 1980, सम्पादक मिश्र वी0 डी0 एवं जे0 एन0 पाल, पृ0 161-162 ।

बरनवाल प्रहलाद, 1998, *मध्य गांगेय मैदान में संजाति—पुरातात्विक अन्वेषण,* डी0 फिल0 उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।

भट्ट, एस0 के0 1970, आर्कियोलोजिकल एक्सकैवेशन इन बस्ती डिस्ट्रिक्ट,उत्तर पद्रेश, *पुरातत्व* नं0 3, पृ0 78–88 ।

मण्डल, डी0 1972, *रेडियो कार्बन डेट्स एण्ड इण्डियन आर्क्यालाजी,* इलाहाबादः वैशाली पब्लिकेशन ।

मण्डल, डी0 1997, नियोलिथिक कल्चर्स इन द विन्ध्याज, *इण्डियन प्री हिस्ट्रीः 1980*, (सम्पा0) वी0 डी0 मिश्र और जे0 एन0 पाल, पृ0 174, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।

महाभारत, स्वर्गारोहण पर्व 18/23 ।

मेमोरिया चतुर्भज 1995, *आधुनिक भारत का वृहद भूगोल,* आगरा, पृष्ठ–1029 ।

मिश्र, वी0 डी0, 1970, चल्कोलिथिक कल्चर्स आफ इस्टर्न इण्डिया, *द इस्टर्न एन्थ्रोपोलजिस्ट,* अंक 18, न0 3 पृष्ठ 243-249 ।

मिश्रा, वी0 डी0, 1977 *सम ऐसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलॉजीः* इलाहाबादः प्रभात प्रकाशन ।

मिश्र, वी0 डी0, 1996, प्री एन0बी0पी0डब्लू0 कल्चर्स इन द मिडिल गंगा वैली, *प्रो0 ए0 पी0 माथुर फेलिटिशन वाल्यूम,* पृष्ठ 21-34 ।

मिश्र, वी0 डी0, बी0 बी0 मिश्र, जे0 एन0 पाण्डेय, और जे0 एन0 पाल, 1995-96, ए प्रिलिमिनरी, रिपोर्ट आन द इक्सकैवेसन्स एट झूँसी, 1995, *प्राग्धारा,* अंक 6, पृष्ठ 63-67 ।

मिश्र, वी0 डी0, बी0 बी0 मिश्र, जे0 एन0 पाल और एम0 सी0 गुप्ता, 2000, इक्सप्लोरेशन ऐट टोकवाः ए नियोलिथिक–चल्कोलिथिक सेटेलमेन्ट आन दि कानफ्लूएन्स आफ बेलन एण्ड अदवा रिवर्स, *पीपिंग थ्रू दि पास्टः प्रो0*

जी0 आर0 शर्मा मेमोरियल वाल्यूम, एस0 सी0 भट्टाचार्य, वी0 डी0 मिश्र, जे0 एन0 पाण्डेय और जे0 एन0 पाल (सम्पा0) इलाहाबाद, पृष्ठ 45-57 ।

मिश्र, वी0 डी0, जे0 एन0 पाल और एम0 सी0 गुप्ता, 1988, प्रोटोहिस्टोरिक इन्वेस्टिगेशन, प्रतापगढ़ डिस्ट्रिक्ट उत्तर प्रदेश, *एडाप्टेशन एंण्ड एसेज,* सम्पादक, एन0 सी0 घोष और सुब्रत चक्रवर्ती, विश्वभारती, पृ0 196-200।

मिश्र, वी0 डी0 और एम0 सी0 गुप्ता, 1996, प्री एन0 बी0 पी0 डब्लू0 कल्चर इन द मिडिल गंगा वैली, *प्रो0 अगम प्रसाद माथुर फेलिसिटेशन वाल्यूम,* पृ0 27।

मिश्र, वी0 डी0, जे0 एन0 पाल और एम0 सी0 गुप्ता, 1998-1999. नियोलिथिक कल्चर ऑफ द नर्दान विन्ध्यन विथ स्पेशल, रिफर्रेन्स टू टोकवा, *भारती* वाल्यूम भाग एक–दो, पृ0 211–233।

मिश्र, वी0 डी0, जे0 एन0 पाल और एम0 सी0 गुप्ता, 2000-2001, इक्सकैवेसन्स एट टोकवाः ए नियोलिथिक–चल्कोलिथिक सेटेलमेन्ट, *प्राग्धारा,* अंक 11, पृष्ठ 59-72 ।

मिश्र, वी0 डी0, जे0 एन0 पाल और एम0 सी0 गुप्ता, 1998-99, फरदर इक्सकैवेसन्स एट झूँसी, *प्राग्धारा,* अंक 9, पृष्ठ 45-49 ।

मिश्र, वी0 डी0, जे0 एन0 पाल और एम0 सी0 गुप्ता, 1999-2000, फरदर इक्सकैवेसन्स एट झूँसी (1998-99), *प्राग्धारा,* अंक 10, पृष्ठ 23-30 ।

मिश्र, वी0 डी0 और जे0 एन0 पाल 1997, *इण्डियन प्रीहिस्ट्री: 1980*, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद।

मिश्र, वी0 डी0 एण्ड जे0 एन0 पाण्डेय 1977. माइक्रोलिथिक इण्डस्ट्री ऑफ मैहर, सतना, मध्य प्रदेश, मैन एण्ड इनवायरमेन्ट I: 61–63 ।

मिश्र, बी0 बी0, 1997, चाल्कोलिथिक, कल्चर्स आफ दि विन्ध्याज एण्ड सेंट्रल गंगा वैली, *इण्डियन प्री हिस्ट्री: 1980,* (सम्पादक) वी0 डी0 मिश्र और जे0 एन0 पाल ।

मिश्रा, वी0 डी0, 1996, हिस्ट्री एण्ड कान्टेक्स्ट आफ मेसोलिथिक रिसर्च एट इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, इलाहाबाद, इण्डिया, *कोलोकियम 33, बायो आर्क्यलाजी आफ मेसोलिथिक इण्डिया: एन इन्टेगरेटेड अप्रोच,* फोरली इटली, इण्टरनेनशल, यूनियन आफ प्रीहिस्टारिक एण्ड प्रोटोहिस्टारिक सांइसेज के 13 वें अधिवेशन की प्रोसीडिंग, पृष्ठ 245-250 ।

मिश्रा, वी0 एन0 1971. टू लेट मीसोलिथिक सैटेलमेन्ट इन राजस्थान, ए ब्रीफ रिन्यू इनवेस्टीगेसन्स, *जरनल ऑफ यूनिवर्सिटी ऑफ पूना,* (ह्यूमैनीटीज) 35: 59–77 ।

मिश्रा, वी0 एन0 1973. बागोर– ए मेसोलिथिक सैटेलमेन्ट ऑफ नार्थ–वेस्ट इण्डिया, *वर्ल्ड आर्कियोलॉजी* 5 (1): 92–110 ।

मिश्रा, वी0 एन0 1973a. न्यू लाइट ऑन द मीसोलिथिक पीरियड इन इण्डिया फाम एक्सकक्वेशन ऐट बागोर इन राजस्थान, *रिसर्चर* XII-XIII : 1–14 ।

मिश्रा, वी0 एन0 1973b. प्राब्लम्स ऑफ पेलियोइकोलाजी, पेलियोक्लाइमेट एण्ड क्रोनोलाजी ऑफ नार्थ– बेवेस्ट इण्डिया, *इन रेडियोकार्बन एण्ड इण्डियन आर्कियोलाजी* (डी0 पी0 अग्रवाल एण्ड ए0 घोष सम्पादक), पृ0 58–72. मुम्बई: टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ फण्डामेन्टल रिसर्च ।

मिश्रा, वी0 एन0 1989. मीसोलिथिक, इन *ऐन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इण्डियन आर्कियोलाजी* (ए0 घोष सम्पादक) वाल्यूम 1, पृ0 37–43, नई दिल्ली: मुन्शीराम मनोहरलाल ।

मिश्रा, वी0 एन0 1989. मीसोलिथिक, इन *ऐन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इण्डियन आर्कियोलाजी* (ए0 घोष सम्पादक) वाल्यूम 2, पृ0 34–37, नई दिल्लीः मुन्शीराम मनोहरलाल ।

मिश्र, वी0 एन0, 1996, मेसोलिथिक इंडिया : हिस्ट्री एण्ड करेंट स्टेटस आफ रिसर्च, *कोलोकियम 33ए बायो आर्क्यलाजी आफ मेसोलिथिक इण्डियाः एन इन्टेगरेटेड अप्ररोच,* फोरली इटली, इण्टरनेनशल, यूनियन आफ प्रीहिस्टारिक एण्ड प्रोटोहिस्टारिक सांइसेज के 13 वें अधिवेशन की प्रोसीडिंग, पृष्ठ 321-328 ।

मिश्र, वी0 एन0 2002, मेसोलिथिक कल्चर इन इण्डियाः की नोट, *मेसोलिथिक इण्डिया* (वी0 डी0 मिश्र एवं जे0 एन0 पाल सम्पादक), पृ0 1–66, इलाहाबादः प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।

मिश्र, वी0 डी0 और बी0 बी0 मिश्र, 1983, मेसोलिथिक कल्चर आफ द अदवा वैली, नार्दन विन्ध्याज, IAS और IASPQS के वार्षिक सम्मेलन, पुणे में प्रस्तुत शोधपत्रा ।

मिश्र, वी0 डी0 और जे0 एन0 पाल (सम्पादक) 2000, *सोसल हिस्ट्री एण्ड सोसल थ्योरी,* प्राचीन इतिहास, संस्कृति एंव पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।

मिश्र, वी0 डी0 और जे0 एन0 पाल (सम्पादक), 2001, *मेसोलिथिक इन इण्डिया,* प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।

मिश्र, बी0 बी0, 1997, चाल्कोलिथिक कल्चर्स आफ द विन्ध्याज एण्ड द सेन्ट्रल गंगा वैली, *इण्डियन प्री हिस्ट्री: 1980*, (सम्पादक) वी0 डी0 मिश्र और जे0 एन0 पाल, इलाहाबाद, विश्वविद्यालय इलाहाबाद, पृ0 286-292 ।

मिश्र वी0 डी0, बी0 बी0 मिश्र, 2000, चाल्कोलिथिक कल्चर्स आफ दि नार्दन विन्ध्याज एण्ड द मिडिल गंगा वैली: सम आब्जर्वेशन्स, *सोसल हिस्ट्री एण्ड सोसल थ्योरी,* (सम्पादक) वी0 डी0 मिश्र और जे0 एन0 पाल, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, पृष्ठ 14-22 ।

मिश्र, बी0 बी0 2000, चाल्कोलिथिक कल्चर्स आफ नादर्न विन्ध्याज एण्ड द मिडिल गंगा वैली, *पीपिंग थ्रो द पास्ट : प्रो0 जी0 आर0 शर्मा मिमोरियल वाल्यूम,* (सम्पादक) एस0 सी0 भट्टाचार्या, वी0 डी0 मिश्र, जे0 एन0 पाण्डेय और जे0 एन0 पाल, प्राचीन इतिहास संस्कृति एंव पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद पृ0 66–85।

मिश्र, वी0 के0 1960, *अवध के प्रमुखकवि,* लखनऊ ।

मुकर्जी पी0 सी0 1898. *रिर्पाट ऑन द एक्सकैवेसन्स आन द एंसियन्ट साइट ऑफ पाटलिपुत्र (पटना– बाँकीपुर)* कलकत्ता ।

मजूमदार, आर0 सी0 ए0 डी0 पुसालकर, (सम्पादक) 1951, *दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ दि इण्डियन पीपुल: वैदिक एज,* वाल्यूम 1 बम्बई ।

मजूमदार, आर0 सी0 1960, *एन्शियन्ट इण्डिया,* दिल्ली ।

मजूमदार, आर0 सी0 और ए0 डी0 पुसालकर, 1954, *हिस्ट्री एण्ड कलचर आफ दि इण्डियन पीपुल: द क्लासिकल एज,* वाल्यूम 4, बम्बई ।

रे रेबा 1987, एंशियंट सेटेलमेन्ट पैटर्न इन इस्टर्न इण्डिया, कलकत्ता ।

राय चौधरी, एच0 सी0, 1971, *बिहार,* न्यू दिल्ली ।

राय, टी0 एन0, 1983, *दि गैंगेटिक सिविलीजेशन,* नयी दिल्ली ।

राय, टी0 एन0, 1985-86, इक्शकैवेशन एट मांझी– 1983-85; ए प्रिलिमिनरी रिपोर्ट, *पुरातत्व, नं0* 16 पृ0 29-32 ।

राय, टी0 एन0, 1997, एन इन्डीकेशन आफ द चाल्कोलिथिक कल्चर्स एट सम साइट्स आफ उत्तर प्रदेश, इण्डियन प्रीहिस्ट्री 1980,सम्पादक वी0 डी0 मिश्र एवं जे0 एन0 पाल, पृ0 298–300 ।

ली, आर0 बी0 और डी0 वोरे, 1968, *मैन दि हंटर,* शिकागो ।

लुकास, जान0 आर0, जे0 एन0 पाल और वी0 डी0 मिश्र, 1996, क्रोनोलाजी एण्ड डायट इन मेसोलिथिक नार्थ इण्डिया : ए प्रीहिस्ट्री रिपोर्ट आफ न्यू ए0 एम0 सी0 14 डेटस डी 13 जिस्टोप वैल्यूज एण्ड देयर सिग्नीफिकेंस, *कोलोकियम 33, बायो आर्क्यलाजी आफ मेसोलिथिक इण्डियाः एन इन्टेगरेटेड अप्रोच,* फोरली इटली, इण्टरनेनशल, यूनियन आफ प्रीहिस्टारिक एण्ड प्रोटोहिस्टारिक सांइसेज के 13 वें अधिवेशन की प्रोसीडिंग, पृष्ठ 301-311 ।

लोवेल, एन0 सी0, 1992, पेलियोडेमोग्राफी, *ह्ययूमन स्केल्टन रिमेन्स फ्राम महदहा ए गंगेटिक मेसोलिथिक साइट* में के0 ए0 आर0 केनेडी और अन्य कोरनेल यूनिवर्सिटी साऊथ एशिया प्रोग्राम आकेजनल पेपर एण्ड थेसिस पृष्ठ 139-56 ।

लाल बी0 बी0 1954-55, एक्सकैवेसन्स एट हस्तिनापुर एंड अदर एक्सप्लोरेसन्स इन द अपर गंगा एंड सतलज बेसिंस, 1950–52, *एंशिन्ट इण्डिया* नं0 10–11, पृ0 5–151 ।

लाल बी0 बी0 1979-80, आर द डिफेन्सेस ऑफ कौशाम्बी रियली एज ओल्ड एज 1025 बी0 सी0? पुरातत्व, अंक 11, पृ0 88–95 ।

लाल बी0 बी0 1989, की नोट एडेस्रः श्री राम इन आर्ट, आर्कयोलाजी एण्ड लिटरेचर, बिहार पुरातत्व परिषद पटना पृ0 1–11 ।

लाल बी0 बी0 और के0 एन0 दीक्षित 1978-79. श्रृंगवेरपुरः ए की–साइट आफ द प्रोटोहिस्ट्री एण्ड अर्ली हिस्ट्री आफ सेंट्रल गंगा वैली, *पुरातत्व,* अंक 10, पृ0 1-7 ।

लुकास, जे0 आर0 1982. मीसोलिथिक हन्टर्स एण्ड फोरेर्जस ऑफ द गंगैटिक प्लेनः ए समरी ऑफ करेन्ट रिसर्च इन डेण्टल एन्थ्रोपोलाजी, *डेण्टल एन्थ्रोपोलाजी न्यूज लेटर* 6 (3): 3–8 ।

लुकास, जे0 आर0, और जे0 एन0 पाल, 1992, डेंटल एन्थ्रोपोलाजी आफ मेसोलिथिक हंटर–गैदर्सः ए प्रिलिमिनरी रिपोर्ट आफ द महदहा एण्ड सराय नहर राय डेन्टीशन, *मैन एण्ड इनवाइरनमेंट,* अंक 17 (2) पृ0 45-55 ।

लाल मक्खन, 1984, सेटिमेंट हिस्ट्री ऐण्ड राइज आफ सिविलाइजेशन इन गंगा यमुना दोआब, नई दिल्ली ।

लुकास, जे0 आर0 और जे0 एन0 पाल, 1993 मेसोलिथिक सब्सीटेन्स इन नार्थ इण्डिया इनः करेंट एन्थ्रोपोलोजी, रेफिरेन्सेस फ्राम डेंटल आर्टीब्यूट्यस, वाल्यूम 34, अंक 5, पृष्ठ 745-765 ।

लुकास जे0 आर0, जे0 एन0 पाल और वी0 डी0 मिश्र 1996, क्रोनोलाजी एण्ड डायट इन मेसोलिथिक नार्थ इण्डियाः ए प्रिलिमिनरी रिपोर्ट आन न्यू ए एम एस डेट्स, ^{13}C आइसोटोप वैल्यूज एण्ड देयर सिग्नीफिकेन्स कोलोकियम आफ इन्टरनेशनल कांग्रेस आफ प्रीहिस्टारिक एण्ड प्रोटोहिस्टारिक सांइसेज

1996, जी0 ई0 एफनसेव, एस, क्यूजीवो, जे0 आर0 लुकास और माराजिवो तोसी पृष्ठः 301-311, इटली ।

लिवेनस्टीन, सुजाने एम0 1987. स्टोन टूल यूज ऐट सेरट्स, आस्टीन, टैक्सासः यूनिवर्सिटी ऑफ टैक्सास प्रेस ।

वाडेल, एल0 ए0 1892, *डिस्कवरी ऑफ दि एक्जैक्ट साइट आफ अशोकाज क्लासिक कैपिटल ऑफ पाटलिपुत्र, दि पालीबोथ्रा ऑफ द ग्रीक्स एण्ड डिस्क्रप्सन ऑफ सुपरफीसीयल रिमेंस,* कलकत्ता ।

वाडेल, एल0 ए0 1903, *रिर्पोट आन द एक्सकैवेसन ऐट पाटलिपुत्र (पटना), पालीबोथ्रा ऑफ द ग्रीक्स,* कलकत्ता ।

वर्मा, आर0 के0 1964. स्टोन एज कल्च्रस ऑफ मिर्जापुर डी0 फिल0 डिसरटेशन, इलाहाबाद : यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद ।

वर्मा, आर0 के0 1965. कमेण्ट्स ऑन मीसोलिथिक फेज इन द प्रीहिस्ट्री ऑफ इण्डिया, इन इण्डियन प्रीहिस्ट्री 1964 । (बी0 एन0 मिश्रा एण्ड एम0 एस0 मेट सम्पादक), पृ0 73–7, पूनाः दक्कन कालेज ।

वर्मा, आर0 के0 1986. प्री एग्रीकल्चर मीसोलिथिक सोसायटी ऑफ द गंगा वैली, *इन ओल्ड प्रोब्लेम्स एण्ड न्यू पर्सपेक्टिव इन द आर्कियोलाजी ऑफ साउथ एशिया।* (जे0 एम0 केन्योर सम्पादक), पृ0 55–58 विस्काम्यिन आर्कियोलाजिकल रिर्पोट्स नं0 2, मेडिसान : एफ0 एण्ड एच0 प्रिन्टिंग कम्पनी।

वर्मा, आर0 के0, 1986a. भारतीय प्रागितिहास, इलाहाबाद, परमज्योति प्रकाशन ।

वर्मा आर0 के0, 1996, सबसिस्टेंस इकोनामी आंफ द मेसोलिथिक फाक एज रिफलेक्टेड इन दि राक पेन्टिंग्स आफ द विन्ध्यन रीजन, *कोलोकियम 33,*

बायो आर्क्यलाजी आफ मेसोलिथिक इण्डिया: एन इन्टेगरेटेड अप्रोच, फोरली इटली, इण्टरनेनशल, यूनियन आफ प्रीहिस्टारिक एण्ड प्रोटोहिस्टारिक सांइसेज के 13 वें अधिवेशन की प्रोसीडिंग, पृष्ठ 329-337।

वाटसन, वी0, 1955, आर्क्यालाज़ी एण्ड प्रोटीन्स, अमेरिकन एन्श्रीक्यूटी, अंक, 20, पृ0 288-296 ।

विन्टरनित्ज, एम0, 1927, *ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर,* वाल्यूम 1, कलकत्ता।

वर्मा, राधाकान्त 1970, *भारतीय प्रागितिहास,* इलाहाबाद ।

वर्मा, राधाकान्त 1977, *भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतियाँ,* इलाहाबाद ।

वर्मा, राधाकान्त 1987, *मेसोलिथिक एज इन मिर्जापुर,* इलाहाबाद ।

वर्मा, आर0 के0, वी0 डी0 मिश्र, जे0 एन0 पाण्डेय और जे0 एन0 पाल 1985, ए प्रिलीमिनरी रिपोर्ट आन द इक्सकैवेसप्स एट दमदमा (1982-84) *मैन एण्ड इनवाइरनमेण्ट,* अंक 9 पृष्ठ 45-65।

वर्मा, आर0 के0, 2000, ए नोट आन सम ऐस्पेक्ट्स आफ सोसाइटी डियूरिंग द मेसोलिथिक पीरियड, वी0 डी0 मिश्र और जे0 एन0 पाल द्वारा सम्पादित *सोसल हिस्ट्री एण्ड सोसल थ्योरी में* इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद पृष्ठ 1-6 ।

वर्मा, आर0 के0 2002. पुरातत्व अनुशीलन भाग–2, परमज्योति प्रकाशन, इलाहाबाद।

वर्मा, विजय प्रकाश, 1993, *फैजाबाद जनपद का पुरातत्व,* डी0 फिल उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

वर्मा, विजय प्रकाश 2000, *अवध और अयोध्या: पुरातात्विक दृष्टि*, इलाहाबाद ।

वर्मा, वी० एस० 1969, ब्लैक एण्ड रेड वेयर इन विहार, वी० पी० सिन्हा (सम्पादक) *पाटरीज इन एन्शियन्ट इण्डिया* पृष्ठ 102-111 ।

वर्मा, वी० एस० 1971, इक्सकैवेसन्स एट चिराद न्यू लाइट आन इण्डियन नियोलिथिक कल्चर काम्पलेक्स, *पुरातत्व* नं० 4 ।

वर्मा, वी० एस० 1969, ब्लैक, ऐंड रेड वेयर इन बिहार, पाटरीज इन ऐंशियंट इण्डिया, पृ० 103.104।

वैलियाना टोस, एच०, 1999, प्रिल्यूड टू पैलियोडाइट (ए हिस्टोलोजिकल एण्ड एलीमेन्टल स्टडी आफ डायाजेनेसिस एमंग अर्ली होलोसीन स्केलेटन्स फ्राम नार्थ इण्डिया, इलाहाबाद ।

विष्णु मित्रे, 1972, नियोलिथिक प्लान्ट एकोनामी एट चिरांद *द पेलियो वाटनिस्त्, पुरातत्व* नं० 1 पृ० 18–21 ।

शुक्ल, विमल चन्द, 1997, *भारतीय कला के विविध आयाम*, इलाहाबाद ।

शुक्ल, विमल चन्द, 1986, पुरानुसंधान, इलाहाबाद ।

शर्मा, वाई० डी० 1953, एक्सप्लोरेशन आफ आर्कियोलाजिकल साइट, *एंशिन्ट इण्डिया*, नं० 9 पृ० 186 ।

शर्मा, जी० आर० 1949–50, *मेमोआर्यस आफ दि आर्कलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया*, नं० 74 न्यू दिल्ली ।

शर्मा, जी० आर०, 1960, *इक्सकैवेसन्स एट कौशाम्बी 1957-59*, इलाहाबाद ।

शर्मा, जी0 आर0, 1969, *इक्सकैवेसन्स एट कौशाम्बी, 1949-50* एम0 ए0 एस0 70 दिल्ली ।

शर्मा, जी0 आर0 1973. मीसोलिथिक लेक कल्चरस इन द गंगा वैली, इण्डिया, *प्रोसीडिंग्स ऑफ द प्रीहिस्टोरिक सोसायटी* 39: 129–146 ।

शर्मा जी0 आर0, 1973a, स्टोन एज इन द विन्ध्याज एण्ड दी गंगा वैली, *रेडियो कार्बन एण्ड इण्डियन आर्क्योलाजी,* (सम्पादक) डी पी0 अग्रवाल और ए0 घोष, बाम्बे, पृष्ठ 106-110 ।

शर्मा, जी0 आर0, 1975, सीजनल माइग्रेसन्स एण्ड मेसोलिथिक लेक कल्चर्स इन द गंगा वैली, *के0 सी0 चट्टोपाध्याय मेमोरियल वाल्यूम,* इलाहाबाद, पृष्ठ 1-20 ।

शर्मा, जी0 आर0, 1978, प्रागैतिहासिक मानव की कहानी: गंगाघाटी की प्राचीन संस्कृति पर नया प्रकाश, *दिनमान,* भाग–14 अंक 34, 20-26 अगस्त 1978।

शर्मा, आर0 एस0 1979, *मटेरियल कल्चर्स ऐण्ड सोसल फारमेशन इन एंसियंन्ट इण्डिया,* नई दिल्ली।

शर्मा, जी0 आर0, 1980, हिस्ट्री टू प्री हिस्ट्री, इलाहाबाद ।

शर्मा, जी0 आर0 1980a, *रेह इंस्क्रिप्सन आफ मेनाण्डर एण्ड इण्डोग्रीक इनवेजन आफ दी गंगा वैली,* इलाहाबाद ।

शर्मा, जी0 आर0, वी0 डी0 मिश्र, डी0 मण्डल, बी0 बी0 मिश्र और जे0 एन0 पाल 1980, *विगनिंग्स आफ एग्रीकल्चर,* इलाहाबाद ।

शर्मा, जी0 आर0, और बी0 बी0 मिश्र, 1980, *इक्सकैवेसन्स एट चोपनीमाण्डो,* प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।

शर्मा, जी0 आर0, मिश्र वी0 डी0, मंडल डी0, मिश्र वी0 वी0 और पाल जे0 एन0 1980b, फ्राम हटिंग गैदरिंग टू फूछ प्रोडक्शन एण्ड डोमेस्टीकेशन आफ एनीमल्स, इक्सकैवेशन्स एट चोपनीमाण्डो, महदहा एवं महदहा, *हिस्ट्री एण्ड आर्क्योलाजी,* वाल्यूम प्रथम, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।

शर्मा, जी0 आर0, वी0 डी0 मिश्र और जे0 एन0 पाल, 1980a, *इक्सकैवेसन्स एट महदहा,* इलाहाबाद।

स्पेट, ओ0 एच0 के0 और ए0 एम0 लीरमान्थ, 1960, *इण्डियन एण्ड पाकिस्तान,* पृ0 210–217 ।

स्पूनर, बी0 बी0 1912–13. आर्कियोलजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया– एनुवल रिर्पोट पृ0 53 ।

स्मिथ, वी0 ए0 1906: द पिग्मी फिलण्ट्स, *इडिण्यन एण्टीक्वेरी* XXXV : 185–95।

सर मार्शल जान 1911, आर्कियोलाजिकल एक्सप्लोरेशन इन इण्डिया, *जरनल आफ एशियाटिक सोसायटी* पृ0 127 के आगे: *एन एनुवल रिपोर्ट आफ आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया,* 1909–10, पृ0 40 और आगे: एनुअल रिपोर्ट ए0 एस0 आई0, 1911–12, पृ0 29 से आगे ।

सेन डी0 1950, एन्सिंट साइट इन सिंहभूमि मैन एण्ड इनवायरमेन्ट, वाल्यूम 30 पृ0 1–12।

संकालिया, एच0 डी0, 1965, *इक्सकैवेसन्स एट लंघनाज 1944-63* पार्ट 1–आर्क्यालाजी, डेकन कालेज, पुणे ।

संकालिया, एच0 डी0 1974, *प्री0 हिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री आफ इण्डिया एंड पाकिस्तान,* पूना: डेकन कालेज ।

सिंह, अरविन्द कुमार, 1993, *स्टडी आफ मैटेरियल कल्चर आफ द गंगेटिक प्लेन एन द फर्स्ट मिलियन बी0 सी0,* डी0 फिल0 उपाधि के लिए प्रस्तुत आप्रकाशित शोध प्रबन्ध, पृ0 160, बी0 एच0 यू0, वाराणसी ।

सिंह, आर0 एल0, 1971, *इण्डिया: ए रीजनल जाग्रफी,* वाराणसी ।

सिंह पुरूषोत्तम, 1984, *एक्सकैवेशन एट नरहन* 1984 और इमलीडीह, सिंह, पी0 एक्सकैवेशन एट इमलीडीह खुर्द, *पुरातत्व नं0* 22 पृ0 120–122 ।

सिंह पुरूषोत्तम, 1994, *एक्सकैवेशन एट नरहन* (1984–89) बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय और बी0 आर0 कारपोरेशन, नई दिल्ली ।

सिंह पुरुषोत्तम और अशोक कुमार सिंह 1999–2000. एक्सकवेशन एट अगियाबीर, जनपद मिर्जापुर उत्तर पद्रेश, *प्राग्धारा* अंक 10, पृ0 31–56 ।

सिंह पी, ए0 के0 सिंह और इन्द्रजीत सिंह, 1991–92, एक्सकवेशन एट इमलीडीह खुर्द, *पुरातत्व नं0* 22, पृ0 120–122 ।

सिंह, पी0, *प्रागधारा* नं0 –1 ।

सिंह पुरूषोत्तम 1996, *प्रिल्यूड टू अर्बनाइजेशन इन द सरयूपार प्लेन,* अध्यक्षीय भाषाण, भाग–5, द इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 57 वाँ अधिवेशन, चेन्नई ।

सिंह, बी0 पी0, 1987-88, खैराडीह: ए चैल्कोलिथिक सेटेलमेंट, *पुरातत्व* नं0 18, पृ0 28-34 ।

सिंह, बी0 पी0, 1988-89, अर्ली फारमिंग कम्यूनिटीज ऑफ कैमूर फूट हिल्स, *पुरातत्व* नं0 19 पृ0 6–180 ।

सिंह, बी0 पी0, 1989-90, चैल्कोलिथिक कल्चर आफ सर्दन बिहार ऐज रिवील्ड वाई दि इक्शप्लोरेशन एण्ड इक्शकैवेशन इल डिस्ट्रिक्ट रोहताज, *पुरातत्व नं0* 20, पृ0 83-92 ।

सिंह, बी0 पी0, 1992. चैल्कोलिथिक कल्चर आफ ईर्स्टन उत्तर प्रदेश, आर्कलाजिकल र्पसपेक्टिव उत्तर प्रदेश एण्ड फ्यूचर प्रास्पेक्ट्स, प्रोसीडिंग्स ऑफ द सेमिनार, उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्व संगठन लखनऊ पृ0 77–84।

सिंह, बी0 पी0, 2000–2001. स्टेजेज ऑफ कल्चर डेवलपमेंट इन द मिडिल गंगा प्लेन– ए केस स्टडी ऑफ सेनुवार, प्रागधारा अंक 11, पृ0 109–118 ।

सिन्हा, के0 के0, 1959, *एक्सकैवेशन एट श्रावस्ती,* बी0 एच0 यू0, वाराणसी ।

सिन्हा, वी0 पी0, 1979, इक्शकैवेसन एट चम्पा, आर्क्यालजी एण्ड आर्ट आफ इण्डिया, दिल्ली ।

सिन्हा, वी0 वी0, और वी0 एस0 वर्मा, 1970, सोनपुर इक्शकैवेशन, पटना ।

सिन्हा, बी0 पी0, और एस0 आर0 राय, 1969, *वैशाली इक्शकैवसन 1958–62,* पटना ।

सिन्हा बी0 पी0 और एल0 ए0 नारायन 1955–56. *पाटलिपुत्र एक्सकैवेसन्स,* पटना।

सिंह, बी0 पी0, 1987-88, खैराडीहः ए चाल्कोलिथिक सेटेलमेंट, *पुरातत्व* नं0 18, पृष्ठ 28-37 ।

सिंह, बी0 पी0, 1995&96. ट्रांसफारमेसन ऑफ कल्चर्स इन द मिडिल गंगा प्लेन्सः ए केस स्टडी आफ सेनुवार, *प्रागधारा,* अंक 6, पृ0 75–93।

सिंह, पुरूषोत्तम 1992-1993, आर्कियोलाजिकल एक्सकैवेशंस एट इमलीडीह खुर्द– 1992,*प्राग्धारा*–3 पृ0 21–35 /

सिंह, पुरूषोत्तम, 1994, *इक्सकैवेसन्स एट नरहन,* (1984-89), नई दिल्ली ।

सिंह, पुरूषोत्तम, और अशोक कुमार सिंह, 1999-2000, इक्सकैवेशन्स एट अगिया वीर, डिस्ट्रिक्ट मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश), प्रागधारा, अंक 10, पृष्ठ 31-55 ।

सिंह, पी0, ए0 के0 सिंह, और इन्द्रजीत सिंह, 1991-92, इक्सकैवेशन्स ऐट इमलीडीह खुर्द, पुरातत्व नं0 22, पृष्ठ 120-122 ।

सिंह, पुरूषोत्तम, और मक्खन लाल, 1985, नरहन, 1983-85, ए प्रीलिमिनरी रिपोर्ट, *भारती,* बुलेटिन नं0 3 आफ दी डिर्पाटमेंन्ट आफ एन्शियंट इण्डियन हिस्ट्री कल्चर एण्ड आर्क्यालाजी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी (एन0 एस0 3) ।

त्रिपाठी, आर0 एस0, 1960 *हिस्ट्री आफ द एन्सियंट इण्डिया,* दिल्ली ।

श्रीवास्तव, के0 एम0 1986, *डिस्कवरी आफ कपिलवस्तु,* नई दिल्ली ।

हैरिस, डेविड आर0 1996, *दि ओरिजन्स एण्ड स्प्रेड ऑफ एग्रीकल्चर एण्ड पैसटोरालिज्म इन यूरेशिया,* लन्दनः यू0सी0एल0 प्रेस लिमिटेड।